भारत में प्रादेशिकवाद
एक राजनीतिक भौगोलिक अध्ययन

(REGIONALISM IN INDIA : A STUDY IN POLITICAL GEOGRAPHY)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
की
डी० फिल्० (भूगोल) उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
डॉ० आर० सी० तिवारी
एम० ए०, डी० फिल्०
प्रोफेसर, भूगोल विभाग

प्रस्तुतकर्ता
आलोक मिश्र
भूगोल विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2002

आभार

मै सर्वप्रथम श्रद्धेय गुरू प्रवर डॉ० रामचन्द्र तिवारी, प्रोफेसर, भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिनके सफल एव कुशल निर्देशन, पाडित्य, कर्मठ व्यक्तित्व एव सक्रिय सहयोग के कारण ही यह शोध कार्य वर्तमान पूर्णता की स्थिति को प्राप्त कर सका। डॉ० तिवारी की कृपा-कोर-दृष्टि ने अपने अत्यन्त व्यस्त क्षणो मे भी इस शोध प्रबन्ध को नित्य नवीन उपागमो और विविध आयामो के माध्यम से नयी दिशा एव प्रकाश देने का सतत प्रयास किया है। विभागाध्यक्ष प्रो० सविन्द्र सिह का अन्तर्मन से आभारी हूँ जिन्होने रचनात्मक प्रेरणा एव शोध-कार्य हेतु विभागीय सुविधाये प्रदान की हैं।

विद्वत-वरेण्य प्रो० कुमकुम राय, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद ने वर्तमान शोध कार्य मे अहेतुकी सहायता, स्पर्धात्मक एव प्रतियोगितात्मक अनुसधान हेतु सुझाव एव स्फूर्ति दायक प्रेरणा प्रदान की है जिसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। मैं डॉ० रुद्र प्रकाश श्रीवास्तव, पूर्व विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, चौधरी महादेव प्रसाद महा-विद्यालय, इलाहाबाद का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होने शोध प्रबन्ध से सबधित विभिन्न समस्याओ के समाधान मे अपना योगदान किया है एव इसमे सबधित काफी साहित्य उपलब्ध कराया है। प्रो० एच० एन० मिश्र, डॉ० भोलानाथ मिश्र, डा० मनोरमा सिन्हा, डॉ० आलोक दुबे, डॉ० ब्रह्मानद सिह, डॉ० शिव सागर ओझा, डॉ० सुधाकर त्रिपाठी, डॉ० वन्दना शुक्ला एव डॉ० महेन्द्र शंकर सिह, डॉ० सन्तोष कुमार मिश्र भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद का भी आभारी हूँ जिन्होने शोधकाल मे मेरा उत्साह सवर्धन किया तथा श्री प्रमोद कुमार उपाध्याय, श्री प्रदीप कुमार एव श्री अनिल कुमार तिवारी, शोध छात्र भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद का शुद्ध हृदय से आभारी हूँ जिन्होने अपने सक्रिय सहयोग से इसे पूर्ण कराने में अथक योगदान दिया है।

अपने परम पूज्यनीय अग्रज श्री मुकेश कुमार गौतम, पुलिस इन्सपेक्टर के लगन, कौशल निष्पादन की सतत प्रेरणा ने इस कार्य को पूर्ण कराने मे अविस्मरणीय शक्ति पदान की। मैं अपने गुरुजनों श्री करोडी लाल एव श्री रामबाबू मिश्र, मुख्य अध्यापक, प्राथमिक

विद्यालय महोई एव श्री ओम प्रकाश कटियार, श्री सुभाष चन्द्र सक्सेना एव श्री सतीश चन्द्र त्रिपाठी, श्री रमेश सिह गहरवार, श्री रमेश चन्द्र मिश्र, भारतीय शिक्षा सदन इण्टर कॉलेज सिकन्दरपुर, कन्नौज, श्री सतीश चन्द्र त्रिपाठी, श्री अनिल कुमार दुबे, श्री वीर सिह यादव, श्री हरिश्चन्द्र यादव, श्री सोबरन लाल यादव, श्री सुरेशचन्द्र दुबे एव चाचा श्री वीरेन्द्र कुमार दुबे, सस्कृत प्रवक्ता, बाबा हरीपुरी इण्टर कालेज कसावा, कन्नौज को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्होने कठिन परिस्थितियो मे मेरा उत्साह सम्बर्द्धन किया जिससे शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने मे प्रेरणा मिली।

श्री राहुल सिह एव श्री शशिकान्त, पुस्तकालयाध्यक्ष ससद भवन दिल्ली को विशेष रूप से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्होने व्यक्तिगत रूप से शोध प्रबन्ध पूर्ण कराने के लिए सहयोग किया। पुस्तकालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद उत्तर प्रदेश, केन्द्रीय राज्य पुस्तकालय इलाहाबाद, पुस्तकालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के कर्मचारियो को उनके सहयोग एव सहायता हेतु धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। अपने मित्रो मनोज कुमार यादव, राजेश कुमार यादव, ऋषि पाल सिह, कृष्ण पाल सिह, जयदीप शुक्ला, शेखर शुक्ला, पकज कुमार सिह, अतुल कुमार निरजन 'पिन्टू', कमलेश कुमार यादव, नरेन्द्र कुमार, सौरभ कुमार मिश्रा 'नीरज' जितेन्द्र कुमार तिवारी, सतरुद्ध सिह यादव, कु० पूनम कुशवाह, कु० मजू सिह, अखिलेश कुमार पाण्डेय, शैलेन्द्र तिवारी, दिनेश चन्द्र द्विवेदी, विजय कुमार मिश्रा, जितेन्द्र कुमार यादव, रवि, प्रबल प्रताप सिह तोमर, राजकुमार जायसवाल 'काका' को धन्यवाद देते हुए अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ जिनके सहयोग एव अनथक प्रयास से ही ऑकडों का एकत्रीकरण तथा लेखन आदि कार्य इतने अल्प समय मे पूरा हो सका। मैं उन सभी विद्वानो एव लेखकों के प्रति भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिनके शोध प्रबन्ध, निबन्धो, प्रपत्रो एव पुस्तकों आदि का अनुशीलन करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ तथा उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिनसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मैं लाभान्वित हुआ हूँ।

मैं अपने स्वर्गीय पितामह प० रामकृष्ण मिश्र पुत्र स्वर्गीय प० बलदेव प्रसाद मिश्र की स्वर्गीय आत्मा के प्रति नतमस्तक हूँ जिन्होने शैशवावस्था मे ही मुझमे लगन एव कर्म निष्ठ सस्कार का बीजारोपण किया।

मै अपने ताऊ श्री हरिश्चन्द्र मिश्र, बडे पिता श्री दामोदर प्रसाद मिश्र, पिता श्री आदित्य कुमार मिश्र एव माता श्रीमती मुन्नी देवी मिश्रा तथा चाचा श्री अशोक कुमार मिश्र, भाई डा० प्रभात कुमार मिश्र एव भाभी श्रीमती प्रतिभा मिश्रा, बहन सुषमा का विशेष रूप से स्नेहसिक्त हूँ, जिन्होने शोध कार्य के समय मुझे पारिवारिक उत्तरदायित्वो से मुक्त रखा एव शोध कार्य हेतु सदैव उत्साहवर्द्धन एव सहयोग प्रदान किया। प्रस्तुत शोध कार्य उन्ही के आशीर्वाद और प्रेरणा, स्नेह का प्रतिफल है। मै अपनी भाभियो श्रीमती मीना, अनुपमा, ममता एव नीतू के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिनके पवित्र आशीर्वाद से शोध कार्य मे सफलता मिली।

मैं अपने भाइयो श्री उत्तम चन्द्र मिश्र, ध्रुव चन्द्र, ध्यान चन्द्र, शरद चन्द्र, गौरव, प्रदीप एव दिलीप एव भतीजे अनुज, अमरदीप 'टिक्कू', श्याम बाबू मिश्र, स्वदेश एव श्रीमती नीलू मिश्रा के प्रति भी स्नेहिल भावना व्यक्त करता हूँ जिन्होने वर्तमान शोध कार्य की सफलता मे अपना परोक्ष योगदान दिया है।

परम आदरणीय प० लक्ष्मीकान्त बाजपेयी, श्रीमती मनोरमा, श्री गिरिजेश कुमार, श्रीमती रेनू , नीरज बाजपेयी, श्रीमती सीमा मिश्रा, श्री रामचन्द्र मिश्र, श्री रमेश चन्द्र मिश्र, डॉ० ओउम् प्रकाश शुक्ला, श्री राकेश शुक्ला (जगम्मनपुर, कानपुर देहात), श्री मदन मोहन त्रिवेदी (इटावा), श्री व्यास कुमार, श्री आनन्द कुमार, श्री अश्वनी कुमार 'चुन्नू', श्री यज्ञ कुमार 'खलीफा' के स्नेहिल आशीर्वाद ने सदैव प्रगति-पथ पर बढने के लिए प्रेरित किया।

मैं श्रीमती रत्न प्रभा 'मुन्नी बुआ', श्री रामबाबू द्विवेदी के प्रति हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूँ, जिन्होने शोध कार्य के दौरान समय-समय पर अपने उदात्त विचारो द्वारा मेरा उत्साहवर्द्धन एवं निराशा के समय में ढाढस बँधाया है।

मैं अन्त मे टंकणकर्त्ता श्री चन्द्र शेखर सिह को शीघ्रतिशीघ्र एव त्रुटिरहित टकण हेतु सधन्यवाद देता हूँ। जिनके अनथक प्रयास से यह कार्य समय से पूरा हो सका।

आलोक मिश्र

दिनाक : 16-12-2002

आलोक मिश्र

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
प्रस्तावना	1–20
ऐतिहासिक पुनरावलोकन	
भारतीय संघ का अभ्युदय	
सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा	
वर्तमान अध्ययन की वस्तुनिष्ठता	
उपागम	
संकल्पनाएँ	
अध्ययन विधि	
साक्ष्य संग्रह	
ऑकड़ो का विश्लेषण एवं निर्वचन	
अध्याय (1) प्रादेशिकवाद की अवधारणा	21–37
1.1 प्रादेशिकवाद की विशेषतायें	
1.2 प्रादेशिकवाद में उतार-चढ़ाव	
1.3 प्रादेशिकवाद की अभिव्यक्ति	
1.3.1 उपरि.राज्य स्तरीय प्रादेशिकवाद	
1.3.2 अन्तर्राज्यीय प्रादेशिकवाद	
1.3.3 अन्तरा.राज्यीय प्रादेशिकवाद	
1.4 प्रादेशिकवाद के तत्व	
1.4.1 भू सांस्कृतिक	
1.4.1.1 भौगोलिक सीमायें	
1.4.1.1.1 प्राचीन भौगोलिक सीमायें	
1.4.1.1.2 नयी सीमायें	
1.4.1.1.3 भावी सीमायें	
1.4.1.2 जाति	
1.4.1.3 धर्म	
1.4.1.4 भाषा	

1.4.1.5 इतिहास

1.4.1.6 प्रवासी वनाम भूमिपुत्र

1.4.2 राजनीतिक कारक

1.4.3 आर्थिक व तकनीकी कारक

1.4.4 मनोवैज्ञानिक कारक

1.5 प्रादेशिकवाद का राजनीतिक स्वरूप

1.6 राजनीति में प्रादेशिकवाद का प्रयोग

अध्याय (2) प्रादेशिकवाद की उत्पत्ति के कारक 38–56

2.1 राजनीतिक कारक

2.2 आर्थिक कारक

2.3 सामाजिक कारक

2.4 भाषायी कारक

2.5 धार्मिक एवं साम्प्रदायिक कारक

2.6 भौगोलिक कारक

2.7 सांस्कृतिक कारक

अध्याय (3) भारत में प्रादेशिकवाद की ऐतिहासिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि 57–87

3.1 प्राचीन काल

3.1.1 वैदिक काल

3.1.2 बौद्ध काल

3.1.3 गुप्त काल

3.1.4 राजपूत काल

3.2 मध्य काल

3.2.1 मुगल काल

3.3 आधुनिक काल

3.3.1 मराठा काल

3.3.2 ब्रिटिश काल

3.3.3 स्वतन्त्रता काल

3.3.4 राज्यों का पुनर्गठन

अध्याय (4) प्रादेशिकवाद के प्रकार 88–108

4.1 क्षेत्रीय आकार

4.1.1 स्तरीय प्रादेशिकवाद

4.1.2 प्रान्त स्तरीय प्रादेशिकवाद

4.1.3 स्थानीय प्रादेशिकवाद

4.2 विशिष्ट विशेषताओं के आधार पर प्रादेशिकवाद

4.2.1 भाषाई प्रादेशिकवाद

4.2.2 आर्थिक प्रादेशिकवाद

4.2.3 सामाजिक प्रादेशिकवाद

4.2.4 राजनीतिक प्रादेशिकवाद

अध्याय (5) प्रादेशिकवाद का स्थानिक प्रतिरूप 109–158

5.1 भारतीय संघ से अलग होने की मॉग

5.1.1 जम्मू.कश्मीर

5.1.2 खालिस्तान

5.1.3 द्रविड़नाड की मॉग

5.1.4 मिजोरम की माँग

5.1.5 नागालैण्ड की मॉग

5.1.6 त्रिपुरा की मॉग

5.1.7 असम

5.2 पृथक राज्य का दर्जा दिये जाने की माँग

5.2.1 गुजरात और महाराष्ट्र का गठन

5 2.2 पंजाब राज्य का गठन

5.2.3 मेघालय का गठन

5.2.4 छत्तीसगढ़ का गठन

5.2.5 उत्तरांचल का गठन

5.2.6 झारखण्ड का गठन

5.2.7 विदर्भ राज्य की माँग

5.2.8 तेलंगाना राज्य की मॉग

5.2.9 गोरखालैण्ड की माँग

5.2.10 बोडोलैण्ड की माँग

5.2.11 बुन्देलखण्ड की माँग

5.2.12 अन्य विभिन्न राज्यों के लिए माँगें

5.3 अन्तर्राज्यीय विवाद

5.3.1 चण्डीगढ़ का प्रश्न

5.3.2 मैसूर–महाराष्ट्र सीमा विवाद

5.3 3 नदी–जल बँटवारा सम्बन्धी विवाद

अध्याय (6) प्रादेशिकवाद वनाम राष्ट्रवाद 159–195

6.1 राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ

6.2 राष्ट्रीय एकीकरण की समस्यायें

6.2.1 अल्पसंख्यक समूहो के बीच एकता

6.2.2 धार्मिक एकता की समस्या

6.2.3 उत्तर तथा दक्षिण भारत की एकता

6.3 राष्ट्रीयता के तत्व

6.3.1 धार्मिक एकता

6.3.2 भाषाई एकता

6.3.3 सामाजिक एकता

6.3.4 सांस्कृतिक एकता

6.3.5 प्रजातीय एकता

6.3.6 राजनीतिक एकता

6.4 भारत की राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्व

6.4.1 साम्प्रदायिकता

6.4.2 भाषा विवाद

6.4.3 जातिवाद

6.4.4 प्रादेशिकवाद

6.4.5 आर्थिक विषमतायें

6.4.6 दूषित राजनीति

6.4.7 दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली

6.4.8 विदेशी कूटनीति

6.4.9 युवा पीढ़ी में निराशा

6.5 राष्ट्रीय एकीकरण के उपाय

6.5.1 विद्वेषपूर्ण प्रचार पर नियंत्रण

6.5.2 शिक्षा मे सुधार

6.5.3 राष्ट्रीय भाषा

6.5.4 अल्पसंख्यकों का संरक्षण

6.5.5 साम्प्रदायिक सगठनों पर नियन्त्रण

6.5.6 आर्थिक न्याय की स्थापना

6.5.7 नैतिक शिक्षा को प्रोत्साहन

6.6 राष्ट्रीय एकीकरण के लिए किये गये प्रयास

6.6.1 राष्ट्रीय एकीकरण महासम्मेलन

6.6.2 राष्ट्रीय एकता समिति का गठन

6.6.3 राष्ट्रीय एकीकरण सम्मलेन 1968

6.6.4 राष्ट्रीय एकीकरण के लिए गठित और आयोजित अन्य संगठन एवं आयोजन

अध्याय (7) प्रादेशिकवाद से संबद्ध अन्य समस्यायें 196–220

7.1 आतंकवाद

7.2 नक्सलवाद

7.3 पृथकतावादी आन्दोलन

7.4 शरणार्थी एवं गैर कानूनी घुसपैठ

7.5 छद्म राजनीति

7.6 कृषक आन्दोलन

7.7 मजदूर आन्दोलन

अध्याय (8) परामर्श एवं समाधान 221–238

8.1 प्रादेशिकवाद पर नियन्त्रण हेतु सुझाव

8.2 प्रादेशिकवाद की समस्या हेतु समाधान

8.3 छोटे राज्यों का औचित्य

8.4 क्षेत्रीय दलों का प्रादुर्भाव

सारांश एवं निष्कर्ष 239–250

मानचित्रों की सूची

चित्र संख्या	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.1	भारत : संभावित राजनीतिक प्रारूप	30 A
2.1	भारत : भाषायी प्रारूप	50 A
3.1	भारत : महाकाव्य काल	59 A
3.2	भारत : सोलह महाजनपद 600 ई. पू.	62 A
3.3	भारत : चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य 298 ई. पू.	63 A
3.4	भारत : कुषाण साम्राज्य	66 A
3.5	भारत : गुप्त साम्राज्य 400 ई.	68 A
3.6	भारत : राजनीतिक स्थिति 1525 ई.	74 A
3.7	भारत : अकबर का साम्राज्य 1605 ई.	75 A
3.8	भारत : मुगल साम्राज्य 1739 ई.	76 A
3.9	भारत : ब्रिटिश साम्राज्य 1856 ई.	78 A
	A सिकन्दर की योजना	
	B ईट्स की योजना	
	C मुखर्जी की योजना	
	D भथेजा की योजना	
3.11	भारत : पुनर्गठित 1 नवम्बर, 1956 ई.	80 A

3.12 भारत : प्रशासकीय इकाइयाँ 15 नवम्बर, 2002 ई. 84 A

4.1 भारत : भाषायी प्रारूप 1991 ई. 93 A

4.2 भारत : हिन्दी भाषा विरोधी आन्दोलन 99 A

5.1 जम्मू और कश्मीर : प्रशासकीय इकाइयाँ 118 A

5.2 भारत · द्रविडनाड 125 A

5.3 छत्तीसगढ़ · प्रशासकीय इकाइयाँ 138 A

5.4 उत्तरांचल : प्रशासकीय इकाइयाँ 140 A

5.5 झारखण्ड : प्रशासकीय इकाइयाँ 145 A

5.6 बुन्देलखण्ड : प्रशासकीय इकाइयाँ 151 A

6.1 भारत : धार्मिक प्रारूप 1991 166 A

7.1 भारत : आतंकवाद प्रभावित राज्य 200 A

7.2 भारत : नक्सलवादी आन्दोलन 203 A

7.3 भारत : पृथकतावादी आन्दोलन 204 A

7.4 भारत : बांग्लादेशी घुसपैठियों से प्रभावित क्षेत्र 206 A

सारणियों की सूची

3.I भारत के राज्य (1 नवम्बर, 1956 ई.) 81

3.II भारत : राज्यों के संघ शासित प्रदेशों का क्षेत्रफल (15 नवम्बर, 2000 ई.) 84–85

प्रस्तावना

ऐतिहासिक पुनरावलोकन

यदि हम प्राचीन भारतीय इतिहास का अध्ययन करे तो पाते हैं कि बुद्ध के समय (ईसा पूर्व छठी सदी) भारत मे 16 बडे–बडे राज्य थे जो महाजनपद कहलाते थे। इनमे अधिकतर राज्य विन्ध्य के उत्तर मे थे और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त से बिहार तक फैले हुए थे। इनमे मगध, कोसल, वत्स और अवन्ति ये चार अधिक शक्तिशाली थे। पूरब से शुरू करने पर पहले अग जनपद था जिसे अन्ततोगत्वा पडोस के शक्तिशाली मगध राज्य ने अपने मे मिला लिया (शर्मा, 1995, पृष्ठ 106)।

धीरे–धीरे मगध साम्राज्य और अधिक शक्तिशाली होता गया। मगध के सम्राट बिम्बसार ने अग देश पर अधिकार कर लिया। कालान्तर मे मगध साम्राज्य ने काशी, कोसल, वत्स और अवन्ति को भी अपने मे मिला लिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि छोटे और कमजोर राज्य बडे राज्यो की तुलना मे अपेक्षाकृत कम स्थायी रहे हैं। यही कारण था कि सिकन्दर (326 ईसा पूर्व) जब विश्व विजय के लिये यूनान से निकला तो पश्चिमोत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति उसकी विश्व विजय की योजना के लिए अधिक उपयुक्त मिली। यह क्षेत्र अनेक राजतन्त्रो तथा कबायली गणराज्यों मे बटा हुआ था, जो अपनी–अपनी भूमि से चिपके हुए थे और जिन रजवाडों पर उनका शासन था उनसे उन्हे बडा गहरा प्रेम था। सिकन्दर ने पाया कि इन रजवाडों को एक–एक कर जीत लेना आसान है। इन इलाको के शासको मे दो प्रमुख थे पहला तक्षशिला का राजा आम्भि, दूसरा पोरस, जिसका राज्य झेलम और चिनाब नदियो के बीच के क्षेत्र मे फैला हुआ था। दोनो एक साथ मिलकर सिकन्दर को आगे बढने से रोक सकते थे। परन्तु अपनी आपसी शत्रुता के कारण वे दोनो एक सयुक्त मोर्चा नही बना सके और अन्तत दोनों ने एक–एक करके सिकन्दर के सामने घुटने टेक दिये। सिकन्दर पूर्व की ओर और भी बढना चाहता था किन्तु उसकी सेना ने उसका साथ देने से इनकार कर दिया जिसका प्रमुख कारण शक्तिशाली मगध साम्राज्य का होना था। इस प्रकार

स्पष्ट है कि भौगोलिक दृष्टि से बडे तथा शक्तिशाली साम्राज्य पर कोई भी शासक व उसकी सेना जल्दी आक्रमण नही कर पाते थे (शर्मा, 1995, पृष्ठ 114–115)।

323 ई० पू० मे चन्द्रगुप्त मौर्य मगध का शासक बना। उसके विशाल साम्राज्य मे बिहार, उडीसा और बगाल के बडे भागो के अतिरिक्त पश्चिमी और उत्तर–पश्चिमी भारत और दकन भी सम्मिलित थे। फलत मौर्यों का शासन, केवल तमिलनाडु तथा पूर्वोत्तर भारत के कुछ भागो को छोडकर समूचे भारतीय उपमहाद्वीप पर फैला था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिमोत्तर भारत को सेल्यूकस की गुलामी से मुक्त कराया जो सिन्धु नदी के पश्चिम मे राज करता था। उसने सेल्यूकस को पूर्वी अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और सिन्धु नदी के पश्चिम के क्षेत्रो को मौर्य साम्राज्य को देने के लिए बाध्य कर दिया। अशोक (273–232 ईसा पूर्व) के साम्राज्य पर कोई भी विदेशी या देशी आक्रान्ता आक्रमण करने का साहस नहीं कर सका जिसका प्रमुख एकमात्र कारण यही था कि उसका साम्राज्य एक सुदृढ तथा बडा साम्राज्य था। मौर्य साम्राज्य के विघटन के बाद, दो बडी राजनीतिक शक्तियॉ उभरी सातवाहन और कुषाण। सातवाहनो ने दकन और दक्षिणी भारत मे स्थायित्व लाने का काम किया। यही काम कुषाणो ने उत्तरी भारत मे किया। इन दोनो साम्राज्यो का ईसा की तीसरी सदी के मध्य मे अन्त हो गया। कुषाण साम्राज्य के खण्डहर पर गुप्त साम्राज्य का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने अपना आधिपत्य कुषाण और सातवाहन दोनो के राज्य क्षेत्रो के एक बहुत बडे भाग पर स्थापित किया। गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है। ईसा की तीसरी सदी के अन्त मे गुप्त वश का आरम्भिक राज्य उत्तर प्रदेश और बिहार के क्षेत्र मे सीमित था। परन्तु धीरे–धीरे यह एक भारतव्यापी बडा एव शक्तिशाली साम्राज्य बन गया। युद्ध के कारण छठी सदी के आरम्भ मे गुप्त साम्राज्य पुन एक छोटा राज्य हो गया और सामन्तो के विद्रोह ने इस साम्राज्य को और भी दुर्बल बना दिया। गुप्त सम्राटो की ओर से उत्तरी बंगाल मे नियुक्त शासनाध्यक्ष (गवर्नर) और दक्षिण–पूर्व बगाल के सामन्तों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। मगध के परवर्ती गुप्त शासको ने अपनी शक्ति बिहार मे जमाई। इस प्रकार धीरे–धीरे गुप्त साम्राज्य पराभव को प्राप्त हो गया। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद उत्तर भारत फिर अनेक छोटे–छोटे राज्यो मे बॅट गया। इस दौरान हूणो ने लगभग 500 ई० में कश्मीर, पजाब और पश्चिमी भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उत्तरी

और पश्चिमी भारत लगभग आधे दर्जन सामन्तो के हाथ मे चला गया, जिन्होने गुप्त साम्राज्य को आपस मे बॉट लिया था। इनमे से एक सामन्त ने, जो हरियाणा स्थित थानेसर का शासक था, धीरे–धीरे अपनी प्रभुता अन्य सभी सामन्तो पर कायम कर ली। यह शासक था हर्षवर्धन (606–647 ई०)। धीरे–धीरे वह देश के एक काफी बडे भाग को राजनीतिक एकता के सूत्र मे बॉधने मे सफल हुआ। इस दौरान व्यापार मे गिरावट के कारण मुद्रा दुर्लभ होती गयी, जिसके कारण राज्य को समर्पित विशेष सेवाओ के लिए पुरोहितो, मन्त्रियो, अधिकारियो तथा सेना को मुद्रा की जगह जागीरे दी जाने लगी। इससे सामन्ती व्यवस्था की शुरूआत हुई और अन्तत साम्राज्य छोटे–छोटे टुकडो मे विभक्त होकर नष्ट हो गया (शर्मा, 1995, पृष्ठ 127–195)। राजा द्वारा दिया गया राजस्व का भार (जिसे भोग या जागीर कहा जाता था), जो एक शासक अपने अधिकारियो या समर्थको को प्रदान करता था, सिद्धान्त रूप से अस्थायी होता था और राजा उन्हे जब चाहे वापस ले सकता था। सामयिक धारणा के अनुसार एक पराजित राजा को भी उसकी भूमि से वचित करना पाप समझा जाता था। परिणामस्वरूप इस काल के राज्यों के विशाल क्षेत्रो पर पराजित और अधीनस्थ राजाओ का प्रभुत्व था जो निरन्तर अपनी स्वतन्त्रता को पुन प्राप्त करने की ताक मे लगे रहते थे। भारतीय राज्यो की आन्तरिक निर्बलता बाद मे चलकर तुर्कों के साथ सघर्ष के समय कष्टदायक हो गयी।

भारत की सद्भावपूर्ण संघीय राज्य व्यवस्था उसके प्रदेशो की समरूप सामाजिक–सांस्कृतिक विरासत की मजबूत नींव पर निर्मित की जा सकती है। वस्तुत भारत के प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास से स्पष्ट होता है कि इसका सघीय अस्तित्व सदियो से विद्यमान रहा है और अनेक दूरदर्शी राजाओं द्वारा भी सामाजिक–सास्कृतिक भूभागीय इकाइयॉ मान्य रही हैं। ब्रिटिश उपनिवेशी शासन हमारी सघीय राज्य व्यवस्था की पूर्ण परम्परा के लिये सर्वाधिक विनाशकारी साबित हुआ। उसने हमारी राज्य व्यवस्था के सामाजिक–सांस्कृतिक इकाइयों का कुछ मामले मे तो पूरा विनाश ही कर दिया और अधिकाश महत्वपूर्ण इकाइयो को तोड–मरोडकर विकृत बना दिया। अत ब्रिटिश शासन ने भारत के स्वाभाविक विकास से एक प्रामाणिक सघीय राज्य व्यवस्था की निर्माण प्रक्रिया को विघटित कर दिया।

हम भारत के पूर्व भूभागीय इकाइयो के निर्धारण के सम्बन्ध मे प्राचीन कालीन और मध्यकालीन दो महत्वपूर्ण सूचनार्थ दस्तावेजो से सघीय राज्य व्यवस्था मे भारतीय प्रादेशिकता की विचारधारा को समझ सकते हैं। इनमे से एक दस्तावेज पुराण मुख्यत *वायुपुराण* प्राचीनकालीन भारत से सम्बन्धित है तथा दूसरा दस्तावेज अबुल फजल द्वारा रचित *'आइने–अकबरी'* है। पुराण भारतवर्ष के जनपदो के बारे मे विवरण देते हैं। पुराणो मे जिन जनपदो या प्रादेशिकता के अनुसार निर्धारित जन समुदायो का विवरण मिलता है, वे जनपद, जातीय, बोली, सामाजिक रीतिरिवाज, भौगोलिक स्थान और राजनीतिक स्थिति पर आधारित थे। *वायुपुराण* मे भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति का विस्तृत विवरण मिलता है। इसके अनुसार भारत के 'सात' प्रमुख क्षेत्रो मे 165 जनपद थे। अबुल फजल के *आइने –अकबरी* (सम्राट जहॉगीर के सस्मरण) से यह स्पष्ट होता है कि किस आधार पर मुगल सूबो (प्रान्तो) का गठन किया गया था। *आइने–अकबरी* मे स्पष्ट विवरण मिलता है कि मुगलकालीन प्रान्तो का सीमा निर्धारण भाषायी और सामाजिक–सास्कृतिक सजातीयता के आधार पर किया गया था। अपने सस्मरण मे जहॉगीर ने कहा है कि उसके पिता सम्राट अकबर उन तथ्यो के प्रति सचेत रहते थे जिससे प्रान्त देश के भाषायी और सास्कृतिक क्षेत्र के अनुरूप गठित किया जा सके। मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही केन्द्रीय प्राधिकरण के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया, जो कि मुगल साम्राज्य मे ही निर्धारित की गयी थी, प्रतिकूल हो गयी। इसमें सामाजिक–सास्कृतिक तत्व कमोवेश गौण होते गये। जो कुछ बचा था वह भी ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आधिपत्य के साथ पूर्णत समाप्त हो गया। भारत का मानचित्र पूरी तरह बदल गया। ब्रिटिश उपनिवेशी शक्ति ने स्थानीय सामन्तो और छोटे–छोटे राजाओं को बढावा देकर देश मे 566 देशी रियासतो का निर्माण किया। जैसा कि हम जानते हैं, ब्रिटिश प्रान्तो का निर्माण राजनीतिक रणनीति और समझ के आधार पर साम्राज्यवादी विस्तार के उद्देश्य से देश पर कब्जा बनाये रखने की एक प्रक्रिया के तहत किया गया था, न कि किसी तर्क संगत सामाजिक–सास्कृतिक या आर्थिक आधार पर। यह स्मरण रखना जरूरी है कि सन् 1947 मे जिस भारतीय राज व्यवस्था की अधिरचना हमे विरासत मे मिली थी वह एक विदेशी साम्राज्यवादी शक्ति द्वारा अस्त–व्यस्त पच्चीकारी के रूप मे थी। उसमे प्रादेशिक संगठन का सरचनात्मक आधार अप्रमाणिक और असगत था।

भारतीय संघ का अभ्युदय

राष्ट्रीय एकता की एक प्रमुख समस्या सघीय राज्य व्यवस्था को व्यावहारिक रूप से क्रियान्वित करने मे स्पष्ट रूप से विभाजित क्षेत्रो के एकीकरण ,से सम्बन्धित है (आज इनमे से अधिकाश क्षेत्रो का राज्य के रूप मे गठन किया गया है)। भारत के क्षेत्र और उप–क्षेत्र स्पष्टतया सामाजिक और सास्कृतिक पक्षो पर आधारित हैं अत हमे उनके स्वरूप और उनकी समस्याओ को समझना चाहिए। यदि किसी भी प्रणाली की कल्पना की जाये तो भारत जैसे विस्तृत क्षेत्र वाले देश मे प्रादेशिकवाद और उपप्रदेशवाद से बढकर अधिक बुनियादी कोई अन्य विचार नही हो सकता है किन्तु एक बार जब सघीय राष्ट्र/राज्य अस्तित्व मे आता है तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता एक यथार्थ रूप ग्रहण कर लेती है तब क्षेत्रीय भावनायें और मॉगे व्यक्त होती हैं और इसके दावेदार खडे होते हैं। इसका प्रमाण मानव इतिहास है। राष्ट्र की एकता और सामजस्य के कारणो का जो समर्थन कर रहे हैं, वे प्रकारान्तर से उसके उपक्षेत्रीय हितों की रक्षा या समर्थन का प्रत्येक प्रयास विभाजक, विखडक और असामजस्यपूर्ण मानते हैं। यह राष्ट्रीय समझ के प्रति सही उपागम नही है। हमे याद रखना चाहिए कि भारत जैसे विभिन्नता और अनेकता वाले देश मे एकता से अभिप्राय एकरूपता से नही है और न ही सामजस्य का अर्थ केन्द्रीयकरण है। राष्ट्रीय पहचान बनाने की प्रक्रिया को पूर्व शर्त के रूप मे राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत इन प्रदेशों का राष्ट्र मे एकीकरण आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए, एक भारतीय होने का मतलब यह नही है कि वह तमिलियन, तेलगु, बगाली, गुजराती, कश्मीरी, असमी, पंजाबी, नागा इत्यादि नहीं हो सकता। प्रादेशिकता और राष्ट्रीयता के बीच दृढ सामजस्य ही राष्ट्रीय एकता को वास्तविक रूप मे समृद्ध कर सकते हैं। फिर भी यह प्रमाणित है कि राष्ट्रीय अन्धभक्ति की तरह ही प्रतिक्रियावादी, प्रादेशिक या उप–प्रादेशिक हानिकारक देश भक्ति भी राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यन्त घातक और विनाशकारी है। राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओ और भारतीय गणराज्य के निर्माताओ के दिमाग मे ऐसे प्रबल विचार सर्वोपरि थे। इसलिए हम पाते हैं कि सन् 1947 ई० मे राष्ट्रीय सप्रभुता हासिल करने और सन् 1950 ई० में लोकतान्त्रिक सविधान अगीकार करने के साथ ही हमने भारत के लोकतान्त्रिक पुनर्गठन की प्रक्रिया आरम्भ कर दी। इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि सविधान की घोषणा से ही सघीय इकाइयो के सगठन का कार्य लगातार चलता रहा।

वस्तुत सन् 1953 ई० मे राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना के साथ इसका पूर्णत प्रयोग होने लगा। राज्य पुनर्गठन आयोग की अधिकाश सिफारिशे राज्य पुनर्गठन अधिनियम – 1956 द्वारा क्रियान्वित की गयी। राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशो को निर्धारित करने के लिए मूलभूत सिद्धान्त थे–

1 भारत की एकता और सुरक्षा को सरक्षण और मजबूती,

2 भाषायी और सास्कृतिक सजातीयता,

3 वित्तीय, आर्थिक और प्रशासनिक महत्व के मुद्दे,

4 पचवर्षीय राष्ट्रीय आर्थिक योजना का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन।

आयोग ने राज्य पुनर्गठन मे सभी पक्षो के सन्तुलन पर ध्यान रखते हुए राज्यो की सीमा निर्धारण मे भाषापक्ष की प्राथमिकता पर विशेष बल दिया। आयोग ने भाषायी सजातीयता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। भाषायी सजातीयता ही राज्यो के पुनर्गठन मे तर्कसगत आधार प्रदान करती है। यह देश के सुपरिभाषित प्रदेशो मे अन्तर्निहित जीवन के सामाजिक–सास्कृतिक मानदण्ड को प्रतिबिम्बित करती है। आयोग ने इसके प्रतिपादन की प्रेरणा केवल स्पष्टतया आमतौर पर जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियो की बढती मॉगो से ही नही प्राप्त की थी। इसका मूलभूत दृष्टिकोण तो काग्रेस ने सन् 1905 ई० से ही अपनाया था, जो कि आयोग के लिए सबसे बडी प्रेरणा साबित हुई। सन् 1920 ई० के नागपुर अधिवेशन से ही कांग्रेस ने एक स्पष्ट राजनीतिक लक्ष्य के रूप मे प्रान्तो के भाषायी पुनर्गठन के लिए दृढता के साथ अपनी प्रतिबद्धता स्वीकार कर ली थी। इस सिद्धान्त की दृढ और अटल पुनरावृत्ति सन् 1928 ई० के सर्वदलीय सम्मेलन की नेहरू समिति की सुप्रसिद्ध रिपोर्ट मे की गयी थी। इस रिपोर्ट मे साथ–साथ कहा गया कि *"भाषायी आधार पर प्रान्तो का पुनर्गठन करने के लिए यह बहुत ही ऐच्छिक सिद्धान्त होता है। नियम के अनुसार भाषा एक विशिष्ट प्रकार की संस्कृति, परम्परा और साहित्य के अनुकूल होती है। एक भाषायी क्षेत्र मे ये सभी पक्ष प्रान्तों की सामान्य प्रगति में मदद करेगें।"*

एक अलग तेलुगु राज्य की स्थापना के लिए आन्दोलन के जोर के पीछे यही तर्क था। पहली भाषायी सजातीयता के आधार पर सन् 1953 ई० मे भारत मे पहले भाषायी राज्य के रूप मे आन्ध्र राज्य का निर्माण किया गया। सन् 1956 ई० मे विशाल आन्ध्र की मॉग पर पहले के हैदराबाद प्रान्त और मद्रास प्रान्त के तेलुगु भाषी जिलो को मिलाकर आन्ध्र प्रदेश का निर्माण किया गया। इसके साथ ही भाषायी सजातीयता के सिद्धान्त पर राज्यो के पुनर्गठन की प्रक्रिया ने गति पकडी। सन् 1956 ई० मे प्रमुख आठ भाषा समूहो (असमी, बगाली, कन्नड, कश्मीरी, मलयालम, उडिया, तमिल और तेलुगु) के लिए अलग–अलग राज्यो का गठन किया गया। इसी प्रकार सन् 1960 ई० मे गुजराती और मराठी दो भाषा–भाषियो के लिए अलग–अलग राज्य बने। सन् 1966 ई० मे ही एक साथ पॉच हिन्दी भाषी राज्यो (बिहार, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश) का पुनर्गठन किया गया। सविधान की आठवी अनुसूची मे रखी गयी 18 भाषाओ मे से सिर्फ उर्दू, सस्कृत, कोकडी एव नेपाली 4 भाषाओ को छोडकर 14 भाषा समूहो के अलग–अलग राज्य हैं (उर्दू एव कोकणी भाषा की पर्याप्त सख्या मे कमी और निर्धारण भौगोलिक क्षेत्र के अभाव तथा भारत के सभी क्षेत्रो मे संस्कृत भाषियो के बिखराव के कारण तथा नेपाली भाषा कई राज्यो मे होने के कारण अलग–अलग राज्य नही बनाये जा सकते थे)। अत सन् 1966 ई० से कुछ सामाजिक–सास्कृतिक ढॉचे और राजनीतिक अप्रत्याशित कार्यवाही के कारण स्पष्टतया भाषायी सूत्र को भारत मे राज्य पुनर्गठन के मूलभूत मानदण्ड के रूप मे वैधानिक मान्यता मिल गयी।

किन्तु हमे याद रखना चाहिए कि पूर्णत प्रचलित भ्रातियो के बावजूद भाषायी सजातीयता के आधार पर ही राज्यो का गठन नही किया जा सकता है। अत एक सूक्ष्म और गहरी छानबीन से पता चलता है कि राज्यो का पुनर्गठन भाषा के साथ–साथ आर्थिक और मानवीय विचार तथा बोध जैसे अनेक नाजुक पक्षो (नागालैण्ड, मेघालय, मणिपुर और त्रिपुरा), धर्म, लिपि और मनोभाव (हरियाणा और पंजाब), सास्कृतिक परम्परा (महाराष्ट्र और गुजरात), ऐतिहासिक और राजनीतिक पक्ष (उत्तर प्रदेश और बिहार), देशी राज्यो का समन्वय और एकता तथा महत्वपूर्ण समूहन के लिए उसकी जरूरत (मध्य प्रदेश और राजस्थान) और निःसन्देह भाषा सहित सामाजिक विशिष्टता (तमिलनाडु, केरल, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, असम,

बगाल और उडीसा) के तत्वो की भारतीय सघ के निर्माण मे निर्णायक भूमिका रही है। भाषा की अपेक्षा दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष प्रादेशिकता है। प्रदेश को एक भूभागीय इकाई के रूप मे परिभाषित किया जाता है जिसमे मुख्यत भाषा से सम्बद्ध पक्ष जैसे भाषा या भाषाये, जाति, जातीय समूह या जनजाति और सामाजिक ढॉचे एव सास्कृतिक मानदण्ड से सम्बन्धित पक्ष जैसे लोकनृत्य, सगीत लोककला इत्यादि सम्मिलित हैं। भारतीय राज्य व्यवस्था का एक सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह प्रदेशो और उप–प्रदेशो का एक सबसे समुच्चयन है। भारत के सात प्राकृतिक क्षेत्रो के ढॉचे के अन्तर्गत ये प्रदेश और उप–प्रदेश अपनी विशिष्ट अलग सामाजिक–सास्कृतिक पहचान रखते हैं।

जब भारत मे राज्यो का पुनर्गठन भाषायी आधार पर किया गया, इसमे भारी फेरबदल करनी पडी। वस्तुत भारत के सामाजिक–सास्कृतिक प्रादेशीकरण के रूप मे जिस भाषा क्षेत्र का निर्माण होता है उसे हम वृहत् सामाजिक–सास्कृतिक क्षेत्र कह सकते हैं। प्रमुख हिन्दी क्षेत्र सहित अपनी विभिन्न जनसख्या के साथ भारत के 13 भाषायी क्षेत्र हैं। इनमे क्षेत्र विस्तार और जनसंख्या के अनुसार हिन्दी क्षेत्र सबसे बडा भाषा क्षेत्र है। उल्लेखनीय है कि अन्तिम जनगणना के आकडो मे जिस हिन्दी शब्द को वर्गीकृत किया गया है और सार्वजनिक बातचीत तथा विचार–विमर्श के दौरान जिसका प्राय प्रयोग किया जाता है, वह एक स्तर पर कई विकसित बोलियो के समुच्चयन का पर्याय है। हिन्दी क्षेत्र की अनेक विकसित बोलियो को भाषाविदो ने भाषा के रूप मे स्वीकार भी किया है। हिन्दी मे मैथिली, राजस्थानी, भोजपुरी, ब्रजभाषा, अवधी, हरियाणवी और खडी बोली इत्यादि मुख्य बोलियॉ शामिल हैं। इसके अलावा अधिकाश छोटी–छोटी बोलियॉ भी हैं जो हिन्दी क्षेत्र मे बोली जाती हैं। पिछले 30 वर्षों मे एक संयुक्त रूप से समान भाषा के लिए हिन्दी की बोलियो मे महत्त्वपूर्ण समानता लायी गयी है। फिर भी इस लम्बे–चौडे विस्तार वाले हिन्दी क्षेत्र मे विशेष प्रकार के क्षेत्रीय मुहावरे, बिम्ब विधान और सामाजिक आधार देखे जाते हैं। इन बोलियो को बोलने वाले व्यक्तियो की सख्या पर विचार करते समय यह आवश्यक है कि उनकी भिन्न उप–सस्कृति और उप–साहित्यिक परम्परा को मान्यता दी जाय। दूसरा बडा भाषायी समूह तेलुगु है। कुछ सामाजिक–भाषाविदो ने तेलुगु क्षेत्र में भी कई क्षेत्रीय बोलियो का उल्लेख किया है।

भारत मे एक सामाजिक–सास्कृतिक उप–क्षेत्र के निर्धारण के लिए निम्नाकित मानदण्ड प्रतिपादित किये गये हैं –

1 भाषा/बोली,

2 सामाजिक सघटन (जैसे समुदाय/जातियॉ),

3 मानव–जातीय पक्ष,

4 जनसाख्यिकीय विशेषता,

5 विस्तार क्षेत्र (भौगोलिक) निरन्तरता,

6. सास्कृतिक प्रतिमान,

7 अर्थव्यवस्था और आर्थिक जीवन,

8 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि,

9 राजनीतिक पृष्ठभूमि,

10 मनोवैज्ञानिक सघटन और समूह पहचान की अनुभूत सचेतना

(खान, 1996, पृष्ठ 180–183)।

जब भारत स्वतन्त्र हुआ, उस समय देश मे राष्ट्रवाद ज्यादा प्रबल था और प्रदेशवाद की प्रवृत्तिया बहुत दबी–दबी थीं। इसका महत्वपूर्ण कारण था कि राष्ट्रीय आन्दोलन के फलस्वरूप देश का सम्पूर्ण ध्यान स्वतन्त्रता संग्राम की ओर लगा हुआ था और स्वतन्त्र होने का लक्ष्य वह लक्ष्य था, जिससे वे क्षेत्रीय स्वार्थ से ऊपर उठकर राष्ट्रीय सघर्ष मे लग पाते थे। इसका यह मतलब नहीं हैं कि उस समय प्रदेशीय भावनाऍ विद्यमान नहीं थीं। फिर भी इनका व्यापक रूप नही था। यह चुनौती के रूप मे हमारे सामने नही आया था।

देश के स्वतन्त्र होने के बाद प्रदेशवाद को बल मिला। इस सन्दर्भ मे जो महत्वपूर्ण चरण रहे हैं, वे हैं – देश मे राजनीतिक एकीकरण विशेषकर देशी रियासतों का मिलना और

कई देशी रियासतो को मिलाकर सघीय इकाइयो का निर्माण किया जाना जैसे मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि। द्वितीय, सन् 1956 ई० मे भाषा के आधार पर राज्यो का पुनर्गठन किया जाना। एक ओर ये महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे, तो दूसरी ओर लोकतन्त्र का प्रयोग हो रहा था और राष्ट्र आर्थिक चुनौतियो का सामना कर रहा था। यह था, सन्दर्भ जिसमे प्रादेशिकवाद उभरकर हमारे देश की राज्यो की राजनीति मे प्रवेश करता है (जैन, 1997, पृष्ठ 277)। पिछली शताब्दी के छठे और सातवे दशक मे इसने राजनीति को बडे पैमाने पर प्रभावित करना शुरू कर दिया। प्रदेशवाद की इस प्रवृत्ति पर अकुश लगाए रखने के लिए और सभी को राष्ट्र के प्रति निष्ठावान बनाने की दृष्टि से हमारे सविधान मे इकहरी नागरिकता की व्यवस्था की गई है। फिर भी अनेक लोगो के मस्तिष्क मे भारतीय नागरिक होने की तुलना मे बगाली, बिहारी, गुजराती, पजाबी आदि होने की चेतना अधिक है। यह प्रादेशिक सकीर्णता भारतीय राष्ट्रीयता को पूरी तरह विषाक्त कर रही है, जो एक विचारणीय प्रश्न है। दक्षिणी, दक्षिण–पूर्व, उत्तर–पूर्व, उत्तरी एव उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र का प्रत्येक राज्य किसी न किसी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा विवाद अथवा जल बॅटवारे या पृथक राज्य की मॉग मे उलझा हुआ है। प्रत्येक क्षेत्रीय दल अपने राज्यो की सीमाओ तक ही सीमित है, जो स्थानीय, जातीय अथवा वर्ग हितो का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मानव सभ्यता का जगद्गुरू भारत एक विशाल देश है – केवल भौगोलिक दृष्टि से ही नही, अपितु धर्म, सस्कृति, भाषा, परम्परा और वैचारिक दृष्टि से भी। विदेशी शक्तियो ने चाहे वे शक, यवन, हूण हो या तुर्क, मुगल या अग्रेज, सभी ने भारत की इस सामाजिक एव सांस्कृतिक विविधता का शोषण किया। उनकी कूटनीति का ही विषपूर्ण परिणाम था कि स्वतन्त्रता की पावन बेला पर भारत ने अपने को दो भागो मे विभाजित पाया – ब्रिटिश भारत के प्रान्त एव रियासते। यह सत्य है कि ब्रिटिश भारत मे शताब्दियो से सुषुप्त राजनीतिक चेतना जागृत हुई, लेकिन ब्रिटिश भारत के प्रान्तो का विभाजन अंग्रेजो ने तार्किक आधार पर करने के बजाय अपने हितो को ध्यान में रखकर किया। यही कारण है कि स्वाधीनता के बाद राष्ट्रीय नेतृत्व के सामने सबसे बडी चुनौती राजनीतिक एकीकरण की थी। इस सन्दर्भ मे प्रारम्भिक रूप मे दो समस्याये उभरकर सामने आयीं – रियासतो का भारतीय संघ मे विलीनीकरण तथा भारतीय सघ के अन्तर्गत केन्द्र राज्य सम्बन्धो का निर्धारण। इन दोनो

समस्याओ के सन्दर्भ मे विभिन्न क्षेत्रो का भारतीय मानचित्र मे पुनर्सीमाकन की नई चुनौती थी। इस तरह प्रदेशवाद का भारत मे उदय ब्रिटिश शासन की विरासत है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से, प्रदेशवाद को राष्ट्र विरोधी अथवा अलाभप्रद नही माना जाना चाहिए क्योकि प्रदेशवाद राष्ट्र विरोधी तभी बनता है जब उसमे उग्र एव विघटनकारी प्रवृतियो का प्रवेश होने लगता है। यदि प्रदेशवाद रूग्णता का प्रतीक है तो फिर 'विकेन्द्रीकरण' का भी विरोध होना चाहिए, लेकिन ऐसा नही होता। अत मौलिकता के धरातल पर प्रादेशिकवाद एव राष्ट्रीयतावाद मे कोई अन्तर नहीं है। यदि हम प्रदेशवाद का उन्मूलन करते हैं, तो हम निश्चित ही राष्ट्र की एकता और अखण्डता की जडो को खोखला करेगे। बाह्य समानता, भारत जैसे विशाल देश के लिए कदापि फलदायक नही हो सकती, ऐसा करना एक मूर्खता ही होगी। क्षेत्रीय दल भी भारत की एकता व अखण्डता के मार्ग का पत्थर तभी बनते हैं जब वे छुद्र स्वार्थों की पूर्ति हेतु अपने कार्य क्षेत्र को विस्तृत करने मे तत्पर हो जाते हैं। यदि प्रादेशिकवाद राष्ट्र–विरोधी नही है और न ही वह एकता व अखण्डता के मार्ग को अवरूद्ध करता है, तो फिर वर्तमान परिवेश मे वह निन्दनीय क्यो? क्यो उसे राष्ट्रीय एकता का शत्रु माना जाने लगा है और क्यो वह अलगाववादी भावना का एक रूप बन गया है? इन प्रश्नो को जन्म देने का उत्तरदायित्व राष्ट्र के बजाय प्रदेश विशेष के प्रति "अन्धास्था" को जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक कारण हैं जिन्होने अग्नि मे घी का कार्य किया है। सर्वप्रथम भौगोलिक दृष्टि से भारत वर्तमान मे 28 राज्यो तथा 7 केन्द्र शासित क्षेत्रो मे बॅटा हुआ है। हमारे मन–मस्तिष्क मे यह भावना घर कर गयी है कि उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान मे छोटे–छोटे प्रदेश भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इकाई बन सकते हैं। राजस्थान में मारवाड व मेवाड का क्षेत्र तथा दक्षिण गुजरात के आदिवासी लोगो ने भी पृथक राज्य की माँग की है। सन् 2000 ई० मे उत्तरप्रदेश से उत्तराचल, मध्य प्रदेश से छत्तीसगढ तथा बिहार से झारखण्ड को पृथक कर नये राज्य बनाये गये।

यह सत्य है कि 22 अगस्त 1988 ई० को एक समझौते के द्वारा पृथक गोरखालैण्ड की माँग *"दार्जिलिग गोरखा स्वायत्तशासी पर्वतीय परिषद"* मे परिवर्तित हो गयी, लेकिन पंजाब में खालिस्तान की मॉग अभी भी जीवित है। यह बात तो सर्वविदित है कि भारत एक बहुभाषा–भाषी एव धर्मों का देश है तथा यहॉ पर विभिन्न संस्कृतियों के लोग निवास करते हैं,

लेकिन स्थिति भयानक तब होती है जब व्यक्ति अपनी सस्कृति को उत्कृष्ट तथा दूसरो की सस्कृति को निकृष्ट मानने लगते हैं और सभी सीमाओ को लाघकर द्रविड मुनेत्र कडगम् जैसे दल भारतीय सघ से पृथक होने का राग अलापने लगते हैं। सन् 1956 ई० मे राज्य पुनर्गठन के बाद कई पुरानी रियासतो को राज्यो मे मिला दिया गया। आज भी इन रियासतो के लोग यह अनुभव करते हैं कि यदि उनकी रियासत का ही पृथक राज्य होता तो वे अधिक लाभ की स्थिति मे होते, यही भावना है जो अलगाववाद का कारण बनती है। आर्थिक पिछडेपन ने भी प्रदेशवाद को हवा दी है। भारत के कुछ राज्यो मे विकास खरगोश की गति से हुआ तथा कुछ राज्यो मे कछुए की गति से। यही कारण है कि आन्ध्र प्रदेश मे तेलगाना, राजस्थान मे दक्षिण–पूर्वी राजस्थान, महाराष्ट्र मे विदर्भ आदि क्षेत्रो मे आर्थिक पिछडेपन ने असन्तोष की अग्नि को तीव्र किया।

भारत एक विशाल राष्ट्र है, जिसमे विभिन्न प्रजातियो के लोग निवास करते हैं, जो अलग–अलग भाषाये बोलते हैं एव अलग–अलग धर्मों का अनुसरण करते हैं। यही नही ये विभिन्न जातियो, उप–जातियो, पन्थो और उप–पन्थो मे विभाजित हैं। भौगोलिक दृष्टि से भी भारत महाद्वीपीय आकार का राष्ट्र है। दूसरी बात यह है कि भारत के कतिपय जातीय, धार्मिक और भाषाई समूह कुछ क्षेत्र विशेष मे सकेन्द्रित हैं और वे उन क्षेत्रो को भी मानते हैं। एक ओर तो ये समूह अपने क्षेत्र विशेष के आर्थिक विकास मे अधिक रूचि रखते हैं और दूसरी ओर ये अपनी सांस्कृतिक पहचान को भी कायम रखना चाहते है, अतएव वे क्षेत्र से बाहर के निवासियों को क्षेत्र मे नही रहने देना चाहते हैं। इसी मानसिकता के चलते भारत मे प्रदेशवाद की राजनीति का अविर्भाव हुआ है। भारत जैसे वैभिन्नीकृत और विकासशील समाज मे, समरूप राजनीतिक सस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले राष्ट्रीय राज्य का उदय एक स्वचालित और प्राकृतिक विकास द्वारा नही हो सकता है। प्रदेशवाद एक सामाजिक वास्तविकता है। अतएव भारत मे राष्ट्रवाद के उदय को एक प्राकृतिक विकास के रूप में देखा जाना चाहिए। यह आधुनिकीकरण तथा जन–सहभागिता की प्रवृत्तियो के मध्य अन्तःक्रिया का परिणाम है। प्रदेशवाद एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, परन्तु भारत के सन्दर्भ में विशिष्ट बात यह है कि यहॉ एक क्षेत्र की राजनीतिक सीमा उस क्षेत्र की सास्कृतिक और भाषायी सीमा के समान्तर है। परिणामत सास्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक आकाक्षाओं का

तथा स्थिति विशेष से असन्तुष्टि राजनीतिक क्षेत्र मे भी प्रकटीकृत होती है। ये आकाक्षाये मुख्य रूप से बेहतर आर्थिक परिस्थिति, राजनीतिक शक्ति, अधिक सहभागिता, अधिक प्रादेशिक स्वायत्तता तथा कभी–कभी पृथक राज्य की मॉग के रूप मे मुखरित होती रही है। असन्तुलित आर्थिक और राजनीतिक विकास, जो विकास प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण मे स्वाभाविक ही है, ने प्रादेशिक असन्तुलन को जन्म दिया, जिसके परिणामस्वरूप उप–राष्ट्रीय प्रवृत्तियो को बल मिला है। निस्सन्देह यदि इन प्रादेशिक प्रवृत्तियो को राष्ट्र की मुख्य धारा मे समायोजित नही किया जाता तो ये राष्ट्रीय एकता के समक्ष गम्भीर चुनौती बन जातीं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् 1956 ई० मे राज्य पुनर्गठन आयोग ने भाषा को आधार बनाकर राज्यो के पुनर्गठन की जो व्यवस्था दी, उससे भविष्य मे भाषावार प्रान्त बनाने की मॉग को लेकर हिसात्मक आन्दोलन की भूमिका तैयार हो गयी। गोरखालैण्ड, बोडोलैण्ड, झारखण्ड व उत्तराखण्ड आन्दोलन खूनी सघर्ष के जिस दौर से गुजरे हैं, उसके पीछे राजनेताओ द्वारा इन क्षेत्रो के निवासियो की निरन्तर उपेक्षा ही प्रमुख कारण रहा है। इन आन्दोलनो को बिना किसी आधार के पृथकतावादी या अलगाववादी कह देना सर्वथा अनुचित होगा। उचित तो यह है कि इन आन्दोलनो के आलोक मे केन्द्र व सम्बन्धित राज्य सरकारो के बुनियादी चरित्रो को पूरे राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य मे देखा जाये, क्योकि किसी भी देश को अन्दर से तोड़ने का कार्य उसके निवासियो के मनोबल को तोडकर ही किया जाता है। आज उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, असम, नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र इत्यादि विभिन्न राज्यो के लोग किसी न किसी रूप मे अपने को आहत महसूस करते हुए अस्तित्व की लडाई लड रहे हैं। पूर्वोत्तर राज्यों के कुछ आन्दोलनो पर उग्रवादियो की पकड मजबूत हो गयी है। नेशनलिस्ट सोशलिस्ट काउन्सिल ऑफ नागालैण्ड के प्रशिक्षण केन्द्र म्यामार व बाग्लादेश में है। मिजो नेशनल फ्रन्ट, त्रिपुरा वालेण्टियर फोर्स, उल्फा यूनाइटेड लिबरेशन फ्रन्ट ऑफ असम व बोडो सिक्योरिटी फोर्स काफी सगठित उग्रवादी सगठन हैं। बाग्लादेश मे बढ रही गरीबी और भुखमरी के कारण बडी सख्या मे लोग प्रवासित होकर पूर्वांचल के क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। स्थानीय जनता मे इन विदेशी लोगो के खिलाफ भारी आक्रोश है क्योकि इनकी बढती सख्या से यहॉ के समूची जनसख्या सरचना एव सास्कृतिक पहचान के लुप्त हो जाने की आशंका है। विदेशी के सवाल को लेकर आसू ने लम्बे समय तक आन्दोलन चलाया

था। अब इस आन्दोलन की डोर उल्फा व बोडो सिक्योरिटी फोर्स के हाथो मे है। बेरोजगार युवको को इन उग्रवादी सगठनो मे प्रमुखता से आश्रय मिलता है। सरकार का ढुलमुल रवैया व लचर नीति किसी भी मामले को सर से पानी गुजर जाने की हद तक पहुँचा देने की रही है। कई क्षेत्रो मे तो इन्हे राजनीतिक पार्टियो तक का समर्थन प्राप्त है। इस समय जिस दार्जिलिग स्वायत्त परिषद की स्थापना के बाद क्षेत्र मे शान्ति की आशा की जा रही थी, वही अब पुन पृथक गोरखालैण्ड राज्य की मॉग उठने लगी है। इसी प्रकार, बोडो स्वायत्त सगठन का निर्माण जल्दबाजी मे कर दिया गया लेकिन उसका सीमाकन नही हुआ। कई क्षेत्रो मे आत्मसमर्पण करने वाले उग्रवादी पुन हथियार उठाने लगे हैं। इन लोगो को आसानी से विदेशी मदद व फिरौती द्वारा देशी पैसा आसानी से प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार पूर्वोत्तर राज्यों मे उग्रवाद की जडें बहुत गहराई तक पहुच गई हैं और पृथक राज्य के आन्दोलन उग्रवादी शक्तियो के हाथ मे पहुँच गये हैं। वास्तव मे एक और जहॉ, पूर्वोत्तर राज्यो मे उग्रवाद की समस्या से निपटने के लिए आर्थिक विकास के दीर्घकालीन कार्यक्रमो की नितान्त आवश्यकता है, वही दूसरी ओर यह भी उतना ही विचारणीय है कि देश के अन्य राज्यो मे पृथक राज्य की मॉग कर रहे आन्दोलन कही उग्रवादियो के हाथो मे पहुँचकर अलगाववादी रुख की ओर न मुड जाएँ। अपने राजनीतिक लाभ के लिए समस्या को विवशता की स्थिति तक पहुँचा देने की भारतीय राजनीतिज्ञो की प्रवृत्ति देश को विघटन के कगार पर पहुँचा सकती है। स्वायत्तशासी परिषद का झुनझुना थमाकर कुछ समय के लिए तो लोगों को शान्त किया जा सकता है, लेकिन वे कुछ समय बाद पुन पृथक राज्य की मॉग नही करेगे, इसकी कोई गारन्टी नही है। बेहतर तो यही होगा कि भूतकाल की भूलो से सबक लेकर दूसरे 'राज्य पुनर्गठन आयोग' का शीघ्र ही गठन किया जाये जिसमे न केवल केन्द्र–राज्य सबंधो को नये सिरे से पुन मूल्याकन करने की आवश्यकता है वरन् देश के विभिन्न भागो मे आर्थिक असमानता, पिछडेपन, बेरोजगारी एव गरीबी से उत्पन्न विघटनकारी समस्याओ के कारणो के सूक्ष्म विश्लेषण की आवश्यकता है।

सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा

प्रादेशिकवाद राजनीतिज्ञो एव भूगोल-विदो के अध्ययन का अपेक्षतया एक नवीन विषय है। वैसे तो जब से मानव सभ्यता का उदय हुआ, तभी से प्रादेशिकवाद किसी न किसी

रूप मे हमारे सामने मौजूद है। भारत मे स्वतन्त्रता के पश्चात नये-नये राज्यो की बढती मॉग के कारण हाल के वर्षों मे विद्वानो का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। इस सन्दर्भ मे राज्य पुनर्गठन आयोग 1956 तथा 1963 ई० मे मोहन कौल ने **'प्राब्लम ऑफ नेशनल इटीग्रेशन'** नामक ग्रन्थ मे प्रादेशिकवाद के बारे मे विस्तार से चर्चा की है। सन् 1963 ई० मे ही के० सथानम ने भारत मे केन्द्र-राज्य सम्बन्ध के बारे मे अध्ययन किया। इसी प्रकार सन् 1969 ई० मे एल० एम० सिघवी ने भारत मे केन्द्र-राज्य सम्बन्धो के विश्लेषण का प्रयास किया। सन् 1971 ई० मे तमिलनाडु सरकार ने केन्द्र-राज्य सम्बन्धो पर एक कमेटी गठित की। सन् 1972 ई० मे एस० एन० जैन ने सघ और राज्य के सबधो का अध्ययन किया। सन् 1981 ई० मे बोरीस आई क्लूयेव ने भारत मे राष्ट्रीयता और भाषा समस्या का विवेचन किया। इसी प्रकार सन् 1995 ई० मे राजनीतिक अर्थव्यवस्था और आधुनिक सघ के अध्ययन पर बल दिया गया। केन्द्र–राज्य सम्बन्ध पर सरकारिया आयोग ने अध्ययन किया।

चूँकि भारत लम्बे समय से विलगाववादी आन्दोलन की समस्या से ग्रसित रहा है अत देश मे आतकवाद की समस्या पर हाल के वर्षों मे काफी साहित्य उपलब्ध है। सन् 1966 ई० मे बलदेव राज नायर ने **'सिख सेपरेटिज्म इन पंजाब इन साउथ एशियन पालिटिक्स एण्ड रिलिजन'** में आतकवाद की समस्या की विधिवत जानकारी प्रस्तुत की। सन् 1976 ई० मे योनास एलेक्जेण्डर ने **'अन्तर्राष्ट्रीय आतकवादी : राष्ट्रीय प्रादेशिक एवं वैश्विक स्वरूप'** मे आतकवाद की समस्या का एक तर्क पूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया। सन् 1985 ई० मे एन० एस० सक्सेना ने भारत एव विश्व मे आतकवाद के इतिहास का विवेचन किया। सन् 1996 ई० में जाने-माने रक्षा विशेषज्ञ वेद मारवाह ने भारत मे आतकवाद के उपचार हेतु सुझाव प्रस्तुत किया। सन् 1989 ई० में नौनिहाल सिंह ने विश्व मे आतकवाद का विश्लेषण प्रस्तुत किया।

वर्तमान अध्ययन की वस्तुनिष्ठता

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रादेशिकवाद का देश के विकास के साथ-साथ समाज पर बहुआयामी प्रभाव पडता है। वर्तमान शोध प्रबन्ध मे प्रादेशिकवाद के इन्हीं पक्षों को उजागर करने का प्रयास किया गया है जो भारत के प्रादेशिकवाद के उत्पत्ति

के कारको एव स्थानीय प्रतिरूप आदि को प्रभावित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इस उद्देश्य से शोध प्रबन्ध के निम्न चार बिन्दु निर्धारित किए गये हैं--

1 भारत की ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण करना।

2 प्रादेशिकवाद के विभिन्न पक्षो, विशेषकर प्रादेशिकवाद की उत्पत्ति के कारको एव उसके देश के स्थानिक प्रतिरूप पर प्रभाव का परीक्षण करना।

3 भारत मे प्रादेशिकवाद को रोकने हेतु उपयुक्त परामर्श प्रस्तुत करना।

4 भारत मे प्रादेशिकवाद के साथ-साथ राजनीतिक, आर्थिक एव सामाजिक विकास हेतु समुचित सुझाव प्रस्तुत करना।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 8 अध्यायो मे विभाजित किया गया है। प्रस्तावना मे शोध प्रबन्ध का परिचय दिया गया है जिसमे शोध के उद्देश्य, उपागम, अध्ययन विधि आदि का विधिवत परिचय दिया गया है। अध्याय एक मे प्रादेशिकवाद की अवधारणा की विवेचना की गई है जबकि अध्याय दो मे प्रादेशिकवाद के उत्पत्ति के कारको का विश्लेषण किया गया है। अध्याय तीन मे प्रादेशिकवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विवरण दिया गया है। अध्याय चार में प्रादेशिकवाद के प्रकारो का क्षेत्र विस्तार एव विशेषताओ के आधर पर वर्णन किया गया है। अध्याय पाच मे भारत मे प्रादेशिकवाद के स्थानिक प्रतिरूप का आकलन किया गया है। अध्याय छ. मे प्रादेशिकवाद बनाम राष्ट्रवाद का तुलनात्मक विवरण देते हुए दोनो के मध्य अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अध्याय सात मे प्रादेशिकवाद से सम्बद्ध अन्य समस्याओ का निरूपण किया गया है जिसके अन्तर्गत आतकवाद, विलगाववादी आन्दोलन, शरणार्थी समस्या, नक्सली समस्या, मजदूर आन्दोलन, किसान आन्दोलन एव छद्म राजनीति का विस्तार से वर्णन किया गया है। अध्याय आठ मे भारत मे प्रादेशिकवाद पर नियत्रण हेतु भावी रणनीति सम्बन्धी प्रस्तावो के विभिन्न भागो मे प्रादेशिकवाद से जुडी समस्याओ के समाधान हेतु समुचित सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

उपागम

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे आगमनिक एव निगमनिक दोनो ही उपागमो के प्रयोग द्वारा शोध कार्य को सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है। समस्याओ के अध्ययन हेतु सर्वप्रथम कुछ सकल्पनाओ का निर्माण किया गया है तदुपरान्त राष्ट्रीय स्तर पर ऑकडो के एकत्रीकरण, वर्गीकरण, विश्लेषण एव मानचित्रीय प्रदर्शन द्वारा इन सकल्पनाओ की पुष्टि का परीक्षण किया गया है। इस दौरान (ऑकडो के एकत्रीकरण, वर्गीकरण एव विश्लेषण के समय) निर्मित सकल्पनाओ के अतिरिक्त कुछ नये निष्कर्ष भी प्राप्त हुए हैं, जिन्हे शोध प्रबन्ध के विवरण मे समुचित महत्व दिया गया है और उनसे निष्कर्ष निकाले गये हैं। इस प्रकार दो उपागमो का एक साथ उपयोग कर शोध प्रबन्ध को अधिकाधिक विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया गया है।

संकल्पनाएँ

भारत एक प्राचीन देश है जहॉ सदियो से राजनीतिक व्यवस्था कायम है। विश्व के अन्य पुराने बसे देशो की भॉति भारत मे भी प्रादेशिकवाद की जडे काफी गहरी एव पुरानी हैं किन्तु स्वतन्त्रता के बाद यहॉ प्रादेशिकवाद के बढाव एव उग्रता मे वृद्धि हुयी है। स्वतन्त्रता के पश्चात यहॉ भाषा, सम्प्रदाय, जाति, आर्थिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक कारको से प्रादेशिकवाद को बढाने मे और भी प्रेरणा प्राप्त हुई। विविधताओ भरे देश के कारण शोधकर्ता के मस्तिष्क में सदैव यह प्रश्न उमडता रहा कि भारत मे प्रादेशिकवाद के विकास मे राजनीतिक-भौगोलिक कारको का क्या योगदान रहा है? यदि योगदान है तो इसका परिणाम क्या एव कितना है? इन्ही प्रश्नो के उत्तर वर्तमान शोध प्रबन्ध की अधोलिखित सकल्पनाओ के परीक्षण द्वारा प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

1- भारत मे प्रादेशिकवाद राजनीतिक विकास का मूलाधार है।

2- प्रादेशिकवाद के विकास मे प्राकृतिक ससाधनो के विषम वितरण एव उपयोग की प्रमुख भूमिका रही है।

3- आर्थिक विषमताओ विशेषकर आर्थिक पिछडेपन का प्रादेशिकवाद के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

4- सामाजिक तत्व प्रादेशिकता एव राष्ट्रीयता के विकास को प्रभावित करते हैं।

5- आर्थिक विपन्नता, बेरोजगारी आदि का प्रादेशिकवाद की तीव्रता को बढाने मे प्रमुख योगदान होता है।

6- भाषायी, धार्मिक एव जातीय उन्माद से प्रादेशिकवाद को बढावा मिलता है।

7- प्रादेशिकवाद के पोषण एव विकास मे छद्‌म राजनीति का हाथ होता है।

8- प्रादेशिकवाद के अनेक प्रकार हैं जो सूक्ष्म स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक के क्षेत्रो को प्रभावित करते हैं।

9- अतिरजित प्रादेशिकवाद की परिणति आतकवाद एव राष्ट्रीय विघटन मे हो सकती है।

10- राष्ट्रीयता के विकास द्वारा देश मे विद्यमान आर्थिक असमानताओ को दूर करने मे मदद मिल सकती है।

11- भारत मे सुनियोजित तरीके से राष्ट्रीयता के विकास की आवश्यकता है। इससे अनेक राजनीतिक एव आर्थिक समस्याओं के समाधान मे मदद मिलेगी।

अध्ययन विधि

साक्ष्य संग्रह

अध्ययन हेतु ऑकडे दो मुख्य स्त्रोतो (i) लिखित साहित्य एव (ii) मानचित्रो द्वारा प्राप्त किये गये हैं। एतदर्थ, राज्य पुनर्गठन आयोग 1956, केन्द्र–राज्य सम्बन्ध सरकारिया आयोग के प्रतिवेदनो, राजनीतिक लेखों तथा राजनीति विज्ञान की पुस्तको का उपयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं निर्वचन

ऑकडो के विश्लेषण एव निर्वचन हेतु विभिन्न सारणियो एव मानचित्रो का प्रयोग किया गया है। मानचित्रीय तकनीक में साधारण वितरण मानचित्रो के अलावा बार डायग्राम, पाई डायग्राम आदि प्रदर्शन की विधियो का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक अध्याय के मुख्य शीर्षको, मानचित्रो एव सारणियो मे उस अध्याय के क्रमाकन का उपयोग किया गया है जबकि सन्दर्भ ग्रन्थो को प्रत्येक अध्याय के अन्त मे वर्णमाला क्रम मे व्यवस्थित किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

जैन, एस० एन०, 1997 **भारतीय सविधान शासन और राजनीति**, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

खान, रशीद्उद्दीन, 1996 **भारत मे लोकतन्त्र**, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।

शर्मा, रामशरण, 1995 **प्राचीन इतिहास**, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।

अध्याय – 1

प्रादेशिकवाद की अवधारणा

प्रादेशिकवाद की व्याख्या करना बहुत ही कठिन है क्योकि इसकी रूपरेखा सुस्पष्ट एव सुपरिभाषित नही है। इसका सम्बन्ध देश की राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था, तकनीकी विकास आदि सबसे है। अत प्रादेशिकवाद अपने आवरण मे पूर्ण सकल्पना (Total Concept) है। साथ ही प्रादेशिकवाद की अभिव्यक्ति केवल मानव जीवन के भौतिक पक्ष मे ही नहीं होती अपितु इसके मनोवैज्ञानिक पक्ष मे भी होती है। इसलिये इसकी व्याख्या और भी कठिन हो जाती है। फिर भी व्याख्या को प्रारम्भ करने के लिए हम कह सकते हैं कि प्रादेशिकवाद एक बहुमुखी भावना है जिसंके विभिन्न पक्ष मनोवैज्ञानिक, भौगोलिक, सास्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रो से सम्बद्ध हैं और इन सभी तत्वो से मिलकर जो मानसिक स्थिति उत्पन्न होती है, उसे हम प्रादेशिकवाद कह कर सम्बोधित करते हैं। यह आवश्यक नही है कि प्रादेशिकवाद की प्रत्येक अभिव्यक्ति मे इन सभी तत्वो का समान मात्रा मे योगदान हो, कही कोई और कही कोई तत्व प्रबल हो सकता है। यदि हम प्रादेशिकवाद की सही व्याख्या करना चाहते हैं तो हमे प्रादेशिकवाद के दोनो पहलुओ–सकारात्मक व नकारात्मक– पर समान रूप से विचार करना चाहिए। सेलिग हेरिसन ने भारतीय प्रादेशिकवाद के केवल नकारात्मक पक्ष को देखा है, अत इसी कारण से निष्कर्ष गलत सिद्ध हुए हैं। सकारात्मक दृष्टि से प्रादेशिकवाद व्यक्तित्व की खोज है और आत्मसिद्धि के प्रयास का प्रतीक है। यदि हम यह स्वीकार करे कि जब देश का प्रत्येक राज्य व्यक्तित्व सम्पन्न होगा, आत्मसिद्धि को प्राप्त होगा, तभी सामूहिक रूप से सारा देश उन्नत होगा। तब प्रादेशिकवाद के इस पक्ष मे एव राष्ट्र–निर्माण के उद्देश्य मे स्वाभाविक एव अनिवार्य विरोध दिखायी नही देता, यद्यपि सौदे की भावना अवश्य विद्यमान रहती है। जहॉ तक नकारात्मक पक्ष है, प्रादेशिकवाद "A psyche of relative depreciation" को प्रतिबिम्बित करता है। इस दृष्टि से यह एक ऐसी प्रवृत्ति का प्रतीक है कि कोई क्षेत्र यह सोच रहा हो कि उसे जानबूझ कर विकास की सुविधाओ एव लाभो से वचित रखा गया हो और इसलिए वह अपने आपको अन्य राज्यो से पिछडा हुआ

मानता है, इसलिए नही कि उसे पिछडा हुआ होना चाहिए अपितु इसलिए कि उसे अन्यायपूर्ण पिछडी अवस्था मे रखा गया है, दुर्भाग्य से भारत मे अभी तक प्रादेशिकवाद का नकारात्मक पक्ष ही उभरकर सामने आया है एव सकारात्मक पक्ष दबा रहा है, चाहे फिर वह आन्ध्र मे तेलगाना हो, महाराष्ट्र मे विदर्भ हो, गुजरात मे सौराष्ट्र हो, उत्तर प्रदेश मे पूर्वी उत्तर प्रदेश हो अथवा राजस्थान मे पूर्वी राजस्थान का प्रश्न हो। यदि प्रादेशिकवाद अपने नकारात्मक पक्ष मे बढता रहता है और अगर इसकी पिछडी स्थिति को सुधारा नही जाता तो यह अवश्य ही राष्ट्र एव लोकतन्त्र के लिए खतरा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रादेशिकवाद सकारात्मक पक्ष मे सराहनीय है परन्तु हमे यह नही भूलना चाहिए जो प्रादेशिकवाद अब तक भारत मे उभरा है एक महत्वपूर्ण चुनौती है, जिसकी अभिव्यक्ति कभी शिवसेना द्वारा महाराष्ट्र मे एव कभी लक्षित सेना द्वारा असम आदि मे हिसात्मक वारदातो के रूप मे हुई है। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि इस चुनौती का सामना नही किया जा सकता है। वास्तव मे नकारात्मक पक्ष को सकारात्मक पक्ष मे परिवर्तन करना भारतीय राजनीति के सम्मुख एक चुनौती है। अतएव यह मान लेना कि प्रादेशिकवाद देश एव लोकतन्त्र को समाप्त कर देगा, पूर्णत सत्य नही है। वास्तविकता यह है कि भारत जैसे विशाल देश मे एक ओर तो हमे प्रादेशिकवाद के साथ जीना सीखना होगा तथा साथ ही दूसरी ओर हमे प्रयत्न करना होगा कि प्रादेशिकवाद का नकारात्मक पक्ष लुप्त हो जाये तथा सकारात्मक पक्ष उभरे और यही हमारी एकता के दर्शन का प्रतीक है (जैन, 1997, पृ० 277–278)।

देश मे स्थित विभिन्न क्षेत्रो के निवासियो मे अपने क्षेत्र अथवा प्रदेश के प्रति विशेष लगाव होता है। समूचे देश के सन्दर्भ में अपने प्रदेश को ही महत्वपूर्ण समझना प्रादेशिकवाद का मूल रूप है। भारत के सन्दर्भ मे विभिन्न राज्यों अथवा प्रदेशो के निवासियो द्वारा राष्ट्रीय एकता से अपने को अलग समझते हुए अपने प्रदेश के प्रति विशेष निष्ठा और लगाव रखना प्रादेशिकवाद कहा जा सकता है। एकता मे विभिन्नता की स्थिति प्रादेशिकवाद का ही लक्षण है। प्रादेशिकवाद को उन तत्वो के द्वारा भी पहचाना जा सकता है जो राष्ट्रीय राजनीति मे अपने को अभिव्यक्त नही मानते और राष्ट्रीय हितों मे अपने हितो की सर्वोपरिता के लिए उत्सुक रहते हैं। यह भौगोलिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक तत्वो का

जटिल मिश्रण है। जटिल इसलिए कि इसके विषय मे यह कहना कठिन है कि इसकी उत्पत्ति के लिए कौन सा कारक प्रमुख है। विशाल और विविधतापूर्ण देश मे प्रादेशिकवाद होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह एकीकरण मे विभिन्नीकरण की अभिव्यक्ति है जो प्राय गम्भीर रूप धारण कर लेती है। परन्तु साधारणतया यदि अन्यथा प्रोत्साहन न दिया जाये तो प्रादेशिकवाद की भावना और प्रक्रिया अलगाववादी और पृथकतावाद से अलग रहती है। यह सम्पूर्ण मे अपना अस्तित्व बनाये रखने की चेष्टा करती है। सक्षेप मे, प्रादेशिकवाद का अर्थ किसी राज्य के किसी क्षेत्र/प्रदेश के लोगो की उस भावना और प्रयासो से है जिसके द्वारा वे अपने क्षेत्र विशेष के लिए अधिकाधिक आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक तथा सामाजिक विकास मे अभिवृद्धि चाहते हैं। यहॉ पर यह भी स्पष्ट रूप से स्मरण रखना चाहिए कि भौगोलिक रूप से निश्चित किसी क्षेत्र मे जब कुछ प्रक्रियाए तथा धारणाए राज्य और समाज के अन्य क्षेत्रो से भिन्न हो और ऐसा काफी लम्बे समय से चला आ रहा हो तो उस क्षेत्र को प्रदेश कहा जा सकता है। प्रदेश निर्धारक और प्रादेशिक भावना को विशिष्ट और पृथक बनाने वाले आवश्यक तत्व और विशेषकर समाजशास्त्रियो मे सहमति नही है। वस्तुत प्रदेश निर्माण की प्रक्रियाये क्या और कौन हैं? इस विषय मे विद्वानो और प्रादेशिकवाद की भावना की धारणाए भौगोलिक, धार्मिक, भाषागत, परम्परागत रीति-रिवाज, सास्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा रहन–सहन के ढँग इत्यादि पर आधारित होती है। प्रादेशिकवाद का एक अन्य आवश्यक तत्व यह भी है कि इसके अन्तर्गत क्षेत्र के निवासियो मे समानता, एकरूपता तथा अन्य क्षेत्रो से अलगाव की भावना पायी जाती है।

प्रदेश मे 'आन्तरिक रूप से अधिकतम समरसता' पाई जाती है जिसे भाषा, बोलियो, सामाजिक संगठनो, जातीय सरचना, जनसख्या की सरचना, भौगोलिक सामीप्य, सास्कृतिक प्रतिमान, आर्थिक जीवन, ऐतिहासिक या राजनीतिक पृष्ठभूमि और मनोवैज्ञानिक या सामूहिक अस्तित्व की सामान्य चेतना से बल प्राप्त होता है। व्यापक अर्थों में 'प्रादेशिकवाद' से अभिप्राय 'केन्द्रवाद' के विरूद्ध किये गये प्रयासो से लगाया जाता है। सकीर्ण अर्थों मे यह स्थानीय या सामाजिक महत्व के हितो के साथ लोगो के सम्बन्धो से सशक्त है (श्रीवास्तव, 1996, पृ० 329)। स्पष्ट है कि प्रादेशिकवाद से तात्पर्य किसी प्रदेश/क्षेत्र विशेष के लोगों की उस

भावना और प्रयासो से है, जिनके द्वारा वे अपने प्रदेश के आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक तथा राजनीतिक विकास हेतु शक्तियो मे वृद्धि चाहते हैं।

प्रदेश एक बहुअर्थी शब्द है। भौगोलिक दृष्टि से इसमे किसी जिले का भाग या राज्य का भाग अथवा समूचे देश के भाग को सम्मिलित किया जा सकता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रदेश की अवधारणा मे "साहचर्य" और अन्य प्रदेशो से "अलगाव" का भाव अनिवार्यत निहित होता है। इसके अतिरिक्त प्रदेश का विशिष्ट तत्व अधिकतम समरूपता होता है, जिसकी भाषा, सामाजिक सगठन, जनाकिकीय सगठन, सास्कृतिक प्रतिमान, आर्थिक जीवन, ऐतिहासिक अनुभव अथवा राजनीतिक पृष्ठभूमि हो सकती है। ***'एन्साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज'*** मे इसे परिभाषित करते हुए हेडविग हिट्ज ने लिखा है, "सामान्य रूप से प्रादेशिकवाद को उग्र केन्द्रीकरण के विरूद्ध प्रतिक्रियात्मक आन्दोलन के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है। प्रादेशिक आन्दोलन भौगोलिक अलगाव, स्वतन्त्र ऐतिहासिक परम्परा, प्रजातीय, जातीय अथवा धार्मिक विशिष्टता तथा स्थानीय हितो जैसे तत्वो या इनमे दो या दो से अधिक के मिश्रण का परिणाम होता है"।

भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य मे यदि हम प्रादेशिकवाद को परिभाषित करे तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राष्ट्र की अपेक्षा किसी क्षेत्र विशेष, अथवा राज्य या प्रान्त की अपेक्षा एक छोटे क्षेत्र (प्रदेश) से लगाव, उसके प्रति आसक्ति या विशेष अनुरक्ति ही प्रादेशिकवाद है। अन्य शब्दो मे, यह एक ऐसी सकुचित धारणा है जो भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्र आदि पर आधारित है और जो विघटनकारी प्रवृत्तियो को न केवल जन्म देती है अपितु उन्हे प्रोत्साहित भी करती है। इस दृष्टि से प्रादेशिकवाद राष्ट्रीयता की वृहत् भावना का विलोम है और उसका ध्येय सकुचित क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति होता है। यह राष्ट्रीय एकता के समक्ष एक गम्भीर चुनौती भी है।

1.1 प्रदेशिकवाद की विशेषतायें

(1) भारत में प्रादेशिकवाद का उदय ब्रिटिश शासन की विरासत है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत में दो प्रकार की शासन पद्धतियाँ थी एक ब्रिटिश भारत के प्रान्तो की एव दूसरी देशी रियासतों की। देशी रियासतो मे आन्तरिक स्वायत्तता भी विद्यमान थी। स्वतन्त्रता

प्राप्ति के समय राष्ट्रीय नेतृत्व के समक्ष इन राज्यो का सघ मे विलीनीकरण एक चुनौती थी। किसी प्रकार इस समस्या का समाधान कर सविधान मे सभी राज्यो को भारत के सघ मे विलीनीकरण किया गया, किन्तु बाद मे भाषा, राजस्व स्रोतो के बॅटवारे आदि जैसे प्रश्नो को लेकर प्रादेशिकवाद की भावना मे बराबर बढोत्तरी होती गयी।

(2) भारत पर्याप्त विभिन्नताओ वाला एक विशाल देश है। भाषा, सस्कृति, जीवन पद्धति, सामाजिक और आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाए विभिन्नताओ की द्योतक हैं और इन्ही के आधार पर व्यक्ति किसी एक क्षेत्र विशेष से जुडे होते हैं।

(3) भारत मे भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात राज्य के अन्तर्गत ही उप–विभाजन की मॉगे उठने लगी हैं। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय हितो के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किये जा रहे है। महाराष्ट्र मे विदर्भ, गुजरात मे सौराष्ट्र, मध्य प्रदेश मे विन्ध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश मे पूर्वान्चल, बुन्देलखण्ड एव हरित प्रदेश, जम्मू–कश्मीर मे जम्मू एव लद्दाख के लिए पृथक राज्यो की मॉग एव एतदर्थ आन्दोलन राज्यो के अन्दर बढती प्रादेशिकवाद की प्रवृत्ति के ज्वलत के उदाहरण हैं।

(4) रजनी कोठारी के शब्दो मे, "देश के सामने एक खतरा सघ मे राज्यो के अलग हो जाने का था।" कुछ लोगो ने आशका प्रकट की थी कि प्रान्तीयता की भावना का प्रदेश के लिए अधिक अधिकार या स्वायत्तता की मॉग बढती गई तो इससे या तो देश अनेक छोट–छोटे स्वतन्त्र राज्यो मे बॅट जायेगा या यहॉ तानाशाही कायम हो जायेगी।

(5) पृथकता की भावना उन राज्यों में ज्यादा बलवान और खतरनाक है जहॉ ऐसी आर्येतर जातियॉ हैं जो भारतीय सस्कृति की धारा मे पूरी तरह मिल नहीं पाई है जैसे उत्तर–पूर्व की जनजातियो का क्षेत्र।

(6) प्रादेशिकवाद के विकास मे राजनीतिक पार्टियो एव राजनीतिज्ञो ने भी उत्प्रेरक का कार्य किया है। तमिलनाडु मे द्रविड मुनेत्र कडगम, आन्ध्रप्रदेश मे तेलगुदेशम्, महाराष्ट्र मे शिव सेना, पजाब मे अकाली दल, असम मे असम गण परिषद, उड़ीसा मे बीजू जनतादल,

जम्मू-कश्मीर मे नेशनल कान्फ्रेन्स आदि ऐसे क्षेत्रीय राजनीतिक दल हैं जो सदैव क्षेत्रीय हितो का समर्थन करते हैं जिससे राष्ट्रीय एकता एव राष्ट्रीय हितो को नुकसान पहुँचता है।

1.2 प्रादेशिकवाद में उतार–चढाव

आन्ध्र प्रदेश के क्षेत्रवाद के आधार पर सेलिग हेरीसन ने बताया कि प्रादेशिकवाद देश के लिए खतरा है और यदि रोका न गया तो इससे देश की स्वतन्त्रता को भी खतरा उत्पन्न हो सकता है। इस प्रवृत्ति को इसलिए प्रोत्साहन मिला क्योकि लोकतन्त्र की स्थापना के फलस्वरूप देश मे प्रतियोगात्मक राजनीति को बढावा मिला एव आर्थिक क्षेत्र मे प्रतिस्पर्धा बढी। इससे जो राष्ट्रीय एकता धरोहर के रूप मे मिली थी उसकी भावना धीरे–धीरे कमजोर होने लगी। चौथे आम चुनावो मे नौ राज्यो मे हुई काग्रेस दल की हार से यह निष्कर्ष निकाला गया कि देश मे क्षेत्रीय भावनाएँ उभर रही हैं और इसी कारण इन चुनावो को "प्रादेशिकवाद की राजनीति" का प्रतीक बताया गया। इन चुनावो से हम जब आगे बढते हैं तो हमे लगता है कि कॉग्रेस पार्टी मे भी अन्दरूनी तनाव बढ रहा है। इससे भी प्रादेशिकवाद की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला। काग्रेस विभाजन के समय तथा राष्ट्रपति के निर्वाचन मे श्री वी० वी० गिरि को जिताने के लिए श्रीमती इदिरा गॉधी (सत्ता कॉग्रेस) को डी० एम० के० जैसे क्षेत्रीय दल से मदद लेनी पड़ी। केन्द्र द्वारा क्षेत्रीय दलो से राजनीतिक गठबन्धन किया गया। इससे राज्यो के नेताओ का महत्व बढने लगा। इन सभी कारणो से प्रादेशिकवाद को बल प्राप्त हुआ। साथ ही चीन के आक्रमण के पश्चात प० नेहरू के व्यक्तित्व को भारी आघात पहुँचा जिससे विरोध के स्वर मुखरित होकर सामने आने लगे। जब लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमन्त्री बने तो उनकी सपूर्ण शक्ति केवल भारत–पाक युद्ध को जिताने मे लग गयी। दुर्भाग्य से उनके असामायिक निधन के कारण युद्धोपरान्त उनको इस दिशा मे चिन्तन कर कुछ ठोस कदम उठाने का अवसर न प्राप्त हो सका। इसके बाद कॉग्रेस मे श्रीमती इदिरा गॉधी के नेतृत्व को बनाने मे राज्यो के नेतृत्व ने एक अहम् भूमिका अदा की। इससे राष्ट्रीय नेतृत्व कमजोर हुआ तथा राज्यो का व्यक्तित्व उभरा। किन्तु सन् 1971 ई० के भारत-पाक युद्ध एव बाग्लादेश के अभ्युदय के सन्दर्भ मे तथा सत्तारूढ दल द्वारा जगाई गई आकाक्षाओ के परिप्रेक्ष्य मे यह शका निराधार हो गयी। परिणामत सन् 1972 ई० के पचम

विधान सभाई चुनावो मे क्षेत्रीयता लगभग समाप्त–सी हो गई। परन्तु इसके लिए सरकार को कई अप्रजातात्रिक कदम भी उठाने पडे।

नि सन्देह ही केन्द्र मे अधिकाश समय तक सत्तारूढ रही काग्रेस पार्टी की केन्द्रीकृत राजनीति एव सभी राष्ट्रीय दलो द्वारा क्षेत्रीय एव प्रादेशिक हितो के प्रति अपनायी जाती रही उदासीन एव उपेक्षापूर्ण मनोवृत्ति के कारण विगत वर्षों मे अनेक राज्यो मे प्रादेशिकवाद व अलगाववादी प्रवृत्तियो मे वृद्धि हुई है तथा विभिन्न प्रदेशो मे क्षेत्रीय दलो ने राष्ट्रीय दलो को सत्ताच्युत किया है। सन् 1996 ई० के ग्यारहवे, सन् 1998 ई० के बारहवे तथा सन् 1999 ई० के तेरहवे लोकसभा चुनाव परिणामो ने क्षेत्रीय दलो की प्रभावी उपस्थिति व अहम् भूमिका को स्पष्ट रूप मे रेखाकित किया है। अनेक राजनीतिक समीक्षको को इससे राष्ट्रीयता की चूले हिलती दृष्टिगत होने लगी हैं।

1.3 प्रादेशिकवाद की अभिव्यक्ति

राज्य को प्रादेशिकवाद की अभिव्यक्ति की इकाई के रूप मे मानने पर इसकी अभिव्यक्ति के तीन रूप हमारे सामाने आते हैं –

1.3.1 उपरि–राज्य स्तरीय प्रादेशिकवाद

यह वह स्थिति है जिसमे कई राज्य एक साथ मिले हुए दिखाई देते हैं और इस प्रकार यह प्रादेशिकवाद एक राज्य की सीमा से परे कई राज्यो की सीमा को छूता है इसीलिए इसे उपरि–राज्य स्तरीय प्रादेशिकवाद कहते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण उत्तर व दक्षिण भारत के बीच जो भाषाई तनाव होता है, उसमे देखने को मिलता है। इसे दक्षिण भारत के राज्य जो अग्रेजी भाषा चाहते हैं, एक श्रेणी मे तथा उत्तरी भारत के राज्य जो हिन्दी भाषा–भाषी हैं, दूसरी श्रेणी मे वर्गीकृत हो जाते हैं। कई गैर-हिन्दी भाषी दक्षिण वाले राज्यो ने तो इसे 'भाषायी साम्राज्यवाद' तक की सज्ञा दे डाली है। इससे उत्तरी एव दक्षिणी भारत के राज्यो के बीच दूरियॉ बढ़ी हैं।

1.3.2 अन्तर्राज्यीय प्रादेशिकवाद

इस प्रकार के प्रादेशिकवाद की इकाई राज्य होती है। इसमे एक राज्य दूसरे राज्य से प्रतिस्पर्द्धा करता हुआ तनाव एव वैमनस्य की स्थिति मे दिखायी देता है चाहे यह तनाव सीमा के प्रश्न पर हो अथवा जल के बॅटवारे के बारे मे महाराष्ट्र-कर्नाटक सीमा के बीच विवाद अथवा कावेरी नदी के जल के बटवारे को लेकर कर्नाटक एव तमिलनाडु के बीच विवाद। यह विवाद इसी प्रकार स्टील प्लाण्ट या उद्योगों की स्थापना एव यह आर्थिक सुविधाओं के लिए भी हो सकता है। जो उत्पाद किसी राज्य मे अधिक हैं और आसानी से दूसरे राज्यो को बॉटना चाहते हैं। जैसे उत्तर प्रदेश मे गेहूँ व पश्चिम बगाल मे चावल एव जूट का आधिक्य है। परन्तु इनको अभावग्रस्त एव कम उत्पादन वाले राज्यो/क्षेत्रो को भेजने मे काफी कठिनाई का सामना करना पडता है।

1.3.3 अन्तरा–राज्यीय प्रादेशिकवाद

अधिकाश राज्य भारत मे काफी बडे हैं और उनका गठन या तो सन् 1948 ई० व सन् 1950 ई० के बीच हुआ या वे सन् 1956 ई० मे पुनर्गठित हुए। इस प्रकार इनका निर्माण कई राज्यो एव देशी रियासतों को मिलाकर किया गया है। इन नये राज्यो का अभी तक एक सगठित व्यक्तित्व उभर नहीं पाया है। यही कारण है कि राजनीतिक एकीकरण एव भाषा के आधार पर एकीकरण के बावजूद इनका सगठित स्वरूप विकसित नहीं हो पाया है। परिणामस्वरूप विभिन्न स्थानीय इकाइयो का अस्तित्व यथावत विद्यमान है। जैसे तेलगाना का आन्ध्र मे, विदर्भ का महाराष्ट्र मे, छत्तीसगढ, मालवा, बघेलखड एव बुन्देलखड का मध्यप्रदेश मे, उत्तराचल, बुन्देलखड, पश्चिमी उत्तर प्रदेश एव पूर्वी उत्तर प्रदेश का उत्तर प्रदेश मे तथा सौराष्ट्र का गुजरात मे अपनी विशिष्ट पहचान है। स्थानीय समस्याओ एव सवेदनाओ की अनदेखी करने पर कभी-कभी इन क्षेत्र विशेष के निवासियो द्वारा क्षोभ एव आक्रोश व्यक्त किया जाता है। यह प्रवृत्ति इसलिए भी बढती है क्योकि एक राज्य के सम्पूर्ण भागो का सन्तुलित विकास नही हो पाता है। जिस भाग मे मुख्यमन्त्री या अन्य प्रभावशाली मन्त्री होते हैं, उनके आर्थिक विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है। कभी–कभी राजनीतिक गुटबन्दी के कारण विकास मे पक्षपात भी किया जाता है। अत एक भाग की अपेक्षा अधिक श्रद्धा

रखते हैं। इस प्रकार क्षेत्रीय आधार पर आन्दोलनो का मार्ग प्रशस्त होता है। जैसे शिवसेना द्वारा "महाराष्ट्र महाराष्ट्रियो के लिए" तथा लक्षित सेना द्वारा "आसाम आसामियो के लिए" बोडोलैण्ड, बरकलैण्ड, कोडगू एव पश्चिमी उत्तर प्रदेश (हरित प्रदेश) आदि के क्षेत्रीय आन्दोलन इसी श्रेणी मे आते हैं। इसके पीछे भी अधिक राजनीतिक शक्ति की आकाक्षा तथा अधिक आर्थिक विकास की भावना पायी जाती है।

1.4 प्रादेशिकवाद के तत्व

प्रादेशिकवाद के उभरने मे सहायक तत्वो को कई भागो मे बाटा जा सकता है—

1.4.1 भू – सांस्कृतिक

देश के राज्यो की राजनीति मे प्रादेशिकवाद की अभिव्यक्ति एव इसे बल प्रदान करने मे इस तत्व की प्रमुख भूमिका रही है—

1.4.1.1 भौगोलिक सीमायें

जब हम भारत मे प्रादेशिकवाद की भौगोलिक आधार पर बात करते हैं तो हमारे समक्ष भौगोलिक सीमाओ के तीन रूप आते हैं (जैन, 1997, पृ० 280–81) –

1 4 1 1 1 प्राचीन भौगोलिक सीमाये

यद्यपि देश मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राज्यो का राजनीतिक एकीकरण हुआ है तथा भाषा के आधार पर इनका पुनर्गठन कर बडे–बडे राज्य बनाये गये हैं फिर भी अतीत की भौगोलिक सीमाये हमारे स्मृति पटल पर अभी भी अकित हैं। उदाहरणार्थ, आज भी राजस्थान के नागरिक अपने मानस मे पुराने उदयपुर, जोधपुर, जयपुर आदि राज्यो की सीमाएँ या महाराष्ट्र मे विदर्भ, आन्ध्र मे तेलगाना, कर्नाटक मे मैसूर तथा गुजरात मे सौराष्ट्र की भौगोलिक सीमाये बसाये हुए हैं। आज भी पुराने राज्यों एव रियासतो को अत्यधिक सम्मान एव आदर की दृष्टि से देखा जाता है। यह हमारी बॅटी हुई निष्ठा के केन्द्रो के फलस्वरूप उत्पन्न भावना की प्रतीक है। यदि प्रशासन एव सरकार मे एक क्षेत्र के ज्यादा लोग हैं तो दूसरे लोग नाराज हो जाते हैं क्योकि उनका प्रतिनिधित्व कम है। अधिक विकास के प्रस्तावो में भी इस प्रकार की शिकायते अक्सर देखने को मिलती हैं जो कभी–कभी उग्र

रूप धारण कर लेती हैं। इसी जनभावना के तहत ही बहुत से पुराने रजवाडे अपनी पुरानी रियासतो के निर्वाचन क्षेत्र पर अपना वर्चस्व बनाये हुए हैं।

1 4 1 1 2 नयीं सीमाये

नयी सीमाये भी प्रादेशिकवाद मे प्रधान भूमिका अदा करती हैं। नयी सीमाओ से निर्मित स्थानिक इकाइयो पर हम गर्व करने लगते हैं, तो यह सकारात्मक रूप है। किन्तु यही जब दो राज्यो के बीच विवाद का विषय हो जाता है तो यह नकारात्मक रूप ले लेता है। फिर चाहे यह ससाधनो के बॅटवारे को लेकर महाराष्ट्र-मैसूर के बीच विवाद हो या केरल-तमिलनाडु के बीच विवाद।

1 4 1 1.3 भावीं सीमायें

भावी भौगोलिक सीमा की कल्पना भी प्रादेशिकवाद की भावना से उत्प्रेरित है। विशाल हरियाणा, विशाल पजाब या वृहत नागालैण्ड की कल्पनाये प्रादेशिकवाद की ऐसी ही भावना को व्यक्त करती है। हाल मे गठित उत्तराचल, झारखड एव छत्तीसगढ ऐसे राज्यो के निर्माण मे ऐसी भावना का योगदान रहा है। गोरखालैण्ड, बोडोलैण्ड, तेलगाना, विदर्भ, बुन्देलखड, पूर्वांचल, हरित प्रदेश ऐसे नये राज्यो के गठन हेतु आन्दोलन मे ऐसी ही क्षेत्रीय भावनाओ एव राजनीतिक स्वार्थों की भूमिका रही है (चित्र 1 1)। इन आन्दोलनो को सचालित करने वाले शीर्ष नेताओ के मस्तिष्क मे भावी राज्य की सीमा विस्तार एव क्षेत्र विस्तार का एक खाका होता है जिसके आधार पर ही वे अपनी रणनीति निर्धारित करते हैं।

1.4.1.2 जाति

जाति को दो भागो मे बॉटकर प्रादेशिकवाद को बढाने मे इसकी भूमिका को देखा जा सकता है। प्रथम, अति प्रभावशाली जातीय प्रदेशो मे जाति और प्रदेश की सीमाये एक दूसरे मे समाहित हो जाती हैं। इसके विपरीत बहु जातीय प्रदेशो मे परिस्थितियॉ अलग होती हैं जहॉ समाज काफी विभाजित होता है। सौभाग्य से प्रादेशिकवाद को बढाने मे जातीय समीकरणो की प्रमुख भूमिका नहीं रही है (जैन, 1997, पृ० 281)। जहॉ यह आर्थिक हितो,

N
भारत
संभावित राजनीतिक
प्रारूप
चीन
पाकिस्तान
कश्मीर
लद्दाख
जम्मू
हिमाचल
पंजाब प्रदेश
चण्डीगढ़
हरियाणा
उत्तराचल
दिल्ली
हरितप्रदेश
मारवाड़
राजस्थान
अवध
नेपाल
सिक्किम
गोरखालैण्ड
बोडोलैण्ड
भूटान
अरुणाचल
असम
नागालैण्ड
मेघालय
मणिपुर
म्यांमार
सीमाचल
पूर्वांचल
बिहार
गुजरात
बुन्देलखण्ड
झारखण्ड
महाकोशल
पश्चिम बंगाल
त्रिपुरा
मिजोरम
मालवाचल
छत्तीसगढ़
दीव
दमन
दादर और नगर हवेली
उड़ीसा
बरकलैण्ड
महाराष्ट्र
विदर्भ
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
आन्ध्र प्रदेश
यनम (पाण्डिचेरी)
गोवा
कर्नाटक
तेलगाना
अंडमान और निकोबार
लक्षद्वीप
माहे (पाण्डिचेरी)
तमिलनाडु
पाण्डिचेरी
करैकाल (पाण्डिचेरी)
केरल
हिन्द महासागर
द्वीप समूह
100 0 100 200 300
किलोमीटर
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
प्रान्तीय सीमा
सम्भावित अन्तर्राज्यीय सीमा
राजधानी
प्रान्तीय मुख्यालय

चित्र 1.1

भाषायी समुदायो और धर्म के साथ जुडे हैं वहॉ यह प्रादेशिकवाद को प्रबल बनाने मे सहायक सिद्ध होते हैं। जनजातीय क्षेत्रो मे ये अधिक प्रभाशाली रहे हैं।

1.4.1.3 धर्म

धर्म बहुधा प्रादेशिकवाद को इतना बल नही देता जितना कि यह विभिन्न क्षेत्रो मे एक-दूसरे को मिलाने मे सहायक होता है। विभिन्न क्षेत्रो मे रहने वाले मतावलम्बी एक दूसरे से निकटता एव एकजुटता का अनुभव करते हैं। वे स्वधर्म की रक्षा हेतु बडे से बडा बलिदान करने हेतु उद्यत हो जाते हैं। धर्म का उग्र एव नकारात्मक रूप तब देखने को मिलता है जब दो धर्मों के मतावलम्बियो मे प्रतिद्वन्दिता देखने को मिलती है अथवा एक धर्म को दूसरे से अस्तित्व का खतरा होता है। अल्पसख्यक धार्मिक समुदाय सदैव भयाक्रान्त एव असुरक्षित महसूस करता है। विघटनकारी शक्तियो के बहकावे मे आकर यह प्रादेशिकवाद मे उत्प्रेरक हो सकता है। कश्मीर एव पजाब के हिसक एव पृथकतावादी आन्दोलन मे धर्म द्वारा प्रेरित उग्रवाद एव प्रादेशिकवाद का योगदान रहा है (जैन, 1997, पृ० 281)।

1.4.1.4 भाषा

भाषा प्रादेशिकवाद का एक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। यहॉ तक कि प्रादेशिकवाद के विवेचन मे "भाषायी प्रादेशिकवाद" का अलग से अस्तित्व है। असम एव बगाल के बीच भाषायी दगे तथा तमिलनाडु मे हुए भाषायी आन्दोलन इसके उदाहरण हैं। भाषा के माध्यम से लोगो को एकत्रित करने मे मदद मिलती है। लोग अपने भाषा के प्रति अत्यधिक सवेदनशील होते है। दो भाषायी समूहो मे प्रतिद्वन्दिता देखी जाती है। आर्थिक पिछडेपन के सहयोग से यह प्रादेशिकवाद के विकास मे सहायक होता है। भाषा से प्रादेशिकवाद को बल अवश्य मिलता है परन्तु यह एकान्तिक कारक नही है। एक भाषा के अन्दर भी प्रादेशिकवाद पनप सकता है जैसे, आन्ध्र प्रदेश मे तेलगाना आन्दोलन। तेलगानावासियो का कहना है कि उनका अत्यधिक शोषण किया जा रहा है जिसके कारण उनके क्षेत्र का समुचित विकास नही हो पा रहा है (जैन, 1997, पृ० 281)।

1.4.1.5 इतिहास

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी प्रादेशिकवाद के विकास मे परोक्ष रूप से सहायक होती है। इस पृष्ठभूमि से कभी-कभी किसी क्षेत्र को विशिष्ट स्थान प्राप्त हो जाता है। कालक्रम के दौरान यदि इस विशिष्टता मे कभी कोई कमी हो जाती है तो जन–भावना आहत होती है। महाभारत काल से ही कुछेक अन्तरालो को छोडकर दिल्ली देश की राजधानी रही है यदि आज इसे भारत सरकार अन्यत्र स्थानान्तरित करने लगे तो लोगो के उग्र विरोध का सामना करना पडेगा। गाधी, नेहरू, सुभाष, टैगोर, महाराणा प्रताप एव शिवाजी इतिहास पुरुष एव समूचे देश की धरोहर हैं। इन्हे किसी क्षेत्र और वर्ग से सबद्ध करना सकीर्णता एव प्रादेशिकवाद का द्योतक है। दक्षिणी भारत मे रावण पूजा एव राम की प्रतिमा का निरादर ऐसी ही कुत्सित भावनाओ का प्रतीक है जो इतिहास एव चिरस्थायी सास्कृतिक परम्पराओ को तोड-मरोड कर प्रस्तुत कर राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुचाना चाहते हैं।

1.4.1.6 प्रवासी बनाम भूमिपुत्र

भारत मे इकहरी नागरिकता की प्रणाली है। भारत की नागरिकता के साथ व्यक्ति को प्रान्तो की नागरिकता स्वत प्राप्त हो जाती है। प्रत्येक भारतीय नागरिक को देश के किसी भी प्रान्त मे जाने एव निवास की सुविधा प्राप्त है। परन्तु कई क्षेत्रो मे अप्रवासियो एव मूल निवासियो के बीच मे विभेद किया जाता है। जनजातीय बहुल क्षेत्रो मे ऐसा उनकी सास्कृतिक विशेषताओ को सरक्षित रखने हेतु अथवा विकसित अप्रवासियो द्वारा मूल निवासियो की सम्पत्ति के हरण को रोकने के लिए किया जाता है। जम्मू-कश्मीर राज्य मे किसी भी अप्रवासी को स्थायी सम्पत्ति निर्मित करने का अधिकार नही है। झारखण्ड मे नौकरियो मे भर्ती हेतु आदिवासियो को प्राथमिकता का प्रावधान है। कई प्रान्तो मे विधिक प्रावधान न होने पर भी इस तरह के भेदभाव किये जाते हैं। शिवसेना द्वारा मुम्बई से गैर-महाराष्ट्रवासियो को निष्कासित करने की मॉग इसी प्रकार की उग्र प्रादेशिकतावाद का द्योतक है। पश्चिम बगाल मे गैर-बगालियो एव तमिलनाडु मे गैर-तमिलो के साथ भेदभाव की खबरे आती रहती हैं।

1.4.2 राजनीतिक कारक

राजनीति प्रादेशिकवाद को पैदा नही करती अपितु इसे बढावा देती है। प्रादेशिक एव क्षेत्रीय जन भावनाओ का राजनीतिक लाभ लेने के लिए देश मे क्षेत्रीय स्तर पर अनेक राजनीतिक दलो का विकास हुआ है जैसे तेलगाना प्रजा समिति, असम मे असम गण परिषद्, आन्ध्र प्रदेश मे तेलगुदेशम, तमिलनाडु मे डी० एम० के० तथा ए० डी० एम० के०, पजाब मे अकाली दल तथा महाराष्ट्र मे विदर्भ परिषद ऐसे अनेक राज्य स्तरीय एव क्षेत्रीय दल है जिनमे से कुछ ने जन भावनाओ का दोहन करते हुए राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर रखी है। ऐसे दलो द्वारा सदैव प्रादेशिक हितो को प्राथमिकता दी जाती है एव राष्ट्रीय हितो की अनदेखी की जाती है। अपने अस्तित्व को बनाये रखने हेतु ये दल क्षेत्रीय मुद्दो को बढावा देते रहते हैं।

1.4.3 आर्थिक व तकनीकी कारक

आर्थिक व तकनीकी कारक प्रादेशिकवाद की प्रवृत्ति को बढाने मे बहुत महत्वपूर्ण तत्व है। चूँकि हमारे देश मे ससाधन सीमित हैं अत लोगो का ध्यान इस बात की ओर सदा लगा रहता है कि ससाधनो का समान एव न्यायसगत बॅटवारा हो रहा है या नही? भौगोलिक एव सास्कृतिक विविधताओ के कारण देश के सभी क्षेत्रो का एक समान विकास सभव नही है। कुछ क्षेत्र वाले यह आसानी से मान लेते हैं कि उनका राजनीतिक कारणो से शोषण हो रहा है एव उनके क्षेत्र को विकास का समुचित लाभ नही दिया जा रहा है। इससे आम जनता मे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आक्रोश एव विद्रोह की भावना जनित होती है जिसे राजनीतिक एव निहित स्वार्थी तत्व भडका कर अपना हित साधन करने लगते हैं। इसकी परिणति अलग राज्य अथवा स्वतत्र देश की मॉग के रूप मे होती है। दूसरी ओर तकनीकी विकास प्रादेशिकवाद की भावना को शिथिल करता है। जैसे राजस्थान नहर व भाखरा बॉध पजाब और राजस्थान को एक-दूसरे के नजदीक लाने मे सहायक हुए हैं। इन केन्द्रो मे विभिन्न क्षेत्रो के व्यक्ति एक साथ रहते हैं जिससे राष्ट्रीय एकता बढती है। अत वैज्ञानिक और तकनीकी विकास प्रादेशिकवाद को बढावा न देकर उसे सन्तुलित दिशा की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं (जैन, 1997, पृ० 282)।

1.4.4 मनोवैज्ञानिक कारक

मनोवैज्ञानिक कारक का स्वय का पृथक अस्तित्व नही है। परन्तु प्रादेशिकवाद जैसे–जैसे मजबूत होता है, उसमे मनोवैज्ञानिक तत्व की भूमिका बढती जाती है एव कालान्तर मे वह स्वय मे मौलिक स्वतन्त्र पृथक अस्तित्व प्राप्त कर लेता है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि अन्य तत्वो पर विजय प्राप्त कर लेने पर भी इस तत्व को निष्क्रिय करना मुश्किल हो जाता है (जैन, 1997, पृ० 282)। नागाओ का पृथकतावादी आन्दोलन नागाओ की इस मनोवैज्ञानिक विचारधारा से जुडा है कि उनका पृथक सास्कृतिक अस्तित्व है एव वे कभी भी दिल्ली के शासन के अधीन नही रहे हैं।

1.5 प्रादेशिकवाद का राजनीतिक स्वरूप

इसे निम्न बिन्दुओ के आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है –

(क) प्रादेशिकवाद एव राजनीति के बीच गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। वास्तव मे राजनीतिक एकीकरण से राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है, इससे समापन नही होता है।. राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिये आर्थिक, सामाजिक एव सास्कृतिक समन्वयन आवश्यक है। हमने राजनीतिक एकीकरण प्राप्त कर लिया है परन्तु आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक समन्वयन के प्रति हमारे प्रयास अभी तक अधूरे हैं। यह सक्रमण कालीन स्थिति समूचे राष्ट्रीय समाज को आन्दोलित कर रही है।

(ख) भाषा के आधार पर यदि राज्यो का निर्माण नही होता तो यह सम्भव था कि प्रादेशिकवाद इतना उग्र रूप धारण नही करता तथा उसकी राजनीति इतनी जटिल नही हो पाती। मौरिस जौन्स का कहना है कि प्रादेशिकवाद का आधार भाषा नही अपितु आर्थिक विकास मे असन्तुलन है तथा भाषायी पुनर्गठन से राज्य का व्यक्तित्व एकता के सूत्र मे बॅध पाया है तथा भारत विभिन्नता मे एकता स्थापित कर पाया है। परन्तु कुछ अन्य विचारको के अनुसार भाषा से प्रादेशिकवाद की तीव्रता बढी है। यह कहा जा सकता है कि प्रादेशिकवाद की राजनीतिक शक्ति, व्यक्तिगत स्वार्थ तथा आर्थिक विकास की राजनीति है, इसमे भाषा की भूमिका बहुत सीमित है।

(ग) राजनीति प्रादेशिकवाद को जन्म नही देती अपितु उसको बल प्रदान करती है, उसे जटिल बना देती है। राजनीतिक स्वार्थ व्यक्तिगत एव दलगत हितो से जुडे होते है जिनकी पूर्ति हेतु प्रादेशिकवाद आदि का आश्रय लिया जाता है।

1.6 राजनीति में प्रादेशिकवाद का प्रयोग

राजनीति मे प्रादेशिकवाद के प्रयोग के अनेक पक्ष सामने आते हैं, जैसे–

(क) प्रादेशिकवाद के आधार पर केन्द्रीय सरकार पर दबाव डाला जाता है तथा उससे अतिरिक्त लाभ व सुविधाये प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। चण्डीगढ के लिए पजाब ने केन्द्र सरकार पर लगातार दबाव बना रखा है। इसी प्रकार तमिलनाडु ने श्रीमती इन्दिरा गाधी के अल्पमत सरकार के समय अधिक अनुदान प्राप्ति हेतु केन्द्र पर दबाव डाला था। इसी प्रकार महाराष्ट्र-कर्नाटक सीमा विवाद मे दोनो ही राज्यो ने केन्द्र पर दबाव बना रखा है। मिली-जुली सरकार होने पर सहयोगी दल दबाव की राजनीति से अपने उद्देश्यो की पूर्ति करते रहते हैं।

(ख) प्रादेशिकवाद का सहारा लेकर राजनीतिक दल और क्षेत्रीय गुट राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति का प्रयास करते है। वे अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए प्रादेशिकवाद का सहारा लेने मे भी नही चूकते हैं। शिव सेना, तेलगाना प्रजासमिति, तेलगुदेशम्, अकाली दल आदि राजनीतिक दलों का विकास क्षेत्रीय आधार पर हुआ है। उम्मीदवारो का चुनाव क्षेत्रीय आधार पर किया जाता है। जनता से प्रादेशिक मुद्दो के आधार पर वोट मॉगे जाते हैं। जब तक क्षेत्रीय मॉगे पूरी नही होती तब तक यह प्रयोग सफल होता रहता है। डी० एम० के०, तेलगुदेशम, अकाली दल आदि की प्रान्तीय सरकारो ने केन्द्र सरकार पर कई बार ऐसे दबाव बनाये है। केन्द्र मे किसी भी राष्ट्रीय दल के साथ स्पष्ट बहुमत मे न होने पर मिली जुली सरकार की स्थिति मे क्षेत्रीय दलो को अपनी माँगों को मनवाने का काम और भी आसान हो जाता है।

(ग) वितरणात्मक न्याय को भी क्षेत्रीय आधार पर मॉगा जाता है। जब एक राज्य मे कुछ क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हैं तथा कुछ पिछडे तो पिछडे हुए क्षेत्र न्याय की

मॉग करते है जैसे तेलगाना, पूर्वी राजस्थान, पूर्वी उत्तर प्रदेश, विदर्भ, बुन्देलखड आदि। राजनीतिज्ञ— सामाजिक न्याय की मॉग को बहुधा अपने या गुट के नेतृत्व को प्रभावशाली बनाने की आकाक्षा से जोड देते हैं। ऐसी स्थिति मे ये न केवल सामाजिक न्याय की मॉग करते हैं अपितु अपने व अपने गुट के प्रभाव को उभारने के लिए भी प्रयत्नशील रहते हैं। आन्ध्र प्रदेश मे ब्रह्मानन्द रेड्डी बनाम चेन्ना रेड्डी के आपसी व्यक्तित्व—सघर्ष को आन्ध्र—तेलगाना विवाद से जोडा जा सकता है।

(घ) राजनीति मे प्रादेशिकवाद का प्रयोग उसकी शैली पर निर्भर करता है। जब नकारात्मक प्रादेशिकवाद का पुट राजनीति को मिल जाता है तो राजनीति की शैली सवैधानिक न रहकर आन्दोलनात्मक एव हिसात्मक बन जाती है। शिव सेना का जो उग्र रूप मुम्बई मे रहा है वह इसका उदाहरण है। इसी प्रकार तमिलनाडु मे भाषाई दगे, तेलगाना के लिए आन्ध्र-प्रदेश मे आन्दोलन व असम एव पश्चिम बगाल के बीच भाषायी दगे आदि ऐसे ही उदाहरण हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि राजनीति की प्रादेशिकता को प्रभावित करने मे प्रमुख भूमिका रही है। परन्तु प्रादेशिकवाद केवल राजनीति का ही उपज नही है। इसका कारण मुख्यत आर्थिक है जिसमे राजनीति उत्प्रेरक का कार्य करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

जैन, एस० एन०, 1997 **भारतीय सविधान, शासन और राजनीति,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

श्रीवास्तव, ओम प्रिया, 1996 **भारतीय सविधान, शासन और राजनीति,** सेन्ट्रल पब्लिशिग हाउस, वाराणसी।

अध्याय – 2

प्रादेशिकवाद के उत्पत्ति के कारक

भारत भौतिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एव विविधताओ का समष्टि है। ये विविधताये उसके विशाल आकार एव भौगोलिक गुणो से सम्बद्ध है। तीन तरफ से समुद्रो से आवृत एव उत्तर मे पर्वतीय बाधा से अलग–थलग किये जाने के कारण जहॉ एक तरफ इसे पूर्ण भौगोलिक इकाई का स्वरूप प्रदान किया है वही आन्तरिक विषमताओ ने विविधताओ के उद्भव मे कम योगदान नही किया है। अतीत मे यहॉ कई मानव समाजो के आपस मे मिलने का अवसर मिला है जिससे सामाजिक-सास्कृतिक विविधता मे और भी वृद्धि हुई है। यद्यपि भारतीय सस्कृति का प्रभाव समूचे देश पर व्याप्त है परन्तु माध्यमिक एव सूक्ष्मस्तर पर यह अनेको विविधताओ को समेटे हुए है। यही विविधता उत्प्रेरित होकर कभी–कभी प्रादेशिकता एव प्रादेशिकवाद मे परिणत हो जाती है जो राष्ट्रीयता एव राष्ट्रीय एकता को कमजोर करते हैं। प्रस्तुत अध्याय मे प्रादेशिकवाद के उत्पत्ति मे सहायक कारको के विवेचन का प्रयास किया गया है।

भारत के इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है अधिकाश काल तक यह छोट–छोटे राज्यो/रियासतो मे ही बॅटा रहा है। बीच–बीच मे ही कतिपय राजाओ एव राजवशो द्वारा इन्हे एक राजनीतिक छत्र के नीचे लाने के प्रयास किये जाते रहे हैं। केन्द्रीय प्रशासन के कमजोर होने पर विलगाववादी शक्तियो ने अपने प्रभाव को पुर्नस्थापित करने मे विलम्ब नही किया है। ऐसे ही समय में विदेशी आक्रमण हुए हैं एव देश को अपमानजनक स्थिति के मध्य से गुजरना पडा है।

मौर्यों से लेकर मुगलो तक विभिन्न प्रशासनिक इकाइयो एव स्थानीय निकायो को प्रशासन में काफी स्वायत्तता प्राप्त थी प्राचीन काल मे प्रत्येक प्रान्त का अपना पृथक अस्तित्व था। ये सभी इकाइयॉ स्थानीय प्रशासको एव एजेन्टो द्वारा केन्द्रीय शासन से भली–भांति सम्बद्ध थी। इनमे अपनी स्थानीय भाषा का प्रयोग किया जाता था। जब कभी भी किसी महत्वाकांक्षी सम्राट ने स्थानीय स्वायत्तता का दमन कर केन्द्रीयकरण का प्रयास किया, लोगो

ने उसका कडा विरोध किया। इस कारण सम्पूर्ण केन्द्रीयकरण न केवल अनुशासनिक दक्षता के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ अपितु इसका एक प्रतिकूल परिणाम यह भी हुआ कि उप–राष्ट्रीय शक्तियो पर दृढतापूर्वक और स्थायी आधार पर नियन्त्रण बनाये रखने की केन्द्र की क्षमता भी कम हो गई। अन्तिम मुगल सम्राट ने सत्ता के केन्द्रीयकरण की भरपूर कोशिश की और क्षेत्रो की परम्परागत विविधताओ और उनकी स्वायत्तता को समाप्त करने का भी भरसक प्रयास किया। किन्तु उनकी मृत्यु के बाद ही क्षेत्रीय शक्तियो ने केन्द्रीय सत्ता को अमान्य घोषित कर दिया। प्रान्तो के गर्वनरो और स्थानीय सरदारो ने अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने पर जोर दिया और पूरा ढॉचा ही चरमरा गया।

ब्रिटिश सरकार ने भी अपने शासन के आरम्भ मे पूरी सत्ता का केन्द्रीयकरण करने का प्रयास किया लेकिन डलहौजी की 'हडपनीति' से उसे शीघ्र ही यह अहसास हो गया कि भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश पर सत्ता का विकेन्द्रीकरण किये बिना अथवा प्रान्तो और स्थानीय निकायो को सत्ता मे भागीदार बनाये बिना प्रशासन कायम रखना सम्भव नही। सन् 1857 ई० के प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम मे ब्रिटिश शासन ने इस तथ्य का पता कर लिया था कि ब्रिटिश शासन को बनाये रखने के लिये भारत मे देशी रजवाडे ही शक्ति के स्रोत हो सकते है। फलस्वरूप ब्रिटिश शासन ने अपनी 'प्रत्यक्ष शासन प्रणाली' का और अधिक विस्तार न करके उन राज्यो मे 'अप्रत्यक्ष शासन प्रणाली' को वरीयता दी। परन्तु 562 रजवाडो मे से अधिकाश कुछ ही सीमा तक स्वायत्त थे। सभी महत्वपूर्ण मामलो मे व्यवहारिक रूप से वे ब्रिटिश भारतीय प्रान्तो की तुलना मे ब्रिटिश शासन का आधिपत्य अधिक स्वीकार करते थे। सुदूर तथा दुर्गम क्षेत्रो मे मजबूत स्थानीय जनजातीय परम्परा और विश्वासो का समुचित आदर किया जाता था और इन क्षेत्रो ने लम्बे समय तक अपने–अपने क्षेत्रो मे विभिन्न सीमाओ तक अपनी स्वायत्तता को बनाये रखा।

देश के आकार और विविधता को देखते हुए बहुत अधिक केन्द्रीयकृत प्रशासन सर्वथा असगत होता है। इससे प्रशासनिक अक्षमता तथा स्थानीय असन्तोष जन्म लेता है। कुछ विकेन्द्रीकरण करना अनिवार्य होता है। किन्तु एक सीमा से अधिक विकेन्द्रीकरण करने से अनेक तरह की समस्याओ का जन्म होता है, उदाहरणार्थ वित्त व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण

राष्ट्रीय काग्रेस और बाद मे गठित अन्य राजनीतिक दलो के लम्बे सघर्ष के परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद का अभ्युदय हुआ।

ब्रिटिश शासन ने राष्ट्रीय आन्दोलन की बढती हुई मॉगो और निरन्तर बढते हुए दबावो के परिणामस्वरूप अपनी नीति मे परिवर्तन करते हुए अधिक से अधिक शक्तियॉ प्रान्तो को हस्तान्तरित करना शुरू कर दिया और उन्होने एक ओर तो भारतीयो का अधिक से अधिक सहयोग लेना प्रारम्भ कर दिया और वही दूसरी ओर उन्होने विघटनकारी शक्तियो को बढावा देना प्रारम्भ कर दिया। लार्ड रिपन ने सन् 1882 ई० मे स्थानीय स्व–शासी सरकार की शुरूआत भारतीयो के सहयोग से की। भारत सरकार अधिनियम 1919 (मान्टेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार) से द्वैध शासन यानि द्विस्तरीय राज्य व्यवस्था का शुभारम्भ हुआ। इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रान्तो मे छोटे पैमाने पर प्रतिनिधि सरकार की स्थापना को स्वीकार करते हुए प्रान्तीय सरकारो के लिए केन्द्र से भिन्न कार्य क्षेत्र निर्धारित किये गये। प्रान्तो मे न केवल प्रशासनिक क्षेत्र की बल्कि विधायी और वित्तीय क्षेत्रो की शक्तियाँ भी प्रत्यायोजित की गई।

भारत जैसे विशाल देश मे वही राजतन्त्र या शासन प्रणाली कायम रह सकती है जो देश की एकता और अखण्डता की रक्षा कर सकती हो, बाहरी आक्रमणो एव आन्तरिक उपद्रवो से देश की रक्षा कर इसकी सम्प्रभुता बनाये रख सकती हो, जिसमे एक सुदृढ शासन व्यवस्था हो, जिसके पास सर्वोच्च शक्तियाँ हो और जो देश की पारम्परिक विविधताओ को भी बनाये रखने मे समर्थ हो।

आधुनिक भारत मे प्रादेशिकवाद एक जटिल और कठिन समस्या बनता जा रहा है। यहॉ प्रादेशिकवाद की व्यापकता के भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक और मनोवैज्ञानिक आदि अनेक कारक हैं। जब हम स्वाधीनता सग्राम और विदेशी सत्ता के पराभाव के लिए उद्वेलित भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो हमे विदित होता है कि भारत मे राष्ट्रीय भावना का दृढीकरण प्रदेशीय जागरूकता के माध्यम और आधार द्वारा जुडा हुआ था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त प्रदेशीय जागरूकता का मूल लक्ष्य भारत की मूलधारा मे रहकर ही राजनीतिक और आर्थिक सत्ता मे भागीदार करना

था। देश की एकता और अखण्डता मे प्रादेशिकवाद ने निश्चय ही पूर्ण सहयोग दिया है किन्तु समय बीतने पर प्रादेशिकवाद ने अपना सिर उठाना आरम्भ कर दिया। इसमे अनेक कारको का योगदान देखा जा सकता है। इसमे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, भाषायी, धार्मिक, भौगोलिक तथा मनोवैज्ञानिक कारक अधिक प्रभावी रहे हैं।

2.1 राजनीतिक कारक

इसमे कोई सन्देह नही है कि राजनीतिक सत्ता प्राप्ति की ओर घोर उत्सुकता ने भारत मे प्रादेशिकवाद को अतिशय रूप मे प्रबल किया है। केवल स्थानीय राजनीतिक नेताओ ने ही नही, अपितु अखिल भारतीय स्तर के राजनीतिक नेताओ और दलो ने भी प्रादेशिकवाद को बढावा दिया है। राजनीतिक महत्वाकाक्षी नेताओ ने जाति, धर्म तथा क्षेत्रीय समुदाय को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उनकी क्षेत्रीय समस्याओ को विकट बताते हुए स्वय उनको भडकाया कि राष्ट्रीय जीवन मे अमुक–अमुक क्षेत्र पिछड रहे हैं और वे उनके हिमायती हैं। इस प्रकार के प्रचार ने क्षेत्र विशेष के लोगो के मन मे यह विश्वास जगाया कि वे राजनीतिक दृष्टि से उपेक्षित हैं। भारत जैसे देश मे जहॉ आधुनिकीकरण और पाश्चात् विचारधारओ के सन्दर्भ मे आर्थिक उद्देश्य तो असीमित हो, परन्तु विकास की प्रक्रिया धीमी हो, वहॉ राजनीति का महत्व बढने लगा। सन् 1947 ई० मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त राजनीति के इस महत्व को सभी समझने लगे और आकाक्षाओ मे वृद्धि हुई। किन्तु लोकतन्त्र मे राजनीतिक प्रक्रियाओ की गति कुछ ऐसी रही है कि सम्पूर्ण देश को एक समान स्तर पर राजनीतिक लाभ नही मिल सका है। ऐसा सम्भव भी नही है। क्षेत्र विशेष की अपनी सीमाए होती हैं, जिनके कारण राजनीतिक हित समान गति और रूप मे प्राप्त नही किये जा सकते किन्तु इस बात को समझने के स्थान पर असन्तुलन को मुद्दा बनाकर चुनाव मे मत मॉगने से, क्षेत्र विशेषो के असन्तोषो मे वृद्धि हुई। राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दलो के आन्तरिक मतभेद तथा आपसी प्रतिद्वन्दिता ने भी प्रादेशिकवाद को बढावा दिया है। भारत मे प्रादेशिकवाद की राजनीति अनेक जटिल कारको का सम्मिश्रण है। आन्ध्र प्रदेश मे तेलगुदेशम् पार्टी का उद्भव एक क्षेत्रीय राजनीतिक दल के रूप मे हुआ, परन्तु यथार्थ में यह राज्य के अभिजन वर्गों के मध्य प्रतिद्वन्दिता का परिणाम थी। आन्ध्र प्रदेश मे रेड्डी और काभा दो प्रमुख जातियॉ हैं। राजनीतिक क्षेत्र में इनकी प्रतिद्वन्दिता का प्रतिनिधित्व क्रमश काग्रेस और तेलगुदेशम् द्वारा

किया जाता है। तेलगुदेशम् के सस्थापक नेता एन०टी० रामाराव ने "तेलगु आत्म–सम्मान" के नाम पर लोगो को सगठित किया। इस प्रकार रामाराव ने प्रादेशिकवाद की राजनीति का प्रयोग काग्रेस का वर्चस्व तोडने के लिए किया और इसमे उन्हे काफी सीमा तक सफलता भी मिली। काग्रेस के आपसी मतभेदो ने तेलगाना आन्दोलन को बढावा दिया। इसी प्रकार महाराष्ट्र मे शिव सेना की सफलता तथा पजाब मे अकाली दल की सफलता प्रादेशिकवाद की राजनीति के परिणाम हैं। विरोधी दलो ने भी क्षेत्रीय दलो के समर्थन का सहारा लेते हुए प्रादेशिकवाद को उभाडा।

राजनीतिक पार्टियॉ कभी–कभी धार्मिक, जातीय और भाषा सम्बन्धी जामा पहने होती हैं जिससे कि लोगो की लोकप्रिय भावनाओ को उकसाना उनके लिए सरल हो जाए। धर्म और भाषा की आड लेकर ये दल एक क्षेत्र विशेष के लोगो को यह लालच दिखाते हैं कि उनके अपने प्रदेशो को शीघ्र ही एक स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त होने वाली है जिसके बाद वे अपने क्षेत्र के समस्त खोए हुए गौरव व परम्पराओ को पुनर्जीवित करने मे सफल हो सकेगे। इस प्रकार क्षेत्रीय दल क्षेत्रीयता के विकास के एक महत्वपूर्ण कारक बन जाते हैं। इतना ही नही, क्षेत्रीय नेताओ का भी इस दिशा मे पर्याप्त सहयोग रहता है। ये क्षेत्रीय नेता प्रतिभाशाली व्यक्ति होते हैं और केन्द्रीय सरकार पर न केवल अपना प्रभाव विस्तृत किये होते हैं अपितु अपने क्षेत्रीय स्वार्थों की सिद्धि के मामले मे केन्द्रीय सरकार की उपेक्षा करने मे भी नही हिचकते। ये नेता केवल अपने ही क्षेत्र के विषय मे सोचते हैं और अन्य क्षेत्रो के स्वार्थों को कुचल देने मे उन्हे सकोच नही होता है (मुकर्जी, 2001, पृ० 426)।

प्रादेशिकवाद की भावना के विकास से लाभकारी परिणाम भी मिल सकते हैं, परन्तु आज भारत मे प्रादेशिकवाद का जो स्वरूप उभरा है, वह हानिकारक है। 1980 के दशक के बाद से भारतीय राजनीति मे क्षेत्रीय शक्तियॉं प्रभावी भूमिका निभाने लगी है, जिससे राष्ट्रीय हित गौण होता जा रहा है। अब केन्द्रीय सत्ता मे क्षेत्रीय शक्तियो के दबाव मे ही कार्य-सचालन होता है, जिससे राष्ट्रीय स्तर की कई समस्याये पृष्ठभूमि मे चली जाती हैं और क्षेत्रीय समस्याये प्रमुखता प्राप्त कर लेती हैं। दक्षिण भारत मे बहुत पहले से ही क्षेत्रीय शक्तियाँ प्रभावी रही हैं, किन्तु अब उत्तर और पूर्वी भारत मे भी इनका वर्चस्व स्थापित हो गया है। आज जिस प्रकार राष्ट्रीय राजनीतिक दलो को प्रत्येक राज्य मे क्षेत्रीय दलों के साथ

गठबन्धन के लिए झुकना पड रहा है, वह इस स्थिति को स्पष्ट कर देता है। प्रादेशिकवाद के विकास के कारण केन्द्रीय राजनीति अस्थिर हो गई है और प्रत्येक क्षेत्रीय समूह द्वारा व्यक्तिगत हितो को प्रमुखता दिये जाने के कारण राष्ट्रीय हित की अनदेखी हो रही है। शिव सैनिको द्वारा जिस प्रकार 'महाराष्ट्र मराठियो के लिए' नारा बुलन्द किया गया और दूसरे राज्यो के लोगो को राज्य से निकालने की धमकी दी गई तथा असम गणपरिषद् द्वारा 'असम माता पहले, भारत माता बाद मे' का नारा बुलन्द किया गया। इसी प्रकार सन् 2002 ई० मे झारखण्ड सरकार की विवादास्पद 'डोमीसाइल नीति' जिसके तहत उन्ही लोगो को राज्य की सेवा मे स्थान दिया जायेगा, जिनके पूर्वजो ने सन् 1935 ई० से पूर्व राज्य मे जमीन खरीद ली हो। इससे तो यही स्पष्ट होता है कि आज राष्ट्रीय हित की खुलेआम अनदेखी की जा रही है।

2.2 आर्थिक कारक

यदि किसी राज्य विशेष का एक क्षेत्र पिछडा हुआ है एव अन्य क्षेत्रो का समुचित विकास हुआ है तो पिछडा हुआ क्षेत्र स्वय को उपेक्षित मानने लगता है और पृथक अस्तित्व की मॉग करने लगता है। उदाहरणार्थ, आन्ध्र प्रदेश मे तेलगाना आन्दोलन, महाराष्ट्र मे पूर्व काल मे शिव सेना द्वारा चलाया गया आन्दोलन, असम मे आल असम स्टूडेन्ट यूनियन (AASU) तथा आल असम गण सग्राम परिषद (AAGSP) द्वारा चलाये गये आन्दोलनो के पीछे यही मुख्य कारक हैं।

स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त भारत की आर्थिक दुर्दशा का कारण विदेशी शोषण और शासन बताते हुए, आर्थिक पुनर्निर्माण की बात कही गयी और अनेक वायदे किये गये। आश्वासन और सात्वना से अपेक्षाओ की आशा बढी, परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि अनेक आर्थिक उपलब्धियो के उपरान्त भी देश आर्थिक क्षेत्र मे अविकसित है। स्रोत कम और मॉगे अधिक होने से आर्थिक स्रोतो को प्राप्त करने और क्षेत्र विशेष की आर्थिक प्रगति पर विशेष ध्यान दिये जाने के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हुई। वर्तमान आर्थिक परिस्थितियो मे यह प्रतिस्पर्धा क्षेत्रो के आधार पर क्रियाशील है। हमारे देश मे पर्याप्त संसाधनो की उपलब्धता के बावजूद बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ, पश्चिम बगाल, असम, उडीसा और हिमाचल प्रदेश जैसे

राज्यो का आशा के अनुरूप आर्थिक विकास नही हो पाया है, जबकि अपेक्षाकृत कम ससाधनो की उपलब्धता के बावजूद गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, पजाब, हरियाणा आदि राज्यो का पर्याप्त आर्थिक विकास हुआ है। पिछडे राज्यो का मानना है कि ऐसा सरकार की दोषपूर्ण दोहरी नीतियो के कारण ही हुआ है, इसलिए ये राज्य विकसित राज्यो के साथ सामजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित नही कर पाये हैं। इस कारण इन राज्यो मे प्रादेशिकवाद की भावना का विकास हुआ। आर्थिक कारको का एक अन्य पहलू यह भी है कि भारत मे विकास के अन्तर्गत नई पूजीवादी व्यवस्था, समाजवादी व्यवस्था और पूजीवाद से पहले की अर्थव्यवस्था को मिश्रित किया गया है। इस मिश्रण मे अनेक विरोधाभास हैं जिन्होने प्रादेशिकवाद को बढावा दिया है। मॉग तथा उत्पादन मे अन्तर को दृष्टि मे रखते हुए, यह कहा जा सकता है कि इससे सभी क्षेत्रो मे स्पर्धा उत्पन्न होती है। एक ओर कुछ क्षेत्रो मे मध्य वर्ग वहॉ पर उपलब्ध स्रोतो का अपने अधिकाधिक विकास के लिए क्षेत्रीय स्वायत्तता की मॉग करता है (जैसे पजाब, हरियाणा आदि) तो दूसरी ओर अविकसित क्षेत्रो के लोग केन्द्र द्वारा उपेक्षा की भावना से ग्रस्त होकर क्षेत्रीय आधार पर सगठित होते हैं। आर्थिक कारको मे से एक अन्य कारक यह भी है कि सार्वजनिक क्षेत्रो मे उद्योग लगाने तथा आर्थिक प्रबन्ध करने सम्बन्धी नीतियो को अपने अनुकूल बनवाने के लिए विभिन्न क्षेत्र केन्द्र पर दबाव डालते हैं। सत्ताधारी दल पर अधिक प्रभाव रखने वाले दबाव समूह तथा राजनीतिक सौदेबाजी करने वाले समर्थ क्षेत्र इसमें सफल होते हैं। इससे अन्य क्षेत्रो मे उपेक्षित होने की भावना बढती है। सन् 1966 ई० मे केन्द्रीय सरकार द्वारा विशाखापट्टनम मे लोहे के बडे कारखाने नही लगाये जाने से आन्ध्र प्रदेश मे आन्दोलन होना इसका उदाहरण है। विकास की प्रक्रिया मे असमानता और असन्तुलन होना स्वाभाविक है। क्षेत्रो की स्थिति, कच्चे माल की उपलब्धता, श्रम और भौगोलिक परिस्थितियो से विभिन्न क्षेत्रो मे विकास की गति समान नही हो सकती है। फिर भी इससे असन्तुलन तो उत्पन्न होता है और प्रादेशिकवाद को बढावा मिलता है। आर्थिक असन्तुलन में रोजगार की समस्या की भी प्रमुख भूमिका है। यद्यपि शिक्षा का प्रसार सभी राज्यों मे हुआ है, अस्तु प्रतियोगिता के आधार पर सरकारी सेवाओ मे रोजगार दिये जाने की व्यवस्था ने केन्द्रीय सेवाओ मे पहले से ही विकसित राज्यो के प्रत्याशियो को अधिक सफलता के अवसर दिये हैं। पिछडे क्षेत्रों के शिक्षित बेरोजगार लोग अपने ही राज्य मे अन्य राज्यो के लोगों को उच्च सरकारी पदो पर कार्य करते देखकर कुठित एव उपेक्षित अनुभव

करते हैं। उत्तर–पूर्वी सीमा पर इस उपेक्षा का अधिक प्रभाव देखने को मिलता है। असम आन्दोलन मे यह एक प्रमुख मुद्दा रहा है। इन सभी तथा अन्य अनेक आर्थिक कारको से भारत मे प्रादेशिकवाद को बढावा मिला है।

किसी भी देश के सम्पूर्ण विकास के लिये समृद्ध वर्ग की समृद्धि के साथ–साथ जनता मे धन का उचित बॅटवारा होना आवश्यक है। देश की 30 प्रतिशत से अधिक जनसख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने हेतु विवश है। इसका प्रतिफल यह होता है कि लोग राजनीतिक दलो के प्रलोभन मे बडी सरलता से आ जाते हैं तथा ऐसे कार्यों मे सलग्न हो जाते हैं जिससे देश की एकता और अखण्डता खतरे मे पड जाती है। देश मे विद्रोही, नक्सलवादी, आतकवादी जैसी गतिविधियो के पीछे अन्य अनेक कारको मे आर्थिक कारक एक महत्वपूर्ण कारक है। पश्चिमी जगत के विकसित देशो मे इस प्रकार की गतिविधिया बहुत कम दिखायी देती हैं।

भारत के बहुत से प्रान्त, क्षेत्र या इलाके आर्थिक और औद्योगिक रूप से अन्य प्रान्त, क्षेत्र या इलाको की तुलना मे काफी पीछे हैं। आर्थिक असमानताये अधिक हैं। आर्थिक एकीकरण की समस्या के बहुत पहलू हैं, उदाहरण के लिए देश के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र भारी आर्थिक असन्तुलन वाले क्षेत्र हैं। पूर्वोत्तर भारत की जनता की असली पीडा यह है कि पिछले 55 वर्षों मे उनकी घोर उपेक्षा की गयी है। इन क्षेत्रो मे तेल तथा खनिज भारी मात्रा मे उपलब्ध है परन्तु इसके अनुपात में इन क्षेत्रो का समुचित आर्थिक विकास नही हुआ है। इस कारण से पूर्वोत्तर भारत मे अलगाववाद का जन्म हुआ। मिजोरम मे हिसक घटनाए हुईं। त्रिपुरा मे "जन मुक्ति सगठन सेना" ने स्वतन्त्र त्रिपुरा का नारा बुलन्द किया। नागालैण्ड मे विद्रोह का स्वर अब शान्त है, पर नागा जाति को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोडना जरूरी है (श्रीवास्तव, 1996, पृ० 330–331)।

आर्थिक विषमताओ के बढने से देश का समुचित विकास नही हो पाता है। देश के जिन भागो मे उद्योग और व्यापार की अधिक प्रगति हुई, वहॉ रोजगार के ज्यादा साधन उपलब्ध हैं। शेष स्थानों मे रहने वाले लोगो का जीवन ऊॅचा नही उठ पा रहा है जिससे आर्थिक विषमता बढती है और पृथकतावादी शक्तियो को बढावा मिलता है। आदिवासी और

पहाडी क्षेत्र आज भी अन्य प्रदेशो की अपेक्षा बहुत पिछडे हुए हैं। बिहार, मध्य प्रदेश और उडीसा के आदिवासी क्षेत्रो के लिए सन् 1971–72 ई० मे "आरम्भिक परियोजना" नामक एक विशेष कार्यक्रम शुरू किया गया, पर वास्तविकता यह है कि आदिवासी क्षेत्र आज भी शोषण और उपेक्षा के शिकार हैं। गुजरात, तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश के आदिवासी इलाको के लोग मध्ययुगीन आर्थिक शोषण की स्थिति मे रह रहे हैं। हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु के पहाडी क्षेत्रो मे किसानो के जीवन स्तर मे सुधार के कई "अग्रगामी परियोजनाये" शुरू की गई परन्तु आर्थिक कार्यक्रम की अभिपूर्ति मे सरकारी एजेसियो की शिथिलता को लेकर क्षोभ व्याप्त है (श्रीवास्तव, 1996, पृ० 330)।

एक सशक्त केन्द्र शक्तिशाली राज्यो की पूर्व कल्पना करता है। चूँकि भारत राज्यो का सघ है, इसलिए जब तक राज्य शक्तिशाली नही होगे तब तक सघ भी सशक्त नही हो सकता। भारत जैसे विशाल देश मे विविध कारक जैसे ऐतिहासिक, जनसाख्यिकीय, आर्थिक और सामाजिक–सास्कृतिक अपना–अपना प्रभाव डालते हैं। यहाँ ऐसे राज्य हैं जिनके पास विशाल तथा विविध खनिज ससाधन है लेकिन सामान्यत केन्द्रीय एजेसियाँ उनका लाभ उठाती हैं और राज्यो को केवल नाममात्र की रायल्टी ही मिलती है। इन राज्यो के पास जल जैसे नवीकरणीय ससाधनो का लाभ उठाने के साधन भी नही हैं। दूसरी ओर इनके मुकाबले मे अन्य प्रगतिशील राज्य भी हैं जिनके पास अपेक्षाकृत आधुनिक कृषि या औद्योगिक आधार हैं। पिछले कई वर्षों से राज्यो के बीच असमानता बढती जा रही है जिससे गरीब क्षेत्र और भी गरीब होते जा रहे हैं। इसलिये पिछडे राज्यो की माँग है कि केन्द्र को राष्ट्रीय महत्त्व के मामलो मे निर्णायक अधिकार प्राप्त हो और वहाँ की जनता की आवश्यकताओ तथा इच्छाओ के अनुरूप उन्हे आवश्यक धन राशि दी जाए और वे इस धन का प्रयोग जनता की अधिकाधिक भलाई के लिए करे (सरकारिया, 1987, पृ० 274)। प्रादेशिकवाद के समर्थको का तर्क है कि क्षेत्रीय असन्तुलन को केवल केन्द्रीय हस्तक्षेप के माध्यम से कम नही किया जा सकता। राज्य भी इस दिशा मे बेहतर प्रशासनिक कार्यविधियो, अधिक वित्तीय अनुशासन तथा ससाधनो का अनुकूल उपयोग करके प्रभावी योगदान दे सकते है। सम्पन्न राज्यो का मानना है कि केन्द्र से सापेक्षत अविकसित राज्यो को बडी मात्रा मे संसाधनो के अन्तरण से असमानता कम करने के उद्देश्य की पूर्ति नही होगी। सम्पन्न राज्यो के विनिधान मे कमी

करके निर्बल राज्यो को अधिक मात्रा मे विवेकाधीन अनुदान देने या अन्तरण करने के लिए केन्द्र के लिए अधिक ससाधन आरक्षित करने से केवल राष्ट्रीय आय मे महत्वपूर्ण एव पर्याप्त अशदान करने मे समर्थ सुविकसित आधारिक सरचनाओ वाले राज्यों की सवृद्धि अवमन्द हो जाएगी। असमानता मे कमी स्तर घटाकर नही की जानी चाहिए। निर्बल राज्यो को सहायता देने का उद्देश्य तुलनात्मक दृष्टि से विकसित राज्यो को विधिसम्मत द्रव्य प्रवाह मे कमी किये बिना जिससे उनकी सवृद्धि पर भी रोक लग जाएगी। निर्बल राज्यो को ससाधनो का बेहतर समुपयोजन इष्टतम उपयोग करके प्राप्त करना है। राष्ट्रीय हित का आशय केवल निर्बल राज्यो को सहायता देना नही है। केन्द्र को निर्बल राज्यो के विकास के लिए केन्द्र के पास उपलब्ध निधियो का उपयोग करने के लिए अधिक विवेकाधिकार नहीं होना चाहिए (सरकारिया, 1987, पृ० 298)।

ससाधनो का पर्याप्त अन्तरण न होने और राज्यो मे ससाधनो का न्यायसगत वितरण न होने के कारण राज्य अपने–अपने इलाको मे क्षेत्रीय असन्तुलन कम करने मे असमर्थ रहे हैं और राज्यो मे परस्पर असमानताए भी बढ गई हैं। केन्द्र द्वारा विवेकाधीन अन्तरणो के बावजूद, पिछड़े हुए राज्य सापेक्ष रूप से उन्नति नही कर रहे हैं। यही कारण है कि सम्पन्न तथा निर्धन दोनो प्रकार के राज्यो का मानना है कि केवल सुदृढ केन्द्र ही क्षेत्रीय असन्तुलन को कम नही कर सकता।

2.3 सामाजिक कारक

भारतीय सामाजिक व्यवस्था की विविधताए प्रादेशिकवाद के विकास मे सहायक सिद्ध हुई हैं। सामाजिक विविधताओ पर आधारित वर्ग, आर्थिक हितो तथा उद्देश्यो के आधार पर परस्पर विरोधी सगठनो का रूप धारण करते हैं। इनके अर्न्तविरोध अन्य कारको के साथ मिलकर प्रादेशिकवाद के लिए आवश्यक सगठन और सघर्ष नीति की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। भारत की विभिन्न जातियो, धर्मों और भाषायी समुदायो के अलावा एक बडा वर्ग आदिवासियो का है। ये छ करोड से भी अधिक हैं। इनका बडा वर्ग परम्परागत भारतीय धर्मों की परिधि के बाहर है। ये समाज की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था मे अपने को अलग–थलग अनुभव करते हैं। इनको भारत की मुख्य सामाजिक धारा में मिलाने के उपायो

ने इनमे यह भावना पैदा की है कि अपने अस्तित्व को अलग रखा जाये। ऐसे क्षेत्र मे जहॉ ये अधिक सख्या मे केन्द्रित हैं, इनकी प्रादेशिकवाद की भावना उभडी है। इसका उदाहरण उत्तर–पूर्वी सीमान्त क्षेत्र मे अनेक पहाडी जनजातियो के आन्दोलन के फलस्वरूप नागालैण्ड, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, अरूणाचल प्रदेश आदि का उदय हुआ और एक पूर्वोत्तर परिषद की स्थापना की गई ताकि इस क्षेत्र का समेकित आर्थिक विकास हो तथा सुरक्षा एव सार्वजनिक व्यवस्था बनी रहे। सविधान की छठी अनुसूची मे इन जनजातीय पहाडी इलाको को "स्वायत्तशासी जिले" कहा गया ताकि वे सविधान के अधीन अपनी प्रतिभा, प्रकृति और सस्कृति के अनुसार अपना विकास कर सके। धीरे–धीरे स्वायत्तशासी होने की भावना राष्ट्रवाद लगाव मे विकसित होती जा रही है जिससे वे कबीले के प्रति निष्ठाओ का विस्तार जनजातीय निष्ठाओ तक कर रहे हैं, जो अन्तत क्षेत्रीय एकता का आधार तथा एक समान सास्कृतिक ऐतिहासिक सत्ता का आधार बन जाता है ताकि उनकी अपनी राजनीतिक आकाक्षाओ का सवर्धन किया जा सके। यदि इस उद्देश्य की पूर्ति राष्ट्रवाद के अन्दर ही की जाए तो इसे खतरनाक नही समझा जा सकता, परन्तु जब यह एक अलग राष्ट्रवाद का रूप धारण कर ले तो इसका देश की राजनीतिक और राष्ट्रीय एकता पर बहुत घातक परिणाम पड सकता है (यादव एव शर्मा, 1997, पृ० 58)।

प्रादेशिकवाद बढाने के सामाजिक कारको मे जाति व्यवस्था का भी हाथ है। भारत की विभिन्न जातियो के अपने–अपने विचार एवं दृष्टिकोण हैं, जिनमे पर्याप्त अन्तर भी है। इन्ही अन्तरो के कारण इनमे तनाव की स्थिति बनी रहती है। इसी तनाव के परिणामस्वरूप जातिवाद की भावना के प्रसार के अवसरो मे वृद्धि होती है। जातिवाद के अन्तर्गत अपनी जाति के सदस्यो के प्रति विशेष लगाव एव पक्षपात की भावना हुआ करती है, राष्ट्र के हित का कोई ध्यान नही रखता तथा अन्य जातियो के सदस्यो के प्रति घृणा एव विरोध का दृष्टिकोण अपनाया जाता है। भारत मे जातिगत समूह तनाव अति उग्र रूप मे विकसित है, जिनके कुप्रभाव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे देखने को मिलते हैं (उपेन्द्र, 2001, पृ० 458)। जातिवाद के विकास से पूरा राष्ट्र विभिन्न वर्गों मे विभाजित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप राष्ट्र की एकता एव अखण्डता को ठेस पहुँचती है। विभिन्न जातियो के मध्य तनाव एव सघर्ष की स्थिति के कारण राष्ट्र की शक्ति क्षीण हो जाती है। आज देश भी जातिगत संकीर्णता के

कारण ही छोटे–छोटे खेमो मे बॅट गया है जिससे राष्ट्र के विकास मे बाधा उत्पन्न हो रही है। राष्ट्रीय विकास के लिये यह आवश्यक है कि स्वस्थ सामुदायिक भावना का विकास हो, पर जातिवाद उस स्थिति को उत्पन्न नही होने देता। भारत मे जाति का सम्बन्ध धर्म, भाषा, विश्वास और परम्पराओ से है। यद्यपि जाति व्यवस्था अपने आप मे प्रादेशिकवाद को बढाने हेतु उत्तरदायी नही है तथापि जब आर्थिक, भाषायी, धार्मिक और सास्कृतिक हितो मे टकराव होता है तो प्रादेशिकवाद उभडता है। भारत की सामाजिक व्यवस्था मे विविधता का एक अन्य रूप विशिष्ट वर्ग और जनसाधारण के विभाजन मे देखने को मिलता है। इससे दो सामाजिक स्तर विकसित हुए हैं। एक की पहुॅच सत्ता के सभी स्रोतो तक है तो दूसरा अपने को असहायावस्था मे पाता है। इन दोनो के अर्न्तविरोध से प्रादेशिकवाद को बढावा मिला है। आधुनिकीकरण के कारण शिक्षा, सचार–व्यवस्था, यातायात, उद्योग तथा कृषि आदि में विकास हुआ है। इससे राष्ट्रीय जागरूकता बढी है। पुन श्च यही जागरूकता नागरिको, समुदायो, क्षेत्रों और वर्गों मे व्याप्त असमानताओ को उजागर करती है। इससे बढती आकांक्षाओ के पूरा न होने पर असन्तोष और निराशा उत्पन्न होती है और सगठनो के निर्माण के लिए आवश्यक परिवेश बनते हैं। इससे क्षेत्रीय वर्ग अधिक सचेत होते हैं। परम्परावादी समुदाय आधुनिक सगठनो का रूप लेते हैं और प्रादेशिकवाद के आन्दोलनो को हवा देते हैं। जिन क्षेत्रो मे किसी एक जाति की प्रधानता रही, वहॉ प्रादेशिकवाद ने उग्र रूप धारण किया। हरियाणा और महाराष्ट्र मे प्रादेशिकवाद ने अपने पैर तेजी से फैलाये। इसके पीछे 'जाति' प्रभावक तत्व ही रहा है। बिहार, उडीसा, मध्यप्रदेश के आदिवासियो द्वारा झारखण्ड, छत्तीसगढ तथा उत्तर प्रदेश के पहाडी क्षेत्रो की जनता द्वारा उत्तराचल की मॉग और उनकी मॉगो का पूरा होना सामाजिक अन्याय और पिछडेपन के उदाहरण हैं (जैन, 1998, पृ० 280)। जाति को दो भागो मे बॉटकर प्रादेशिकवाद को बढाने मे इसकी भूमिका को देख सकते हैं – (A) Dominant Caste Region State मे जाति और प्रादेशिकवाद की रेखाए मिल जाती हैं। राज्य मे यही कभी–कभी उग्र रूप धारण कर लेती हैं जहॉ Dominant Caste Region होता है। इसके विपरीत (B) Multi Caste Region State मे भूमिका बॅट जाती है। अत प्रादेशिकवाद को बढाने मे अधिक सहायक नही होती हैं जैसे राजस्थान व बिहार (जैन, 1997, पृ० 281)।

2.4 भाषायी कारक

भाषा एक शक्तिशाली एकताकारी तथा विभाजक शक्ति हो सकती है जो इस बात पर निर्भर है कि उसका सचालन किस प्रकार किया जाता है। सघ–राज्य सम्बन्धो मे भाषा के क्षेत्र मे वैमनस्य इस आशका के कारण होता है कि लोगो के वर्ग की भाषा को अलग–अलग मातृभाषाओ वाले लोगो पर लादना आर्थिक और सामाजिक प्रधानता का पूर्वगामी है। सरकारी सेवा प्रतिष्ठित रोजगार की एक प्रमुख मॉग है। लोगो के एक वर्ग की मातृभाषा को राजभाषा के रूप मे अपनाने के कारण उन नागरिको के अवसर, जिनकी मातृभाषा अलग है और जो उस भाषा मे समान रूप से दक्ष नही हैं, हानिकारक रूप से प्रभावित होते हैं। इस प्रकार की भावना का विखण्डनकारी ताकतो को पूरा लाभ उठाने का अवसर मिलता है और इसके विरूद्ध पर्याप्त विरोध उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त, राजभाषा या राज्य की भाषा के रूप मे तथा द्विभाषीय या बहुभाषीय क्षेत्रो मे शिक्षा के रूप मे केवल किसी एक विशिष्ट भाषा का प्रयोग किया जाना भी विरोध का कारण होता है (सरकारिया, 1987, पृ० 499)।

भाषा का राजनीतिकरण प्राय देश की एकता और अखण्डता के लिए खतरा बन गया है। राज्यो के पुनर्गठन का सर्वाधिक दु खद परिणाम यह हुआ कि अनौपचारिक रूप से भाषा को राज्य के गठन का आधार माना जाने लगा है। भाषायी उग्र राष्ट्रवादियो ने इस विचार को इस हद तक तूल दिया है कि उन्होने स्थानीय भाषा के लोगो की समस्याओ से सम्बन्धित लोगो पर देशद्रोह का आरोप लगाया। देश की विभिन्न विघटनकारी शक्तियो ने इस भाषायी भावुकता का अपने निहित स्वार्थों के लिए अनुचित लाभ उठाया (सरकारिया, 1987, पृ० 501)।

भारत एक बहुभाषी देश है जिसके अलग–अलग प्रान्तो में अलग–अलग भाषाये बोली जाती हैं (चित्र 2 1)। यहॉ लगभग 1652 मातृभाषाये अथवा 200 वर्गीकृत भाषाये बोली जाती है और 10 लिपियो का प्रयोग होता है। भाषा सामाजिक एकीकरण के बिखराव का एक महत्वपूर्ण साधन है। भारत मे भाषा की भूमिका एकीकरण की कम और बिखराव की अधिक रही है। सविधान लागू होने के 55 वर्ष बाद भी भारत की राष्ट्रभाषा पर कोई आम सहमति

N
भारत
भाषायी प्रारूप
बाल्टी
लद्दाखी
कश्मीरी
पाकिस्तान
चीन
हिन्दी
पजाबी
हिन्दी
हिन्दी
लेप्चा, भुटिया
नेपाल
हिन्दी
भूटान
मीरी
राजस्थानी
हिन्दी
असमिया
म्यांमार
हिन्दी
गुजराती
हिन्दी
हिन्दी
हिन्दी
हो
बगाली
मणिपुरी
मिजो
उडिया
मराठी
गोंड
खासी
गारो
त्रिपुरी, बगाली
मराठी, कोंकणी
तेलुगु
कन्नड
अडमानी
टुलू
तमिल
भाषा सीमा
निकोबारी
मलयालम
मलयालम
राज्य सीमा
300
0
300
600
किलोमीटर
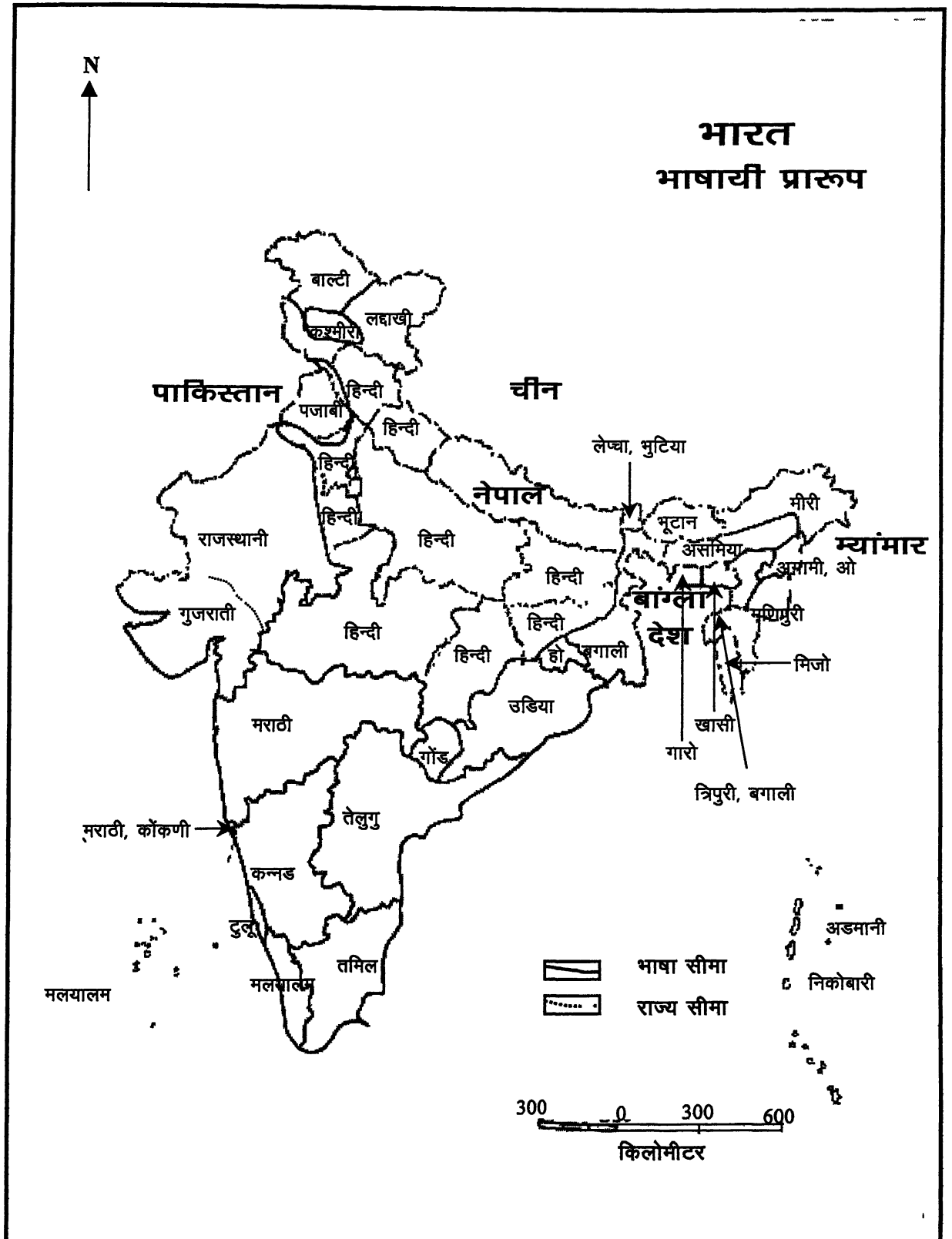
चित्र 2.1

नही बन पायी है। यद्यपि सविधान द्वारा हिन्दी को सघ की कामकाज की भाषा घोषित किया गया है तथापि दक्षिणी राज्यो द्वारा इसका विरोध किया जाता रहा है। राज्यों मे भी भाषायी विवाद उठते रहे हैं। उदाहरण के लिये कर्नाटक मे कन्नड और तमिल, उत्तर प्रदेश एव बिहार मे हिन्दी और उर्दू, पजाब मे हिन्दी और पजाबी, गोआ मे मराठी और कोकणी, असम मे असमी और बगाली तथा त्रिपुरा मे कॉक बोरोक और त्रिपुरी भाषाओ को लेकर विवाद की स्थिति पैदा होती रही है। भाषायी विवाद सामाजिक तनाव उत्पन्न करते हैं जिससे प्रादेशिकवाद का जन्म होता है।

भारत मे एक–सास्कृतिक क्षेत्र के मुख्य समूह के सदस्य एक विशेष भाषा को बोलते और लिखते हैं। इसे प्रादेशिक भाषा कहा जाता है। प्रत्येक प्रादेशिक भाषा के बोलने वालो का अपनी भाषा के प्रति अत्यधिक सवेगात्मक लगाव होता है जिसके फलस्वरूप वे यह मान बैठते हैं कि उनकी ही भाषा की शैली, शब्दावलि, साहित्यिक समृद्धि तथा गहनता अन्य सभी भाषाओ से कही अधिक आकर्षक व श्रेष्ठ प्रकृति की है। केवल अपनी ही भाषा को श्रेष्ठ समझना और अन्य सभी प्रादेशिक भाषाओ को हेय मान लेना प्रादेशिक दूरी को बढाता है जिसके फलस्वरूप प्रादेशिकवाद का जन्म होता है (मुकर्जी, 2001, पृ० 426–427)।

भाषा पृथकतावादियो का मानना है कि पृथक् भाषा वाले लोगो का एक पृथक् राजनीतिक अस्तित्व होना चाहिए और उन्हे स्वशासी होना चाहिए। भाषाई मॉग का एक अनुषग यह है कि हर कोई अपनी भाषा को सविधान की आठवी अनुसूची मे सम्मिलित कराना चाहता। किसी भी भाषा को इस प्रकार सम्मिलित कराने के पीछे वास्तविक मतव्य राजनीतिक होता है अर्थात् उस भाषा को बोलने वाले लोगो के लिए एक पृथक् राजनीतिक इकाई की मॉग, जैसा कि गोरखालैण्ड मे हो रहा है। विभिन्न गुट इस प्रकार की मॉग करते रहते हैं जिसे स्वीकार कर लेने से सघ का आत्मघाती विखण्डन हो जाएगा (बसु, 1998, पृ० 402–403)।

मुस्लिम अल्पसख्यको की सबसे बडी शिकायत यह है कि भारत मे उर्दू भाषा को उसका उचित स्थान नही दिया गया है। उनकी यह मॉग रही है कि उर्दू को दूसरी सरकारी भाषा का दर्जा दिया जाये। दूसरी ओर हिन्दी समर्थको के एक वर्ग की ओर से उर्दू वालो की

इस मॉग का घोर विरोध किया गया है। इस प्रकार उत्तरी भारत मे हिन्दी–उर्दू विवाद गम्भीर समस्या का रूप धारण कर गया है। चूँकि उर्दू भाषा अधिकाशत मुसलमानो की और हिन्दी भाषा अधिकतर हिन्दुओ की मातृभाषा है, इसलिए हिन्दी–उर्दू का झगडा हिन्दू और मुसलमानो के बीच स्वाभाविक रूप से तनाव पैदा करता है (सईद, 1996, पृ० 368)। एक नई राजनीतिक पार्टी "आल इडिया उर्दू मोर्चा" का जन्म हुआ, जिसके घोषणा पत्र मे कहा गया कि यदि वे जीत कर आये तो उर्दू को दूसरी राजभाषा बना देगे। उर्दू के प्रोन्नयन मे सहायता की मॉग अब उन राज्यो मे भी की जा रही है जहॉ उर्दू भाषी लोग जनसख्या मे पर्याप्त अनुपात मे नही हैं जैसे पश्चिमी बगाल मे उर्दू को राजभाषा के रूप मे मान्यता देने की मॉग की जा रही है। पश्चिम बगाल के मुसलमान जिनकी मातृभाषा बगाली है, किन्तु वे उर्दू बोलने का प्रयत्न करते हैं। जनगणना के समय वे उर्दू को अपनी मातृभाषा बताते हैं। इन सब गतिविधियो के पीछे उनकी मशा यह है कि अपनी सख्या के बल पर अपने लिए एक पृथक् राज्य की स्थापना कर सके (बसु, 1998, पृ० 422–423)।

2.5 धार्मिक एवं साम्प्रदायिक कारक

भारत मे धर्म एक प्रमुख शक्ति है। इसके प्रति अतिरिक्त निष्ठा और विश्वास अपने अनुयायियो को विशिष्ट एकता और सम्बन्धो में बॉधते हैं। अविकसित आर्थिक व्यवस्था मे धर्म की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। एक क्षेत्र मे बहुसख्यक रूप मे किसी एक धर्म के अनुयायियो के अधिक होने से प्रादेशिकवाद को विशेष प्रोत्साहन मिलता है।

साम्प्रदायिकता के अन्तर्गत वे सभी क्रियाकलाप आ जाते हैं जिनमे किसी धर्म अथवा भाषा के आधार पर किसी समुदाय विशेष के हितो पर बल दिया जाये और उन हितो के ऊपर भी प्राथमिकता दी जाये तथा उस समूह मे पृथक्ता की भावना उत्पन्न की जाये। मुस्लिम लीग एव हिन्दू महासभा को साम्प्रदायिक कहा जा सकता है, क्योकि वे धार्मिक हितो तथा अधिकारों को राष्ट्रीय हितो से ऊपर रखते हैं। वस्तुत साम्प्रदायिकता का बीज अंग्रेज सरकार ने बोया जिसने कि भारत मे 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनायी। सन् 1885 ई० मे स्थापित भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की राष्ट्रवाद की बढती हुई बाढ को रोकने के लिए अग्रेज सोच रहे थे कि भारत के दो मुख्य धार्मिक समूह हिन्दू तथा मुसलमान के बीच

एक दरार उत्पन्न करना आवश्यक है। सन् 1906 ई० मे मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और इसने भारतीय मुसलमानो से साम्प्रदायिक दृष्टिकोण एव भावना को उत्पन्न करने और तीव्र बनाने मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। लार्ड कर्जन द्वारा बगाल का विभाजन और उसके उत्तराधिकारी लार्ड मिण्टो द्वारा मुसलमानो के पृथक निर्वाचक मण्डलो की प्रणाली अपनाना– यह दो इस दिशा मे जघन्य कार्य थे। सन् 1909 ई० मे इस प्रणाली को तत्कालीन भारत मन्त्री लार्ड जॉन मार्ले की इच्छा के विरुद्ध लागू कर दिया गया। मुस्लिम लीग के कारनामो से देश के सभी लोग वाकिफ हैं, साम्प्रदायिकता ही इसका आधार था, वह सिद्धान्त की दृष्टि से हिन्दू और मुसलमानो को केवल दो अलग–अलग धर्म ही नही, दो अलग–अलग राष्ट्र मानती थी, उसने ही भारत के बॅटवारे की आवाज उठायी और इसी के परिणामस्वरूप पाकिस्तान बना (मुकर्जी, 2001, पृ० 416)।

साम्प्रदायिकता भयकर विघटनकारी प्रवृत्ति है। इससे हमारे देश का विभाजन हुआ है। फिर भी भारतीय राजनीति मे साम्प्रदायिकता का विष फैलाया जा रहा है। अधिकाश राजनीतिक दल सत्ता प्राप्ति की दौड मे भिन्न–भिन्न सम्प्रदायो का उपयोग करने लगे हैं। बहुसख्यक व अल्पसख्यक का भेद उग्र रूप धारण करता जा रहा है, इससे उत्पन्न साम्प्रदायिक उत्तेजना ने देश की शान्ति व व्यवस्था को अस्थिर बनाया है। आज साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा के लिये गभीर खतरा बन चुकी है। ये सभी कुछ राजनीतिक दलो की अस्वस्थ मनोवृत्तियो के कारण हैं। साम्प्रदायिकता की राजनीति इस सीमा तक पहुँच चुकी है कि सम्पूर्ण समाज अल्पसख्यक और बहुसख्यक समुदायो मे विभाजित ही नही है वरन् अल्पसख्यको के साथ बहुसंख्यक भी अपने को असुरक्षित महसूस करने लगे हैं। स्वतन्त्र भारत मे राष्ट्रवादी शक्तियॉ क्रमश कमजोर होती गयी और धार्मिक कट्टरता एवं सम्प्रदायिक उन्माद क्रमश बढता गया है। उपलब्ध ऑकडो के अनुसार स्वतन्त्रता के बाद से भारत में 10,000 से अधिक साम्प्रदायिक दगे हो चुके हैं। साम्प्रदायिक दगो का आये दिन होना इस बात का सकेत प्रस्तुत करता है कि भारत के लिए राष्ट्रीय राज्य की अवस्था प्राप्त करने का उद्देश्य अभी कोसो दूर है। इससे एक ओर तो हिन्दुओ के समक्ष मुस्लिमो की प्रतिबद्धता सन्देहास्पद हो जाती है तो दूसरी ओर मुस्लिम हिन्दुओ से भयभीत हो

जाते हैं। हाल के वर्षों मे कतिपय धार्मिक स्थानो को भी राजनीतिक उद्देश्यो के लिये प्रयोग किया गया जो अति दुर्भाग्यपूर्ण है।

राजनीतिक प्रक्रिया मे धर्म के साम्प्रदायिक प्रयोग से राष्ट्रीय एकीकरण को अपूरणीय क्षति पहुँची है और प्रत्येक राजनीतिक जन–प्रक्रिया और जन–आन्दोलन व्यक्ति की राष्ट्रीय अस्मिता और निष्ठा की भावना को कम करके उसकी धार्मिक अस्मिता और निष्ठा को अधिक मजबूत बना रही है। राष्ट्रीय हित राजनीतिक और साम्प्रदायिक हितो के सम्मुख गौण होते जा रहे हैं।

2.6 भौगोलिक कारक

भारत की भौगोलिक सरचना भी प्रादेशिकवाद के प्रोत्साहन का प्रमुख कारण है। भारत चार स्पष्ट भौगोलिक क्षेत्रो मे स्वाभाविक रूप से विभक्त है। ये क्षेत्र हैं उत्तर का पर्वतीय प्रदेश, सिन्धु–गगा का विशाल मैदान, दक्षिण का पठार तथा समुद्र तटीय मैदान एव द्वीप समूह। इन चारो क्षेत्रो की भौगोलिक दशाये अलग–अलग ही नहीं, वरन् कई मामलो मे एक–दूसरे के विपरीत भी हैं। फलत विभिन्न क्षेत्रो मे जो विभाजन हुआ, उसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर पडा और एक क्षेत्र के सामाजिक, धार्मिक रीति–रिवाज, भाषा, सास्कृतिक परम्पराये, पोशाक, आभूषण, प्रकृति, खान–पान, रहन–सहन आदि दूसरे क्षेत्रो से भिन्न रहे (मुकर्जी, 2001, पृ० 425)। वस्तुत सारे भारत का इतिहास भौगोलिक कारणो से प्रभावित रहा है। भौगोलिक विभिन्नता ने आधुनिक भारत मे प्रादेशिकवाद को बढ़ाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

2.7 सांस्कृतिक कारक

प्रादेशिकवाद के विकास मे सास्कृतिक कारक भी कम महत्वपूर्ण नही है। भारत की भौगोलिक परिस्थितियो ने भारत को न केवल कुछ भौगोलिक क्षेत्रो मे अपितु उतने ही सास्कृतिक क्षेत्रो मे भी बॉट दिया है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र का अपना एक विशिष्ट सास्कृतिक जीवन–प्रतिमान है और उस प्रतिमान से एक अजीब लगाव उस क्षेत्र के लोग पनपा चुके हैं। यह लगाव कभी–कभी इतना स्पष्ट एव एकतरफा हो जाता

है कि एक क्षेत्र के लोग अपने सास्कृतिक प्रतिमान को अन्य क्षेत्रो की तुलना मे कही अधिक श्रेष्ठ समझने लगते हैं। उदाहरणार्थ, उत्तरी क्षेत्रो के लोगो को यह कहते हुए गर्व होता है कि उन्ही के क्षेत्र मे वैदिक सभ्यता और सस्कृति का उदय हुआ। उनका दावा है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता और आर्य सभ्यता सम्पूर्ण भारत को नया प्रकाश देने वाली थीं और उन्ही का क्षेत्र भारतीय सस्कृति, ललित कला, साहित्य, यहॉ तक कि राजनीति का सर्वप्रमुख केन्द्र रहा और अब भी है। हिन्दी भाषा इसी क्षेत्र की मूल भाषा है और स्वतन्त्र भारत के अधिकतर प्रधानमन्त्री इसी क्षेत्र के हुए हैं। दूसरी ओर भारत के दक्षिणी क्षेत्र के लोगो का यह दावा है कि प्राचीन भारतीय सस्कृति के अनेक मौलिक तत्व उनके ही क्षेत्र मे विद्यमान हैं। उनका क्षेत्र द्रविड सभ्यता, संस्कृति और भाषाओ का आदि–स्थान है। इस अर्थ मे आदि भारत का सच्चा रूप तो उनका ही क्षेत्र है (मुखर्जी, 2001, पृ० 426)।

भारत मे प्रादेशिकवाद के विस्तार के उत्तरदायी उपरोक्त कारको को सामान्यीकरण करते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रादेशिकवाद के अन्तर्गत राजनीतिक व्यवस्था करने वाली केन्द्रीय शक्ति के विकेन्द्रीकरण की मॉग की जाती है। प्राय यह देखा जाता कि जब कभी भी केन्द्रीय सरकार ने सम्पूर्ण भारत के सामान्यीकरण का प्रयास किया, तब कई क्षेत्रो से उसका विरोध हुआ, आन्दोलन हुआ और नई–नई मॉगे प्रस्तुत की गयी हैं। भाषा के मामले का उठाया जाना इसका उदाहरण है। यह कहना कठिन है कि प्रादेशिकवाद के उभारने का कौन सा कारक प्रमुख है, परन्तु वर्तमान सन्दर्भों मे इसके दो सर्वप्रमुख कारक हैं – पहला आर्थिक और दूसरी राजनीतिक। यदि आर्थिक स्थिति सुदृढ हो और राजनीतिक शक्ति राष्ट्रीय हितो को ही सर्वोच्च माने, तो प्रादेशिकवाद पर निश्चय ही अकुश लगाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

आशीर्वादम, ए०डी० एव मिश्र, कृष्णकान्त, 1992 **राजनीति विज्ञान,** एस० चन्द्र एण्ड कम्पनी लि०, दिल्ली।

बसु, दुर्गा दास, 1998 **भारत का सविधान . एक परिचय,** प्रेटिस हाल आफ इडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ, 2001 **भारतीय समाज व सस्कृति,** विवेक प्रकाशन, दिल्ली।

सरकारिया, आर० एस०, 1988 **केन्द्र राज्य सम्बन्ध आयोग** भाग–1, महाप्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक।

सईद, एस० एम०, 1996 **भारतीय राजनीतिक व्यवस्था**, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।

सिह, लल्लन जी, 1999 **राष्ट्रीय रक्षा और सुरक्षा,** प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

उपेन्द्र, 2001 **समाजकार्य**, भारत प्रकाशन, लखनऊ।

यादव, सुषमा एव शर्मा, रामअवतार, 1997 **भारतीय राजनीति : ज्वलन्त प्रश्न,** हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

अध्याय –3

भारत में प्रादेशिकवाद की ऐतिहासिक–राजनीतिक पृष्ठभूमि

भारत एक प्राचीन देश है। जिसकी लम्बी सास्कृतिक एव राजनीतिक परपराऍ हैं। भारतीय सघ के वर्तमान स्वरूप के विकसित होने मे हजारो वर्षो का समय लगा है। इस दौरान अनेको राज्य वशो एव राज्यो का विकास एव अवसाद हुआ है। यद्यपि वे आज अस्तित्व मे नही है परन्तु इनमे से बहुतो की सास्कृतिक परम्परा मे किसी न किसी रूप मे सरक्षित हैं। इससे प्रादेशिक विशिष्टता (ıdentity) का विकास हुआ है। जिससे प्रादेशिकवाद के विकास को बल मिलता रहा है। वर्तमान अध्याय मे प्रादेशिकवाद के इन्ही ऐतिहासिक-राजनीतिक तथ्यो पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

3.1 प्राचीनकाल

3.1.1 वैदिक काल

आर्यों के आगमन के पूर्व बलूचिस्तान एवं समस्त पश्चिमोत्तर प्रदेश मे द्रविडो का प्रभाव था। गगा–यमुना द्वाब, बगाल एव दक्षिण भारत मे भी द्रविडो का प्राचीन अस्तित्व प्रकट होता है (सिह, सिह एवं पटेल पृ० 5)।

सिन्धु एव गगा के मैदान बहुत ही उपजाऊ एव समृद्धिशाली थे इसलिए इसी भाग मे बडे–बडे साम्राज्यो की स्थापना हुई। भारत के इसी प्रदेश से अनेक राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एव दार्शनिक विचार उद्भूत हुए। वैदिक काल के पूर्व ही सिन्धु घाटी की सम्पन्न उन्नत एव प्रगतिशील सस्कृति तथा सभ्यता का विस्तार पाकिस्तान और भारत के पजाब, सिन्ध, बलूचिस्तान, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, जम्मू–कश्मीर के भागो मे पाये जाने के सकेत प्राप्त हुए हैं। इस सभ्यता का सर्वाधिक पश्चिमी पुरास्थल सुतकागेनडोर, पूर्वी स्थल आलमगीरपुर, उत्तरी पुरास्थल मॉड तथा दक्षिणी पुरास्थल दैमाबाद

है। सिन्धु सभ्यता का फैलाव उत्तर मे जम्मू से लेकर दक्षिण मे नर्मदा के मुहाने तक और पश्चिम मे मकरान समुद्र तट से लेकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे मेरठ तक फैला था। लगभग त्रिभुजाकार वाला यह भाग कुल 12,99,600 वर्ग कि० मी० के क्षेत्र मे फैला हुआ था। अब तक भारतीय उपमहाद्वीप मे इस सभ्यता के लगभग 1000 स्थानो का पता चल चुका है, जिनमे केवल 7 को ही नगर की सज्ञा दी जा सकती है। ये – हडप्पा, मोहनजोदडो, चन्हूदडो, लोथल, कालीबगा, हिसार एव बनावाली हैं (घोष, 1999, पृ० 10)। पिग्गट ने हडप्पा और मोहनजोदडो को 'एक विस्तृत साम्राज्य की जुडवा राजधानी' बतलाया है।

आर्यों ने सप्त सैन्धव सभ्यता के प्रवर्तक अनार्यों को पराजित कर उनकी सभ्यता को नष्ट किया और आर्य सभ्यता की नीव डाली। आर्यों द्वारा सर्वप्रथम पजाब के क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित कर इसका नाम 'सप्त सैन्धव' रखा गया। इसके पश्चात् पूर्व की ओर अपना प्रभुत्व विस्तार करके गगा–यमुना के मध्य भाग को उन्होने 'ब्रह्मर्षि देश' का नाम दिया। धीरे–धीरे हिमालय और विन्ध्य पर्वतो के मध्य का विशाल भू-भाग, आर्यों का प्रधान निवास क्षेत्र बन गया, जिसे आर्यावर्त की सज्ञा दी गयी। कालान्तर मे दक्षिण की ओर उनका प्रसार हुआ और उसका नाम दक्षिणापथ रखा गया। वस्तुत 'भारतवर्ष' नामकरण मुख्यत उस क्षेत्र के लिए हुआ जो आर्यों का निवास क्षेत्र (आर्यावर्त) था, परन्तु इसका व्यवहार हिमालय के दक्षिण समुद्र पर्यन्त विस्तीर्ण सम्पूर्ण भूभाग के निमित्त होने लगा (सिह, सिह एव पटेल, 1998, पृ० 1)।

ऋग्वेद मे आर्यों के पाच कबीले (अनु, द्रुहय, पुरू, तुर्वस, यदु) होने के कारण उन्हे पचजन्य कहा गया। राजा भूमि का स्वामी नही था, वह युद्ध का स्वामी था। प्रत्येक कबीले मे एक राजा होता था। ऋग्वैदिक काल मे सम्पूर्ण आर्य प्रदेश मे राजनीतिक एकता स्थापित नही हुई थी। विभिन्न स्थानो पर छोटे–बडे अनेक राज्य थे। छोटे राज्यो का बडे राज्यो मे विलय प्रारम्भ हो गया था और इस प्रकार राजनीतिक एकता, एकछत्र राज्य या साम्राज्य स्थापना की धारणाये ऋग्वैदिक काल मे ही उन्मुख होने लगी थी। आर्यों के एक कबीले के राजा भरत ने निकटवर्ती अन्य आर्यों एव अनार्यों को पराजित कर राज्य विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। उत्तर वैदिक काल मे प्रथमत ब्राह्मण ग्रन्थों मे प्रयुक्त 'जनपद' शब्द से प्रकट

सास्कृतिक एकता वाले भूभाग को जनपद कहा जाता था। उत्तर वैदिक काल मे 'राजतन्त्र' ही शासन तन्त्र का आधार था, पर कही–कही गणराज्यो के भी उदाहरण मिलते हैं। प्रदेश का सकेत करने वाला शब्द 'राष्ट्र' सर्वप्रथम उत्तरवैदिक काल मे ही प्रयोग किया गया। उपनिषदो मे गन्धार, केकय, भद्र, अशीनर, मत्स्य, कुरु, पाचाल, काशी, कोशल और विदेह आदि राज्यो (जनपदो) का उल्लेख मिलता है। पुराण काल मे सम्पूर्ण उत्तरी भारत मे बाह्लीक, आभीर, केकय, गन्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, कम्बोज, दरद तथा तालशाल, पूर्वी भारत मे अग, बग, चोलभद्र, किरात, तोमर, हसभगन, चाहुक, हूण, भार्गव, विदेह, ताम्रलिप्त, मल्ल तथा मगध और दक्षिण भारत मे पाण्ड्य, केरल, चोल, कुल्प, क्षपण, महाराष्ट्र, कलिग, विदर्भ, दण्डक, कोकण तथा कुलिन्द आदि राज्य (जनपद) थे। समस्त राष्ट्र दिशाभेद के आधार पर प्राच्य, उदीच्य, पाश्चात्य, दक्षिणात्य और ध्रुव मध्य मे विभक्त थे। प्रत्येक दिशा के अन्तर्गत अनेक जनपद थे (सिह, सिह एव पटेल, 1998, पृ० 5)।

महाकाव्य काल मे भारतवर्ष आर्य–अनार्य की विवाद रेखा को समाप्त कर एक देश और सास्कृतिक रूप मे उभर कर आया। छोटे–छोटे राज्यो के स्थान पर बडे–बडे राज्यो (जनपदो) की स्थापना हो चुकी थी, जिनमे अधिकाश राजतन्त्र एव कुछ गणतन्त्र थे (सिह, सिह एव पटेल, 1998, पृ० 5)। सूर्य–वशी राजाओ ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को राजनीतिक एकता मे आबद्ध करके अश्वमेघ यज्ञ किया था। उसी प्रकार पाण्डवो ने कौरवो की एकता विरोधी शक्ति को नष्ट करके सम्पूर्ण भारतवर्ष को एकता मे बॉध दिया था। महाकाव्य काल मे भारतवर्ष की राजनीतिक एव सास्कृतिक एकता ने भावी भारतवर्ष की आधार शिला रखी थी। महाकाव्य काल मे दक्षिण भारत मे दंडक, सह्य, किष्किन्धा, मलय, सुक्तिमान तथा लका राज्य थे। मध्य भाग मे विदर्भ, ऋक्ष, दशार्ण, अवन्ति तथा महेन्द्र राज्य थे। पूर्वी भाग मे मगध, चम्पा, राजगृह, अग, पाच्य राज्यो का वर्णन मिलता है। उत्तर और उत्तर–पश्चिम भाग मे उस समय विदेह, काशी, अयोध्या, प्रयाग, वत्स कान्यकुब्ज, पाचाल, कोसल, हस्तिनापुर, मथुरा, शूरसेन, इन्द्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्र, सप्त–सैन्धव, केकय, तक्षशिला, गन्धार और कम्बोज राज्य थे (चित्र 3 1) (थपलियाल, 2000, पृ० 8)।

भारत
महाकाव्य काल
N
कम्बोज
गान्धार
हिमाद्रि
तक्षशिला
कैकय
स प्त सै न्ध व
कुरु
हिमाद्रि
ब्रह्मावर्त
हस्तिनापुर
कोसल
इन्द्रप्रस्थ
पांचाल
विदेह
शूरसेन
मथुरा
कान्यकुब्ज
अयोध्या
पाच्य
बंग
मत्स्य
प्रयाग
राजगृह
चम्पा
परियात्र
चेदि
वत्स
काशी
अवन्ति
दशार्ण
मगध
अंग
आनर्त
भरुकच्छ
ऋक्ष
द्वारिका
विदर्भ
महेन्द्र
दण्डक
पश्चिम
पयोधि
पूर्व
सागर
किष्किंधा
मलय
सुक्तिमान
लंका
महार्णव
दक्षिण
100 0 100 200 300
किलोमीटर
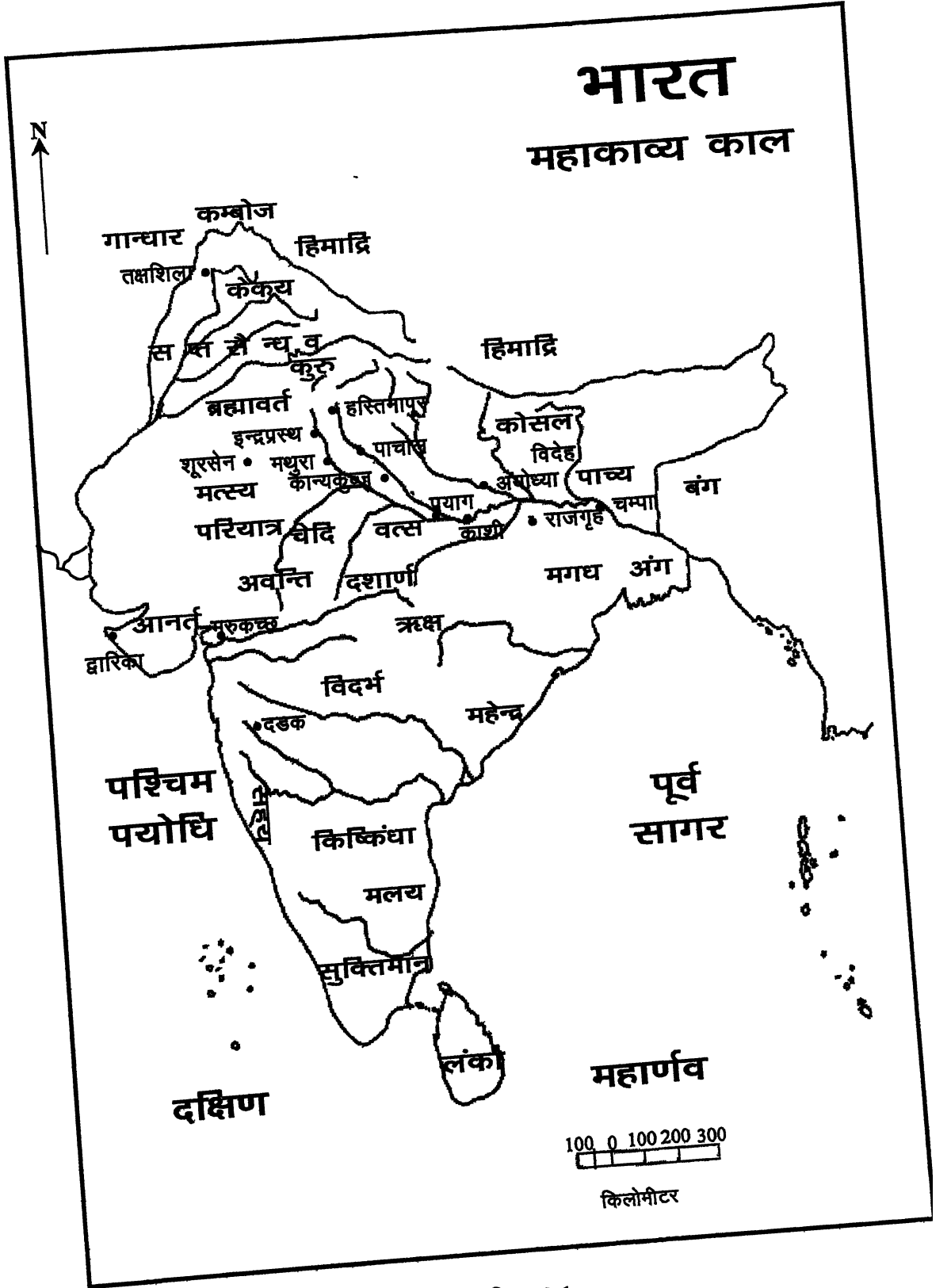
चित्र 3.1

3.1.2 बौद्धकाल

एक सहस्त्र ई०पू० से पाँचवी शताब्दी ईसा पूर्व तक के युग को भारतीय इतिहास मे महाजनपद युग कहा जाता है। सम्पूर्ण देश मे जनपदो का तॉता फैल गया। एक प्रकार से जनपद राजनीतिक, सास्कृतिक और आर्थिक जीवन की इकाई बन गये थे। धीरे–धीरे जनपदो की सख्या कम होने लगी। उनका आकार बढने लगा और महाजनपद काल का उदय हुआ। महात्मा बुद्ध के आविर्भाव (566 ईसा पूर्व) के पूर्व भारतवर्ष 16 महाजनपदो मे विभक्त था। उन महाजनपदो मे एक प्रकार की शासन पद्धति नही थी। कही राजतन्त्र था, तो कही गणतन्त्र (सिह, सिह एव पटेल, 1998, पृ० 5)। 16 महाजनपद इस प्रकार हैं– **अग** उत्तरी बिहार का आधुनिक भागलपुर तथा मुगेर जिला इसके अन्तर्गत आता था , इसकी राजधानी चम्पा (प्राचीन नाम मालिनी) थी। कालान्तर मे बिम्बसार ने अग को जीतकर मगध साम्राज्य मे मिला लिया। **काशी** आधुनिक वाराणसी एव उसके निकटवर्ती क्षेत्र को काशी महाजनपद कहा गया। वरूणा और अस्सी नदियो के मध्य स्थित वाराणसी इस महाजनपद की राजधानी थी। अजातशत्रु के समय इसे मगध साम्राज्य मे मिला लिया गया। **कोशल** उत्तरप्रदेश के वर्तमान फैजाबाद जिले मे स्थित यह महाजनपद उत्तर मे नेपाल, दक्षिण मे सई नदी, पश्चिम पाचाल एव पूर्व मे गडक नदी तक फैला हुआ था। इसकी राजधानी श्रावस्ती थी। बुद्ध के समय यह महाजनपद दो भागो मे विभाजित हो गया, उत्तरी भाग की राजधानी साकेत एव दक्षिणी भाग की राजधानी श्रावस्ती हो गयी। **वज्जि** वैशाली (बिहार मे स्थित) वज्जि महाजनपद की राजधानी थी। गौतम बुद्ध के समय वैशाली का लिच्छवि गणराज्य सर्वाधिक शक्तिशाली था। मगध के पडोस मे स्थित वज्जि सघ आठ कुलो का एक सघ था , इनमे विदेह, लिच्छवि, कात्रिक एव वृज्जि महत्वपूर्ण थे। अजातशत्रु ने वैशाली को मगध साम्राज्य मे सम्मिलित कर लिया था (गुप्त, 2000, पृ० 21)। **मल्ल** आधुनिक देवरिया एव गोरखपुर क्षेत्र मे स्थित मल्ल दो भागों मे बॅटा था, जिसमें एक की राजधानी कुसावती अथवा कुसीनारा (उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले मे स्थित) एव दूसरे की राजधानी पावापुरी (बिहार में नालन्दा जिले मे स्थित) थी (घोष, 2000, पृ० 124)। **चेदि** वर्तमान बुन्देलखण्ड का पूर्वी भाग एव उसके निकटवर्ती भाग प्राचीन चेदि महाजनपद के अन्तर्गत आते थे। शक्तिमती चेदि महाजनपद की राजधानी थी (घोष, 2000, पृ० 425)। तत्कालीन प्रसिद्ध नगरो कौशाम्बी,

राजगृह, उज्जयिनी से सडक मार्ग से सम्बद्ध होने के कारण राजनीतिक–आर्थिक महत्व की नगरी थी। **वत्स** यमुना के किनारे स्थित वत्स महाजनपद वर्तमान इलाहाबाद तथा कौशाम्बी जिले का क्षेत्र था। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी। मगध साम्राज्य के उत्कर्ष के बाद कौशाम्बी का आर्थिक महत्व बढ गया क्योकि यह उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ का पडाव स्थल बन गया था। **कुरू** आधुनिक दिल्ली एव उसके समीप के क्षेत्र ही प्राचीन कुरू प्रदेश के क्षेत्र थे। कुरू महाजनपद की राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी, जो कि पाण्डवो की राजधानी भी रही थी। **पाचाल** वर्तमान मे रूहेलखण्ड के बरेली, बदायूँ एव फर्रूखाबाद जिलो को मिलाकर ही प्राचीन पाचाल महाजनपद का निर्माण होता था। गगा नदी इस महाजनपद को दो भागो–उत्तरी पाचाल तथा दक्षिणी पाचाल मे बॉटती हैं , उत्तरी पाचाल की राजधानी अहिच्छत्र (उत्तर प्रदेश के बरेली जिले मे स्थित रामनगर नामक स्थान) तथा दक्षिणी पाचाल की राजधानी काम्पिल्य (उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद जिले मे स्थित) थी (गुप्त, 2000, पृ० 22)। **मत्स्य** वर्तमान मे जयपुर के समीपवर्ती क्षेत्र मत्स्य महाजनपद के अन्तर्गत आते थे। इसकी राजधानी विराट नगर थी। विराट नगर का महाजनपद काल मे राजनीतिक सास्कृतिक प्रभाव अत्यधिक था (घोष, 2000, पृ० 25)। **शूरसेन** आधुनिक मथुरा मे प्राचीन शूरसेन महाजनपद का विस्तार था। इसकी राजधानी मथुरा थी (शर्मा, 1995, पृ० 108)। **अश्मक** अश्मक की स्थिति गोदावरी नदी के दक्षिणी तट पर मानी गयी है। इसकी राजधानी पोतन या पोटली या प्रतिष्ठान (महाराष्ट्र के औरगाबाद जिले मे पैठन के रूप मे अवस्थित) थी। प्रतिष्ठान दक्षिण से उत्तर की ओर जाने वाले व्यापारिक मार्ग (दक्षिणापथ) पर स्थित था इसलिए इसका राजनीतिक व आर्थिक महत्व था (गुप्त, 2000, पृ० 23)। **अवन्ति** आधुनिक मालवा का क्षेत्र ही प्राचीन अवन्ति महाजनपद का क्षेत्र था। यह महाजनपद दो भागो उत्तरी अवन्ति एव दक्षिणी अवन्ति मे बॅटा था, उत्तरी अवन्ति की राजधानी उज्जैन (मध्य प्रदेश मे क्षिप्रा नदी तट पर स्थित जिला नगर) एव दक्षिणी अवन्ति की राजधानी महिष्मती या माहेश्वर (मध्य प्रदेश के इन्दौर जिले मे अवस्थित) थी। बौद्धधर्म से प्रभावित इस महाजनपद को शिशुनाग ने मगध साम्राज्य में मिला लिया (शर्मा, 1995, पृ० 108)। **गन्धार** : यह क्षेत्र वर्तमान मे पाकिस्तान के रावलपिण्डी एव पेशावर के क्षेत्र को समाहित किए था। इसकी राजधानी तक्षशिला थी। तक्षशिला उत्तर–पूर्व, पश्चिम एव मध्य एशिया, कश्मीर से आने वाले तीन मार्गों के सगम पर स्थित था। इसलिए इसका आर्थिक, राजनीतिक एव सास्कृतिक महत्व स्थापित

रहा (गुप्त, 2000, पृ० 23)। **कम्बोज** यह महाजनपद कश्मीर से लेकर हिन्दकुश पर्वत तक फैला था। इसकी राजधानी हाटक (कश्मीर के राजौरी नामक स्थान पर अवस्थित राजपुर) थी (शर्मा, 1995, पृ० 108)।

मगध सोलह महाजनपदो मे मगध का साम्राज्य के रूप मे आविर्भाव व उत्कर्ष हर्यक वश के शासन काल (554 ईसा पूर्व से 412 ईसा पूर्व) के दौरान हुआ। हर्यक वश के प्रथम शासक बिम्बसार को मगध साम्राज्य की महत्ता का वास्तविक सस्थापक स्वीकार किया जाता है। मगध साम्राज्य की आरम्भिक राजधानी गिरिव्रज (राजगृह) थी। बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु (492 ईसा पूर्व से 460 ईसा पूर्व) ने काशी तथा वज्जि सघ को मगध साम्राज्य मे समाहित कर लिया। अजातशत्रु के उत्तराधिकारी उदायिन (460 ईसा पूर्व से 445 ईसा पूर्व) ने गगा और सोन नदियो के सगम पर पाटलिपुत्र (कुसुमपुरा) नामक नगर की स्थापना की तथा उसे अपनी राजधानी बनाया। धीरे–धीरे शक्तिशाली मगध साम्राज्य ने कोशल, वैशाली, लिच्छवि, अवन्ति, कौशाम्बी को मगध साम्राज्य मे सम्मिलित कर लिया (शर्मा, 1995, पृ० 109)।

उक्त षोडष महाजनपदो (चित्र 3.2) के अतिरिक्त छोटे–छोटे कई और जनपद थे। तत्कालीन भारत में वैचारिक नवोत्थान के साथ राष्ट्रीय सगठन के आधार भी स्थिर एव सुदृढ हो चुके थे।

बुद्धकालीन जनपदो मे वत्स, अवन्ति, कोशल और मगध सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न जनपद थे। बुद्ध पूर्व के छोटे–छोटे जनपदो मे अपने प्रभुत्व विस्तार के लिए निरन्तर सघर्ष होते रहते थे। इस प्रकार कुछ क्षीण होते गए और कुछ की शक्ति निरन्तर बढती गयी। अनेक क्षीण शक्ति जनपदो को आत्मसात कर भारतीय इतिहास मे प्रसिद्ध मगध साम्राज्य का उदय हुआ। महात्मा बुद्ध के समय मगध पर हर्यक वश के बिम्बसार का शासन था। हर्यक वश के पश्चात मगध साम्राज्य पर क्रमश. शिशुनाग वश एव नन्द वश का शासन हुआ। ये सभी शासक मगध साम्राज्य के विस्तार के प्रति निरन्तर सचेष्ट रहे और एक हद तक इन्हे सफलता भी मिलती रही। जिस समय उत्तरी–पूर्वी भारत मे छोटे–छोटे राज्यो की एक सूत्र मे सगठित होने (साम्राज्य विस्तार) की प्रक्रिया प्रारम्भ थी, उसी समय पश्चिमोत्तर भारत

N
भारत
सोलह महाजनपद
600 ई. पू.
क म्बो ज
लाजपुर-हाटक
गा धा र
तक्षशिला
कु रु
इन्द्रप्रस्थ
पा चा ल
म त्स्य
अहिच्छत्र
श्रावस्ती
विराट नगर
मथुरा
को श ल
का शी
कुशीनगर
व ज्जि
मिथिला-वैशाली
वाराणसी
शू र से न
कौशाम्बी
व त्स
राजगृह
चम्पा
सुक्तिमती
अ व न्ति
चे दि
म ग ध
अ ग
उज्जैन
अ श्म क
पैठन
अ र ब
सा ग र
बं गा ल
की
खा ड़ी
100 0 100 200 300
किलोमीटर
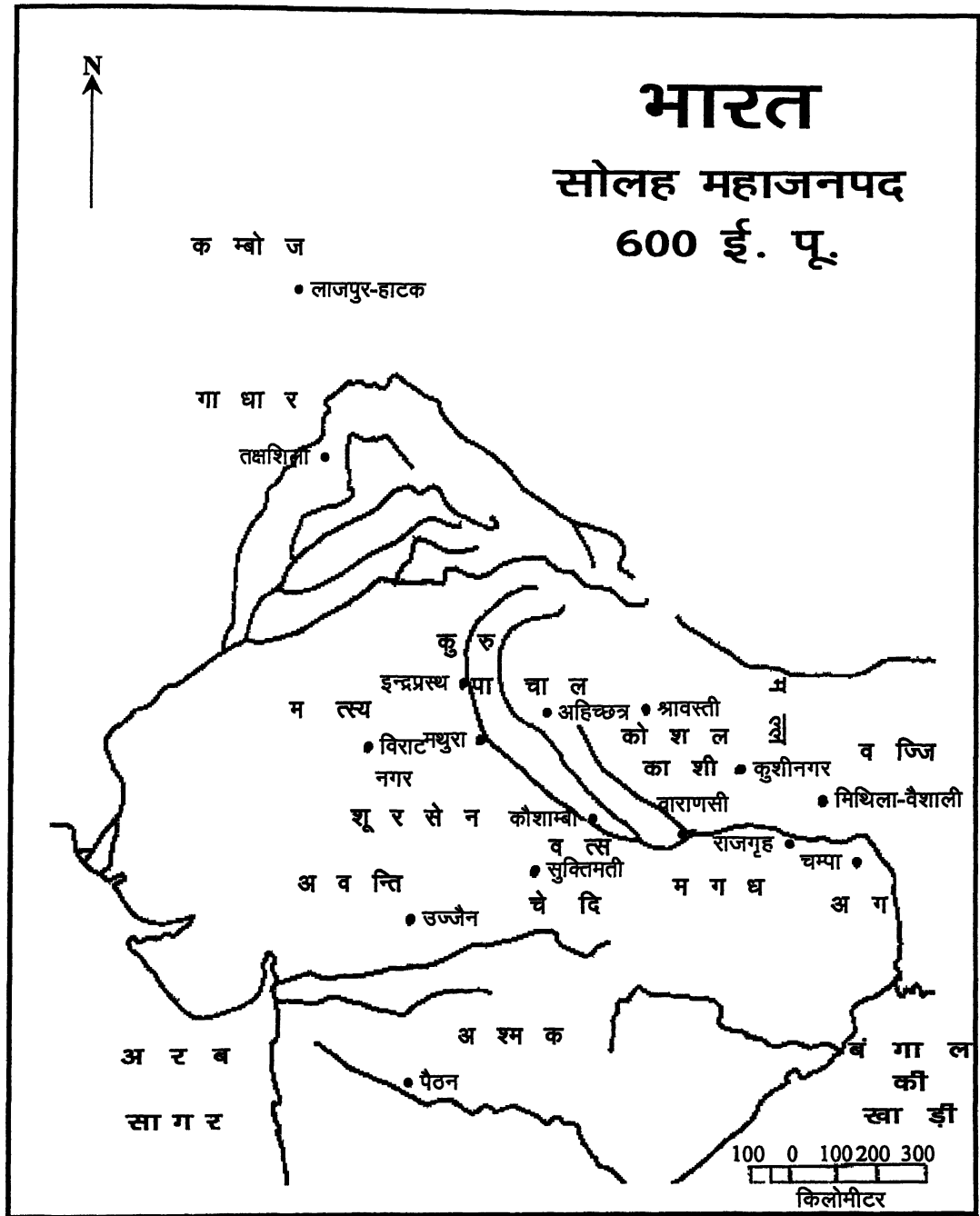
चित्र 3.2

राजनीतिक विश्रृखलता एव अस्थिरता का अद्वितीय रग मच बना हुआ था। गन्धार एव सिन्ध पर पहले से ही ईरानियो का शासन था। शेष पश्चिमोत्तर भारत छोटे–छोटे कई राज्यो– असकनी, नीसा, तक्षशिला, पुरू, सिवोई, मोलई, क्षुद्रक, अभिसार तथा अम्बण्ठ आदि मे बटा हुआ था और उनमे परस्पर एकता की जगह ईर्ष्या व द्वेष का भाव उमड रहा था। पश्चिमोत्तर भारत की ऐसी ही पृष्ठभूमि मे सिकन्दर का आक्रमण हुआ और कुछ ही समय मे उसने गन्धार, सिन्धु सहित पश्चिमोत्तर प्रदेश (पजाब) पर अपना अधिकार कर लिया और यूनानी गर्वनरो को शासक नियुक्त कर 325 ईसा पूर्व मे भारत से वापस चला गया। इस प्रकार उस समय पजाब और सिन्ध मे यूनानी गर्वनरो का शासन था और उत्तर भारत का अधिकाश भाग अर्थात् मगध साम्राज्य नन्दवश के शासन मे था (सिह, सिह एव पटेल, 1998, पृ० 6)। सिकन्दर के आक्रमण के समय पजाब और सिन्ध मे स्थित 28 राज्यो का उल्लेख किया जाता है जिनके पास अपनी निजी सेना थी और युद्ध एव सन्धि के अधिकार सुरक्षित थे, ये राज्य थे– आस्पेसियन, अस्सकेनोई, गुरियन, नीसा, प्यूकेलोटिस, तक्षशिला, अर्सवीज, अमिसार, पोरस, ग्लैनिकाई, गन्डरिस, आट्रैस्ताई, कैथेओई, सोफाइटीज, फीगियस, शिवि, अगलसोई, आक्सीड्रेकाई, मल्लोई, अवस्टनोई, काथोई, ओसाडिओई, सोड्राई, मस्सनोई, मौसिकेनोस, आक्सीकेनोस, सम्बोस तथा पटेलीन (गुप्त, 2000, पृ० 36)।

राजनीतिक एकीकरण का जो प्रयास हर्यक वशीय नरेशो (बिम्बसार–अजातशत्रु) ने छठी शती ईसा पूर्व मे प्रारम्भ किया उसे मौर्य वशीय सम्राटो ने पूरा किया। इसीलिए मौर्य युग को राजनीतिक एकता का युग कहते हैं। प्रथम मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने गन्धार, सिन्धु, पजाब से यूनानी गर्वनरो को अपदस्थ कर विदेशी शासन का अन्त किया और नन्द वश को समाप्त कर मगध साम्राज्य को अपने अधिकार मे ले लिया। मौर्यकाल में भारतवर्ष का अधिकाश भाग एक सुदृढ राजनीतिक सूत्र मे बॅध गया और हमारा इतिहास सही अर्थों मे भारतीय हो गया। 321 ईसा पूर्व मे मगध साम्राज्य की गद्दी पर प्रथम मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त आसीन हुआ और 297 ईसा पूर्व तक शासन करता हुआ उत्तर मे हिमालय से दक्षिण में नर्मदा–तापी तक तथा पूर्व मे बगाल से उत्तर–पश्चिम मे काबुल, गन्धार और हिरात तक के विशाल भूभाग को राजनीतिक सगठन सूत्र मे आबद्ध किया (चित्र 3.3)। चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद उसका पुत्र बिन्दुसार (298 ईसा पूर्व से 273 ईसा पूर्व) सम्राट हुआ। जिसने तापी के
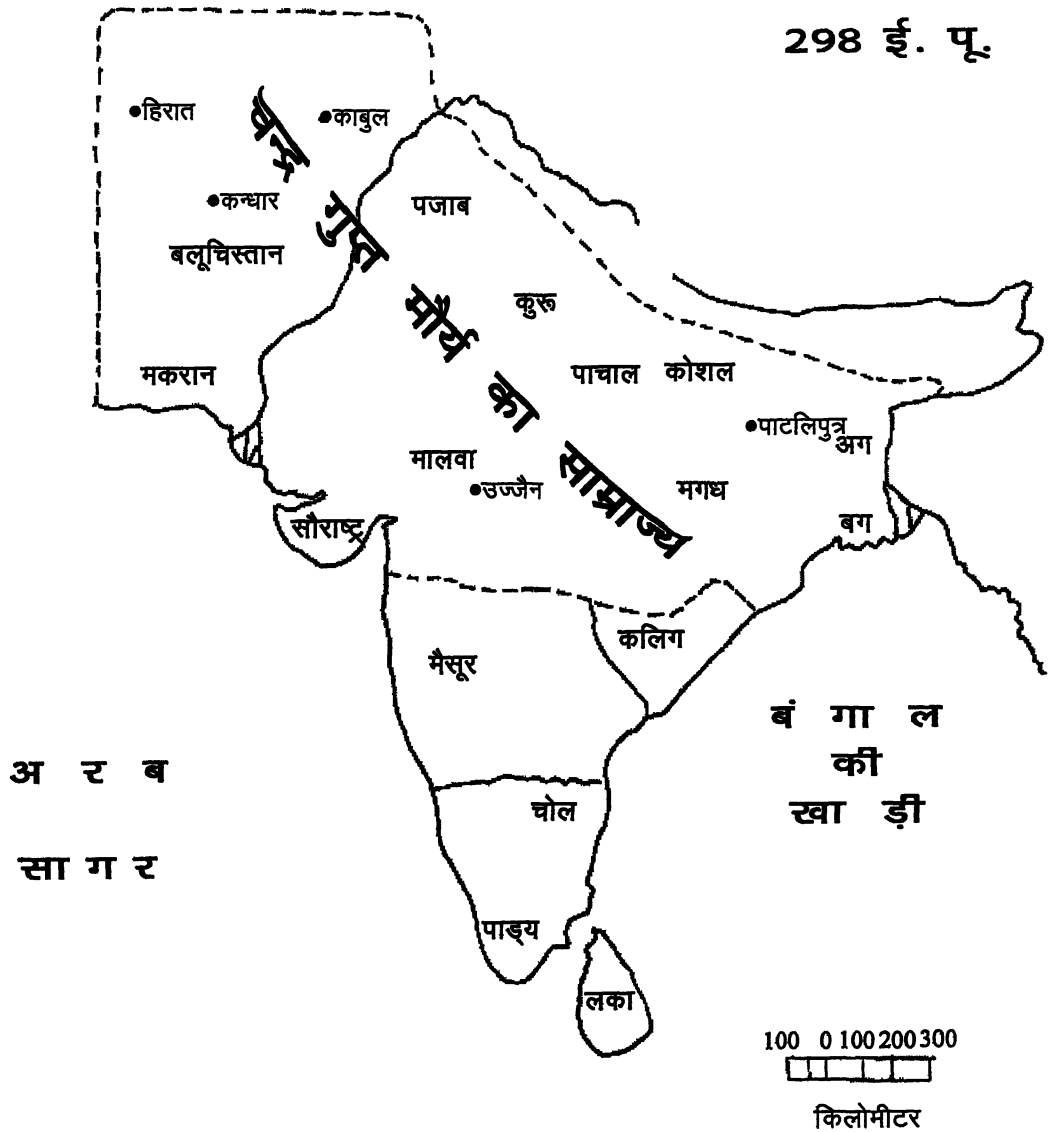
भारत
चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य
298 ई. पू.
N
हिरात
काबुल
कन्धार
बलूचिस्तान
मकरान
पजाब
कुरू
पाचाल
कोशल
पाटलिपुत्र
अग
मालवा
उज्जैन
मगध
सौराष्ट्र
बग
कलिग
मैसूर
चोल
पाड्य
लका
चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य
अ र ब सा ग र
बं गा ल की खा ड़ी
100 0 100 200 300
किलोमीटर
हि न्द म हा सा ग र

चित्र 3.3

दक्षिण मे मैसूर तक का भाग जीतकर अपने पिता चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य को विस्तार दिया। उत्तर मे कश्मीर, महानदी–कृष्ण के बीच कलिग तथा दक्षिण मे चोल और पाण्ड्य राज्य अब तक मौर्य शासन के बाहर थे (सिह, सिह एव पटेल, 1998, पृ० 7)। बिन्दुसार के पश्चात् उसका यशस्वी पुत्र अशोक (273 ईसा पूर्व से 232 ईसा पूर्व) मगध का सम्राट हुआ। सम्राट अशोक के समय मे भारत का सर्वप्रथम विशाल राजनीतिक मानचित्र बना जिसके लिए उसकी नीतियाँ उत्तरदायी थी। इतिहास मे अशोक जैसी धर्मनीति पर आश्रित राजनीति का दूसरा प्रमाण नही मिलता है। अशोक के राज्य की सीमाएँ पश्चिम मे अरब सागर और पश्चिमोत्तर मे हिन्दुकुश पर्वतो तक विस्तृत थीं और वर्तमान अफगानिस्तान का अधिकाश भाग उसके साम्राज्य का अग था। उत्तर मे उसकी सीमाये कश्मीर मे हिमालय पर्वतो के पाद प्रदेश व नेपाल मे ललितापटन तक विस्तृत थी। अशोक के राज्य की दक्षिणी सीमा लगभग 13° उत्तरी अक्षाश द्वारा निर्धारित होती थी। पूर्व मे बगाल व कलिग राज्य उसके स्वामित्व को स्वीकार करते थे। केवल बगाल के पूर्व का देश व सुदूर दक्षिण के क्षेत्र स्वतन्त्र थे अन्यथा सम्पूर्ण भारत मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत था (सिह एव श्रीवास्तव, 1973, पृ० 618–619)। इस प्रकार स्पष्ट है कि अशोक के साम्राज्य की सीमाये उत्तर मे हिमालय पर्वत से दक्षिण मे कलिग, आन्ध्र, मैसूर, हैदराबाद और महाराष्ट्र तक, पूर्व मे बगाल और पश्चिम मे हिरात, काबुल और गन्धार तक फैली थी (सिह, सिह एव पटेल, 1998, पृ० 7)। अशोक ने विशाल मौर्य साम्राज्य को प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से 5 प्रान्तो, जिन्हे चक्र भी कहा जाता था, मे बाट रखा था। ये प्रान्त थे– उत्तरापथ (राजधानी तक्षशिला), अवन्ति राष्ट्र (राजधानी उज्जयिनी) कलिग (राजधानी तोसली), दक्षिणापथ (राजधानी सुवर्णगिरि) तथा प्राशी या पूर्वी प्रदेश (राजधानी पाटलिपुत्र)। अशोक के समय प्रान्त सबसे बडी प्रशासनिक इकाई के रूप मे प्रचलित थे। इन प्रान्तो का प्रशासन राजपरिवार के ही किसी व्यक्ति द्वारा होता था, जिन्हे अशोक के अभिलेखो मे कुमार या आर्यपुत्र कहा गया है। प्रान्तो को 'आहार' या 'विषय' मे बॉटा गया था, जो विषयपति के अधीन होते थे। जिले का प्रशासन 'स्थानिक' के हाथो मे रहता था जो समाहर्ता के नीचे काम करता था। स्थानिक के अधीन 'गोप' होते थे, जिनके अधिकार क्षेत्र मे गाव होते थे। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' थी। ग्राम के मुखिया को ग्रामिक कहा जाता था। मेगस्थनीज के अनुसार नगर का प्रशासन तीस सदस्यो का एक

मण्डल करता था। ये मण्डल 6 समितियो मे विभाजित थे, प्रत्येक समिति मे 5 सदस्य होते थे (घोष, 2000, पृ० 39)।

मौर्य काल मे सत्ता का केन्द्रीयकरण अवश्य हुआ था, परन्तु राजा अपने अधिकारो के प्रति जरा भी बर्बर नहीं होता था। मौर्यकाल मे गणराज्यो (लोकतन्त्र) का ह्रास होने लगा था, जिसके परिणामस्वरूप राजतन्त्रात्मक व्यवस्था की स्थिति काफी मजबूत हो रही थी। राजा के पास समस्त अधिकार व शक्तियॉ होती थी। राज्य के सप्ताग सिद्धान्त– राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड एव मित्र की सर्वप्रथम व्याख्या कौटिल्य ने की है (शर्मा, 1998, पृ० 127–144)।

232 ईसा पूर्व अशोक की मृत्यु के पश्चात भारत का साम्राज्य धीरे–धीरे छिन्न–भिन्न होने लगा। अनेक छोटे–छोटे राज्य स्थापित होने लगे, फलत· भारत की राजनीतिक एकता क्षीण होने लगी। सातवाहनो के नेतृत्व मे आन्ध्र प्रदेश ने अपनी स्वाधीनता घोषित की। मालवा व सिन्ध भी अधिक समय तक मौर्य साम्राज्य के अग न रह सके, कलिग भी स्वतन्त्र हो गया और अशोक के बाद उत्तर भारत मे ऐसी कोई शक्ति न रह सकी जो शासक व शासित के बीच की दूरी को कम करके शासन की श्रृखलाये सुदृढ बनाए रख सकती। आपसी द्वेष और कलह के फलस्वरूप अनेक छोटी–छोटी इकाइयॉ सारे देश मे बन गईं। फलस्वरूप, भारत पुन विदेशी आक्रमणकारियो का लक्ष्य बना। इनमें शकों का आक्रमण महत्वपूर्ण था जो बिलोचिस्तान मे बोलन दर्रे से भारत आये। कुछ ही समय बाद शक लोग काठियावाड, सिन्ध तथा मालवा आदि मे फैल गये (सिह एव श्रीवास्तव, 1973, पृ० 619)। शकों ने भारत पर अपना अधिकार करने के उपरान्त भारत के साम्राज्य को प्रान्तो में विभक्त किया। एक प्रान्त का शासक 'क्षत्रप' कहलाता था। यह शब्द ईरान के जथ्रपावन (प्रान्तीय शासक) से लिया गया है। इस प्रकार शको के चार मुख्य क्षत्रप थे, प्रथम तक्षशिला का क्षत्रप, द्वितीय मथुरा का क्षत्रप, तृतीय महाराष्ट्र का क्षत्रप तथा चतुर्थ उज्जैन का पश्चिमी क्षत्रप। कालान्तर मे पल्लवो ने पजाब मे शक साम्राज्य का अन्त किया, कुषाणो ने मथुरा में शक क्षत्रप पर विजय प्राप्त कर उसका विनाश किया, सातवाहन राज्य महाराष्ट्र के शक क्षत्रप से लडाई होती रही। अन्त में गौतमीपुत्र शतकर्णी ने इस शक क्षत्रप का नाश किया। प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

ने उज्जैन के शक क्षत्रप का अन्त कर हमेशा के लिए शक साम्राज्य का अन्त कर दिया (थपलियाल, 2000, पृ० 16)।

यूनानियो और शको के पश्चात ईसा की प्रथम शताब्दी मे कुषाणो का आक्रमण हुआ। उत्तर–पश्चिम भारत के एक विशाल क्षेत्र–कश्मीर, पजाब, उत्तर प्रदेश तथा पूर्व मे पाटलिपुत्र तक, पर कुषाणो का साम्राज्य स्थापित हो गया (चित्र 3 4)। कनिष्क कुषाण वश का महान शासक था। उसने चीन पर विजय प्राप्त की, मध्य एशिया के कुछ क्षेत्र (यारकन्द, काशगर, खोतान) कनिष्क के अधिकार मे आ जाने से यह विशाल साम्राज्य गगा, सिन्धु एव ऑक्सस की घाटियो तक फैल गया था। कनिष्क का यह साम्राज्य पूर्व मे चीन, पश्चिम मे पार्थियन एव रोम साम्राज्य के मध्य मे स्थित था। चीन से व्यापार करने के लिए रोम को कुषाण शासक कनिष्क से मधुर सम्बन्धों की स्थापना करनी पडी। यह व्यापार प्रसिद्ध 'सिल्क मार्ग' से सम्पन्न होता था (गुप्त, 2000, पृ० 42)। दक्कन तथा मध्य भारत पर सातवाहन राज्य था जिसके बाद 250 ई० मे वाकाटक साम्राज्य स्थापित हुआ, जिसमे गुजरात व काठियावाड भी सम्मिलित हो गया। कलिग अर्थात् उडीसा मे खारवेल तथा कृष्णा नदी के दक्षिण पल्लव राज्य स्थापित हुआ। पल्लव के दक्षिण पाड्य, चोल तथा चेर राज्य पहले (306 ईसा पूर्व) से ही विद्यमान थे। महाकोशल में भी राजवश की नीव डाली गयी। इसी बीच महानदी और गोदावरी के बीच बहुत से छोटे–छोटे राज्यो का उदय हुआ (सिह, सिंह एव पटेल, 1998, पृ० 7)। उत्तरी भारत मे कुषाण साम्राज्य का भी पतन (दूसरी शताब्दी) होने लगा जिससे अनेक गणराज्यो का उदय हुआ जैसे पजाब मे यौधेय, सतलज और व्यास की ऊपरी ओर कुनिन्द गणराज्य, यौधेय गणराज्य के दक्षिण–पश्चिम की ओर आर्जुनायन गणराज्य, रावी तथा चिनाव नदियो के बीच मद्र गणराज्य। कुषाणो की शक्ति को नष्ट करने के लिए यौधेयों, कुनिन्दो तथा आर्जुनायनों ने मिलकर एक गणराज्य बना लिया। मालवा गणराज्य ने भी अपने को स्वतन्त्र कर लिया। मध्य भारत तथा राजस्थान के अन्य अनेक राज्य भी स्वतन्त्र हो गये थे। इनके अलावा उत्तर प्रदेश, बिहार तथा बुन्देलखण्ड आदि से विदेशियो को भगाने वाला भारशिव राजवश था। भारशिव राजवंश का प्रथम केन्द्र पद्मावती (ग्वालियर) था। यहॉ अपनी जड़ मजबूत बनाकर इन्होने कौशाम्बी से मथुरा तक का सारा प्रदेश धीरे–धीरे अपने अधीन कर लिया। मथुरा से अपना विस्तार इन्होने पूर्व की ओर किया और वर्तमान मिर्जापुर जिले के

भारत
कुषाण साम्राज्य
N
बैक्ट्रिया
काशगर
यारकन्द
खेतान
गन्धार
कश्मीर
पुरूषपुर
कनिष्कपुर
कनिष्क का राज्य
पार्थियन साम्राज्य
चीं न
सिन्ध
कोशल
मगध राज्य
काशी
पाटलीपुत्र
शक राज्य
ब र्मा
आन्ध्र
कलिंग
अ र ब सा ग र
बं गा ल की खा ड़ी
चोल
चेर
पाण्ड्य
लंका
लक्षद्वीप (भारत)
आण्डमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
100 0 100 200 300
किलोमीटर
हि न्द म हा सा ग र
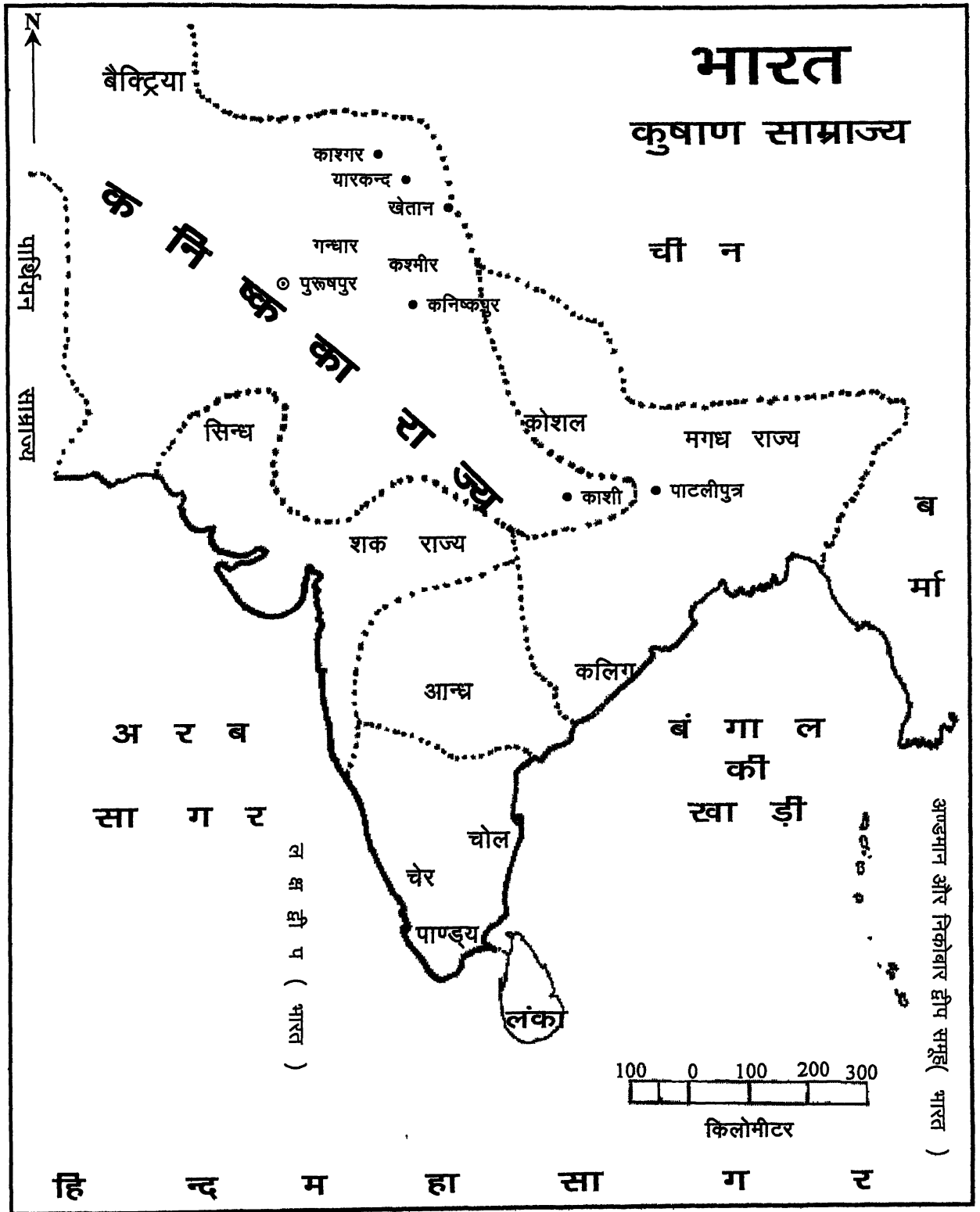
चित्र 3.4

कान्तिपुर (कान्तित) पर अधिकार कर अपनी राजधानी बनायी। धीरे–धीरे वाकाटकों ने पाटलिपुत्र तथा बाद मे अग राज्य की राजधानी चम्पा पर भी अधिकार कर लिया। परन्तु पाटलिपुत्र का शासन अधिक समय तक भारशिव वश के पास नही रह सका। इधर देश की अव्यवस्थित राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाकर लिच्छवि गणराज्य ने फिर से अपने को शक्तिशाली बना लिया। उसने मगध (पाटलिपुत्र) का राज्य जीत लिया। भारशिव राजवश के अलावा कोटा के निकट मौखरी राजवश और कौशाम्बी मे मध राजवश शक्तिशाली हो रहे थे (थपलियाल, 2000, पृ० 20)।

3.1.3 गुप्तकाल

ऐसी स्थिति मे गुप्त साम्राज्य का उदय हुआ। देश को विदेशी सत्ता से मुक्त कराने तथा अपने को स्वतन्त्र बनाने की एक लहर सी आ गई थी। एक शक्तिशाली राज्य की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था, जो छोटे–छोटे राज्यो का मार्गदर्शन कर एक राष्ट्र का निर्माण कर सके। इस प्रकार तीसरी शदी के अन्त तक भारत मे अनेक स्वतन्त्र राज्य हो गये थे और भारत की राजनीतिक स्थिति छिन्न–भिन्न हो चुकी थी, उन्हीं के खण्डहरो पर गुप्त साम्राज्य का अभ्युदय हुआ।

चौथी शदी के आरम्भ मे गुप्त साम्राज्य के अभ्युदय के पश्चात देश का एक बहुत बडा भाग पुन. एक राजसूत्र मे बॅध गया। चन्द्रगुप्त प्रथम (319–335 ई०) ने मगध, प्रयाग, कोशल, दक्षिणी बिहार और तिरहुत पर विजय प्राप्त की। चन्द्रगुप्त प्रथम के पश्चात उसका पुत्र समुद्रगुप्त (335–375 ई०) ने उत्तरी भारत मे नाग वशीय शासकों पर विजय प्राप्त की। अच्युतसेन अहिच्छत्र मे, नागसेन मथुरा मे और गणपति ग्वालियर राज्य के शासक थे। वह आर्यावर्त का प्रथम युद्ध था, जिसमे समुद्रगुप्त ने नागसघ को हराया। बाद मे वाकाटक नरेश रूद्रदेव को हराया। फिर पूर्वी और पश्चिमी देश के राजाओ नन्दिन, अच्युत, बालावर्मन, मतिल, नागदत्त तथा चन्द्रवर्मन के सम्मिलित सघ को हराया। यह आर्यावर्त का द्वितीय युद्ध था, जो कौशाम्बी मे लडा गया। उत्तरी भारत की विजय के उपरान्त समुद्रगुप्त ने विन्ध्य प्रदेश पर विजय प्राप्त की। यहॉ के कुल 18 राज्यो को समुद्रगुप्त ने परास्त कर अपने साम्राज्य मे सम्मिलित कर लिया। समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत को विजित किया, किन्तु उन

राज्यो को परास्त कर, उसने उनका राज्य उन्हे पुन वापस लौटा दिया। दक्षिण भारत के राज्य थे– कोशल, महाकान्तार, विष्टपुर, कोट्टार, एरण्ड पल्ल, कॉची, अवभुक्त, वेगी, पालक्क, देवराष्ट्र तथा कुस्थलपुर। सीमान्त प्रदेश के राज्यो, जो अभी तक स्वन्त्रत थे, ने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार नही की थी, परिणामस्वरूप समुद्रगुप्त ने एक विशाल सेना लेकर उन्हे अधीनता स्वीकार करने को विवश किया। ये राज्य थे समतत (गगा का मुहाना), डवाक (असम मे), कामरूप (असम का गुवाहटी क्षेत्र), नेपाल तथा कर्त्तपुर (कुमायूॅ, गढवाल तथा रूहेलखण्ड)। कुछ गणराज्य समुद्रगुप्त के राज्य के दक्षिण–पश्चिम और पश्चिमी सीमा पर अवस्थित थे। अत साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए समुद्रगुप्त ने इन गणराज्यो पर भी आक्रमण कर अपने राज्य मे मिला लिया। ये गणराज्य थे– मालव, आर्जुनायन, यौधेय, मद्र, आभीर, द्रार्जन सनकानीक, काक तथा खरपरिक (थपलियाल, 2000, पृ० 22)। इस प्रकार समुद्रगुप्त का साम्राज्य उत्तर मे नेपाल, हिमालय पर्वत तक, दक्षिण मे नर्मदा नदी तक, पूर्व मे असम तक तथा पश्चिम मे चम्बल नदी से लेकर चिनाब नदी तक फैला था। दक्षिण के राज्य उसके अधीन थे, किन्तु साम्राज्य मे उन्हे नहीं मिलाया गया। स्पष्ट है कि समुद्रगुप्त ने भारत मे पुन राजनीतिक एकता स्थापित की।

समुद्रगुप्त के साम्राज्य की अपेक्षा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (375–415 ई०) का साम्राज्य (चित्र 3 5) और अधिक विस्तृत हुआ। समुद्रगुप्त ने जिन गणराज्यो को विजित किया था, वे स्वतन्त्र हो गये थे। अत चन्द्रगुप्त ने उन सब गणराज्यो को पूर्ण रूप से परास्त किया। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने काठियावाड, मालवा, गुजरात के शक नरेश रूद्रसिह तृतीय को अवन्ति मे 395 ई० मे परास्त किया और इन इलाको को अपने राज्य मे मिला लिया। अवन्ति विजय के उपलक्ष्य में चन्द्रगुप्त ने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। समतत, दवाक, कामरूप (असम) के राजाओ ने एक सघ बनाकर गुप्त साम्राज्य से अलग होना चाहा, किन्तु चन्द्रगुप्त ने बगाल में इस संघ की सम्मिलित शक्ति को परास्त किया और अपने राज्य में मिला लिया। समुद्रगुप्त के साम्राज्य की सीमायें चिनाब नदी तक फैली थी। इसके पश्चिम में कुषाण साम्राज्य अवशेष था। अत चन्द्रगुप्त ने इस पश्चिमी प्रदेश पर आक्रमण कर समस्त पजाब को अपने राज्य मे मिला लिया। समुद्रगुप्त के पश्चात दक्षिण के राज्यों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी, अत चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने उन्हे परास्त कर अधीनता

N
भारत
गुप्त साम्राज्य
400 ई0
कश्मीर
मद्र
यौधेय
थानेसर
दिल्ली
अर्जुनायन
मथुरा
कन्नौज
सिन्ध
मालव
अयोध्या
वैशाली
कामरूप
गुर्जर
प्रयाग
मदसौर
काशी
पाटलिपुत्र
वल्लभी
साँची
उज्जैन
अजता
वाकाटक
मालकायन
अ र ब
सा ग र
बं गा ल
की
खा ड़ी
वेंगी
कादम्ब
पल्लव
काची
अडमान
और
निकोबार
लक्षद्वीप
पाड्य
द्वीप
समूह
हि न्द म हा सा ग र
200 0 200 400
किलोमीटर
भारत की वर्तमान सीमा
गुप्त साम्राज्य की सीमा
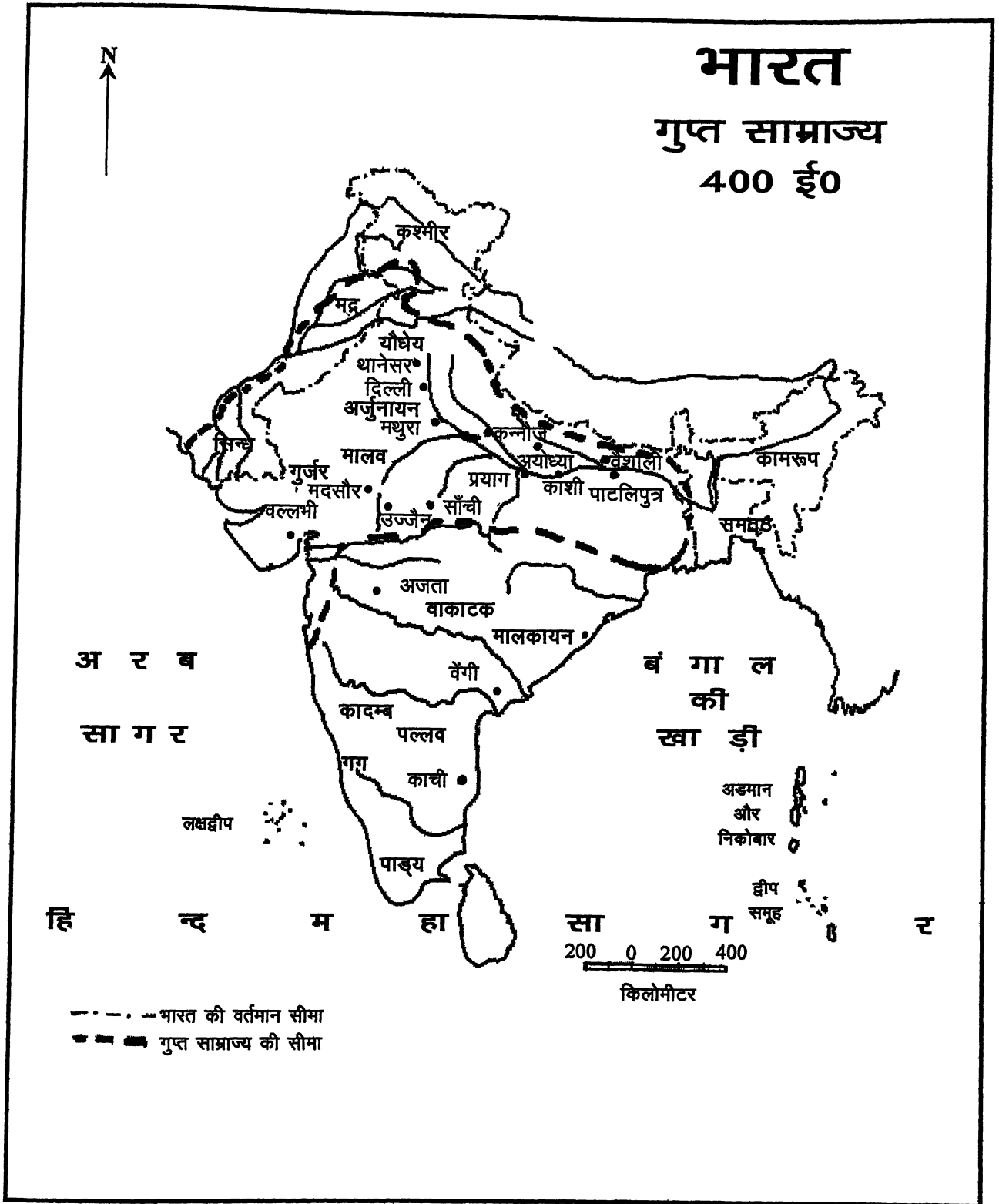
चित्र 3.5

स्वीकार करने तथा वार्षिक कर देने को बाध्य किया (पाण्डेय, 1994, पृ० 116–132)। इस प्रकार स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का साम्राज्य उत्तर मे हिमालय से लेकर दक्षिण मे नर्मदा नदी, सौराष्ट्र, काठियावाड, गुजरात तक तथा पश्चिम मे पजाब से लेकर पूर्व मे असम तक विस्तृत था। दक्षिण भारत के वाकाटक, महाकोशल, पल्लव, चोल, पाण्ड्य आदि राज्य भी गुप्त शासन के अधीन थे, परन्तु वे गुप्त साम्राज्य मे मिलाये नही गये थे।

पाँचवी शदी मे हूणो के प्रबल आक्रमण से गुप्त साम्राज्य क्षीण होने लगा। मध्य एशिया से हूणो ने पहले यू–ची जाति को निकाला। धीरे–धीरे हूणो का प्रसार पश्चिम-दक्षिण को होने लगा। इन्होने शक शक्ति का ह्रास किया। बैक्ट्रिया, फारस, अफगानिस्तान तथा सीस्तान को विजित करने के पश्चात गुप्तकाल मे भारत पर प्रथम बार हूणो ने कुमारगुप्त प्रथम पर आक्रमण किया। स्कन्दगुप्त ने हूणो को खदेड दिया। स्कन्दगुप्त (455 से 476 ई०) के बाद इतने बडे साम्राज्य को संभालने वाला कोई गुप्त शासक नही हुआ। पॉचवी शताब्दी के अन्त मे, हूणो ने पुन तोरमाण के नेतृत्व मे भारत पर आक्रमण किया तथा उन्होने गान्धार, कश्मीर तथा उत्तरापथ के प्रदेशो को जीत लिया। इस आक्रमण से गुप्त साम्राज्य को बडा धक्का लगा। तोरमाण के उत्तराधिकारी मिहिरकुल ने भी भारत पर आक्रमण किये। किन्तु मगध नरेश बालादित्य तथा मालवा नरेश यशोवर्मन ने अलग–अलग युद्धो मे मिहिरकुल को परास्त किया। मिहिरकुल की मृत्यु के पश्चात हूणो मे कोई प्रतिभाशाली सम्राट नही हुआ। उनकी शक्ति धीरे–धीरे क्षीण होने लगी और अन्त मे विलीन हो गई (थपलियाल, 2000, पृ० 23)।

छठी शताब्दी का अन्त होते–होते गुप्त साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया। भारत की राजनीतिक एकता एक बार फिर समाप्त हो गयी। सम्पूर्ण भारत छोटे–छोटे राज्यो मे बॅट गया। दिल्ली के पास थानेश्वर राज्य, मगध में गुप्त साम्राज्य का अवशेष, कन्नौज मे मौखरी वश, पश्चिमी भारत मे हूण राज्य, मालवा, बल्लभी, सिन्ध, बगाल, नर्मदा के दक्षिण चालुक्य, गोदावरी और कृष्णा के बीच आन्ध्र, कृष्णा के दक्षिण धनकटक, चोल, पल्लव आदि राज्य थे (सिह, सिंह एव पटेल, 1998, पृ० 7)।

7 वी शताब्दी के प्रारम्भ मे उत्तरी भारत मे थानेश्वर के राजकुमार हर्षवर्धन (606 से 647 ई०) का आविर्भाव राजनीतिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण रहा। बगाल के शासक शशाक ने कन्नौज के राजा गृहवर्धन का वध करके कन्नौज पर अधिकार कर लिया था। अत हर्ष ने सर्वप्रथम कन्नौज पर अधिकार किया। असम के शासक भास्कर वर्मा ने हर्ष की अधीनता स्वीकार कर ली। हर्षवर्धन ने मालवा नरेश देवगुप्त पर आक्रमण कर अपनी अधीनता स्वीकार करने पर विवश किया। हर्ष ने वल्लभी नरेश ध्रुवसेन को परास्त किया। किन्तु बाद मे हर्ष ने उससे मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिया। हर्षवर्धन ने शशाक को परास्त कर बगाल विजय की। हर्ष ने सिन्ध और गुजरात को भी परास्त कर अपने राज्य मे मिला लिया। इसके अतिरिक्त हर्ष ने नेपाल के शासक से मैत्री स्थापित की। हर्ष ने दक्षिण भारत पर भी आक्रमण किया, किन्तु उसे चालुक्य नरेश पुल्केशिन द्वितीय से हार का सामना करना पडा। हर्ष की दक्षिणी सीमा नर्मदा नदी थी। हर्षवर्धन का साम्राज्य बहुत व्यापक था। उसके साम्राज्य मे पूर्वी पजाब, सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश, बिहार, बगाल और उडीसा के क्षेत्र शामिल थे। हर्ष ने अपने शासन के अन्तिम दिनो मे गजाम के शासक पर आक्रमण कर गजाम को अपने राज्य मे सम्मिलित कर लिया। नेपाल और कश्मीर के राज्य हर्ष के साम्राज्य के बाहर थे। हर्ष शेष उत्तरी भारत का शासक था, उसे 'सकलोत्तरापथनाथ' कहा गया है (वाशम, 1997, पृ० 55–56)। गुप्तकाल मे जिस सामन्तवादी व्यवस्था का बीजारोपण हुआ था हर्ष ने उसे विकसित कर शासन व्यवस्था का अभिन्न अग बना दिया। हर्ष की मृत्यु के बाद इसी सामन्तीय व्यवस्था के कारण उत्तरी भारत मे अराजकता फैल गयी और बाद मे भारत पुन छोटी–छोटी अनेक प्रशासकीय इकाईयो (राज्यों) मे विभक्त हो गया (पाण्डेय, 1994, पृ० 335)।

3.1.4 राजपूतकाल

मुसलमानों के आक्रमण के समय राजपूत राज्य के अन्तर्गत सर्वप्रथम हम उत्तर भारत के राज्यो का उल्लेख करेगे– शाही वंश पजाब मे राज्य कर रहा था। महमूद गजनवी ने पजाब पर आक्रमण कर इस वंश का नाश किया। मौखरी वश कन्नौज मे राज्य कर रहा था। 8 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे यहाँ आयुधवंशीय राजाओं ने राज्य किया। चौहान वश अजमेर

की लडाई मे मुहम्मद गोरी ने हराया। कन्नौज मे मौखरी और आयुधवशीय राज्यो के बाद प्रतिहार वश ने राज्य किया। जब प्रतिहार राजपूतो का भी ह्रास हो गया, तब यहॉ राठौर राजपूतो ने अपनी प्रतिभा स्थापित की। सेन वश बगाल मे था। पाल वश का राज्य बिहार मे था। चन्देल वश का प्रादुर्भाव नवी शताब्दी मे बुन्देलखण्ड के निकट हुआ था। परमार वश का अभ्युदय 10वीं शदी मे मालवा में हुआ था। 1305 ई० मे अलाउद्दीन खिलजी ने परमार वश को समाप्त कर दिया। गुजरात मे चालुक्य (सोलकी) वश की स्थापना दक्षिण के चालुक्यो की एक शाखा द्वारा की गयी (थपलियाल, 2000, पृ० 28)।

इसी प्रकार दक्षिण भारत मे भी अनेक छोटे–छोटे राजपूत राज्य थे, जैसे चालुक्य वश, मालखण्ड का राष्ट्रकूट वश, देवगिरि का यादव वश, द्वारा समुद्र का होयसल वश, कॉची का पल्लव वश और सुदूर दक्षिण के चोल, चेर एव पाण्ड्य वश प्रसिद्ध हैं (घोष, 2000, पृ० 70)।

इसी प्रकार भारत मे अनेक छोटे–छोटे राज्य थे, जिन्हे मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा एक–एक करके परास्त किया जा सकता था। इन्हीं परिस्थितियों का लाभ उठाकर बगदाद (इराक) के खलीफा हज्जान ने अपने सेनापति मुहम्मद बिन कासिम को सिन्ध विजय के लिए 712 ई० मे भेजा। बहाना यह ढूँढा गया कि सिन्ध के शासक देवल ने अरब के कुछ जहाजो को लूट लिया है, जो कि माल लेकर श्रीलका से आ रहे थे। हज्जान ने देवल से हर्जाना मॉगा, न देने पर उसने देवल को दण्डित करने के लिये युद्ध की घोषणा कर दी। मुहम्मद बिन कासिम से युद्ध मे देवल की पराजय हुई और कासिम ने सिन्ध तथा बलोचिस्तान आदि क्षेत्रो पर आधिपत्य जमा लिया। कालान्तर मे सिन्ध के राज्यपाल जुनैद ने भारत के आन्तरिक भागो को जीतने के लिए सेनाए भेजी, परन्तु नागभट्ट (प्रतिहार), पुलकेशिन एव यशोवर्मन (चालुक्य) ने इन्हे वापस खदेड दिया। इस प्रकार अरबियो का शासन भारत मे सिन्ध प्रान्त तक सिमट कर रह गया। कालान्तर मे इन्हें सिन्ध का भी त्याग करना पड़ा।

अरबों के बाद तुर्कों ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सैन्य दृष्टि से निर्बल भारत पर आक्रमण किया। गजनी के शासक सुबुक्तगीन ने 986 ई० मे हिन्दूशाही राजवश के राजा जयपाल पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया। इस पराजय से

उत्तर–पश्चिमी सीमान्त भाग सुबुक्तगीन के अधिकार मे चला गया। इस प्रकार भारत मे तुर्क साम्राज्य की स्थापना का प्रथम श्रेय सुबुक्तगीन को मिला। सुबुक्तगीन के बाद उसका पुत्र महमूद गजनवी (997–1030 ई०) गजनी का शासक बना। सर्वप्रथम महमूद गजनवी ने पजाब को अपने साम्राज्य मे मिलाया। धीरे–धीरे उसने भटिण्डा, मुल्तान, भेर राज्य, तालावाडी, कॉगडा, थानेश्वर, लाहौर, कश्मीर, बुलन्दशहर, मथुरा, कन्नौज, कालिजर, ग्वालियर तथा खोखर जाति के राज्य पर आक्रमण कर अपने साम्राज्य की अभिवृद्धि की (थपलियाल, 2000, पृ० 29)।

शिहाबुद्दीन उर्फ मुईजुद्दीन मुहम्मद गोरी (1175–1206 ई०) ने भारत मे तुर्क राज्य की स्थापना की। गजनी और हिरात के मध्य स्थित छोटा पहाडी प्रदेश गोर पहले महमूद गजनवी के अधिकार मे था किन्तु बाद मे उसके उत्तराधिकारियो से गोर को मुहम्मद गोरी ने छीन लिया। मुहम्मद गोरी ने छोटे–छोटे राज्यो मे बॅटे और आपस मे युद्ध करने वाले इन राज्यो को अपने साम्राज्य का अग बना लिया। सर्वप्रथम उसने 1175 ई० मे मुल्तान विजय की। इसके बाद गोरी ने 1178 ई० मे गुजरात के अन्हिलवाड, 1180 ई० मे लाहौर एव सिन्ध, 1192 ई० मे अजमेर एव दिल्ली के शासक पृथ्वीराज चौहान को, 1194 ई० मे कन्नौज के शासक जयचन्द्र को पराजित किया। गोरी ने अपने गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत के विभिन्न प्रदेशो का प्रतिनिधि बनाया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1197 ई० मे गुजरात के राजा भीमदेव को परास्त किया। गोरी के सेनापति बिन बख्तियार ने बिहार और बगाल विजय की। 1202 ई० मे कालिजर पर विजय प्राप्त की (घोष, 2000, पृ० 95–97)।

3.2 मध्यकाल

गुलाम वंश (1206 ई० से 1290 ई०) से भारतीय इतिहास के मध्यकाल का प्रारम्भ माना जाता है। मुहम्मद गोरी के गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक ने गोरी के साथ झॉसी, मेरठ, दिल्ली, रणथम्भौर और कोल प्रदेश जीते। 1197 ई० मे नहरवाल तथा 1202 ई० मे कालिंजर को अपने अधिपत्य में कर लिया। इल्तुतमिश (1211–36 ई०) ने गजनी और पंजाब के शासक ताजुद्दीन एलदौज को 1215 ई० में, सिन्ध के शासक कुबाचा को 1227 ई० मे, 1225 ई० मे बगाल को, 1226 ई० मे रणथम्भौर को, 1231 ई० में ग्वालियर, 1232 ई० में मालव

एव भिलसा तथा 1233 ई० मे कालिजर एव उज्जैन को अपने अधीन कर लिया। नासिरूद्दीन महसूदशाह (1246–66 ई०) ने पजाब, सिध, कन्नौज, रणथम्भौर व चन्देरी को विजित किया। बलबन (1266–86 ई०) ने दोआब, कटेहर तथा बगाल के विद्रोहियों का दमन कर अपने अधीन किया।

गुलाम वश के पश्चात खिलजी वश (1290–1320 ई०) आया। अलाउद्दीन खिलजी (1296–1316 ई०) ने उत्तरी भारत की विजयो के अन्तर्गत गुजरात को अपने अधीन किया। दक्षिण भारत की विजयो के अन्तर्गत देवगिरि, तेलगाना राज्य की राजधानी वारगल, होयसल राज्य की राजधानी द्वारसमुद्र, पाण्ड्य राज्य की राजधानी मदुरा पर आक्रमण कर उनको विजित किया। अलाउद्दीन–खिलजी के शासन काल मे मगोल शासक दाऊद खॉ ने भारत पर अनेक आक्रमण किये।

खिलजी वश के बाद तुगलक वश (1320–1414 ई०) के शासक दिल्ली के सिंहासन पर पदारूढ हुए। पर देश के विभिन्न भागो के बीच एकता व एक–सूत्रता का अभाव पूरा न किया जा सका और भारत अनेक छोटी इकाइयों मे विभक्त रहा। इसी समय देश की उत्तरी–पश्चिमी सीमा पर मुगलो का दबाव बढ रहा था। गयासुद्दीन तुगलक ने मुगलो के खिलाफ अपनी सीमाए सुदृढ की और दक्षिण भारत में बेल्लोर एवं वारगल तक अपने साम्राज्य को विकसित किया। मुहम्मद बिन तुगलक के समय अफगान साम्राज्य पुन छोटे–छोटे भागो मे विभक्त हो गया। उसने दक्षिण भारत में अपना राज्य अधिक सुदृढ करने के लिए अपनी राजधानी दिल्ली को देवगिरि (दौलताबाद) मे स्थापित किया। कुछ समय मे विजयनगर, खानदेश, मालवा, गुजरात, जौनपुर, तेलगाना, गोडवाना, बिहार एव बगाल आदि स्वतन्त्र हो गये (सिह एव श्रीवास्तव, 1973, पृ० 621)। तैमूर लग के आक्रमण से तुगलक वश के अन्त होने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

3.2.1 मुगलकाल

चौदहवी एवं पन्द्रहवी शदी मे कभी–कभी यह भी स्थिति आयी कि अफगान सुल्तान नाममात्र के ही भारत के शासक रह गये और दिल्ली सल्तनत सिकुडकर दिल्ली शहर के आस–पास ही रह गयी, खासकर कुछ सैय्यद सुल्तानो के समय। 1398 ई० में

अफगानिस्तान से खैबर दर्रे से होता हुआ तैमूर लग ने भारत पर आक्रमण किया। तैमूर लग के दिल्ली पहुँचने पर दिल्ली का सुल्तान भय से गुजरात भाग गया। तैमूर लग ने अपने को दिल्ली का सुल्तान घोषित कर शीघ्र ही कश्मीर होता हुआ अफगानिस्तान वापस लौट गया। सिकन्दर लोदी ऐसा अन्तिम अफगान सुल्तान था जिसने समाप्त प्राय दिल्ली सल्तनत को जीवित करने का प्रयास किया और अफगान साम्राज्य की सीमाये पेशावर से दरभगा तक फैल गईं और लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारत अफगान साम्राज्य मे समाहित हो गया। इब्राहीम लोदी (चित्र 3 6) के समय देश की राजनीतिक एकता पुन विघटित हो गयी और अधिकाश अफगान नवाब आपस मे युद्धरत हो गये। इस अस्वस्थ राजनीनिक वातावरण का लाभ तैमूर के वशज बाबर ने उठाया। जिसने काबुल और गन्धार के राज्यो पर आधिपत्य जमाने के बाद दिल्ली पर आक्रमण किया। पजाब के शासक दौलत लोदी और चित्तौडगढ के राणा सॉगा ने बाबर के अभियान को यथाशक्ति असफल करने का प्रयास किया किन्तु 1526 ई० मे पानीपत के युद्ध मे बाबर ने इब्राहीम लोदी को परास्त कर अपने को दिल्ली का सुल्तान घोषित करके भारत मे मुगल साम्राज्य की की नींव डाली। बाबर ने आगरा एव राजस्थान सहित सम्पूर्ण उत्तर भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया (सिह एव श्रीवास्तव, 1973, पृ० 621–22)।

बाबर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र हुमायूँ (1530–40 एव 1555–56 ई०) मुगल साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। हुमायूँ ने अपनी इच्छानुसार अपने भाइयों को काबुल, कन्धार, सम्भल, मेवात एव अलवर की सूबेदारी दी थी। चूँकि हुमायूँ के भाई उसके विरोधी हो गये थे, इस कारण हुमायूँ की कम शक्ति का लाभ उठाकर अफगान शासक शेरशाह ने हुमायूँ पर आक्रमण कर दिया, 1540 ई० मे शेरशाह सूरी ने चौसा के युद्ध मे हुमायूँ को परास्त कर अपने को भारत का सम्राट घोषित कर दिया।

हुमायूँ ने फारस के शाह के साथ एक सन्धि की और उसकी सहायता से उसने 1555 ई० मे सिकन्दर सूर को परास्त कर दिल्ली को विजित किया। अकबर (1556 से 1605 ई०) ने मुगल राज्य की सीमाओं का विस्तार सुदूर दक्षिण तक किया। अकबर द्वारा जीते गये प्रदेश इस प्रकार थे– मालवा, चुनार, गोडवाना, गुजरात, बिहार, बगाल, काबुल, कश्मीर, सिन्ध, उडीसा, बलूचिस्तान, कन्धार, राजस्थान मे आमेर, मेडता, मेवाड, रणथम्भौर,

काबुल में बाबर का राज्य
N
भारत
राजनीतिक स्थिति
1525 ई.
कश्मीर
पंजाब
(दौलतखां लोदी)
मुलतान
पानीपत
दिल्ली
राजपूत संघ
(राणा सांगा)
सिंध
बिहार
मालवा
(महमूद द्वितीय)
गुजरात
खानदेश
गोंडवाना
बंगाल
बरार
अहमदनगर
उड़ीसा
गोलकुंडा
बीजापुर
गोवा
(पुर्तगीज)
विजयनगर
100 0 100 200 300
किलोमीटर
हि न्द म हा सा ग र
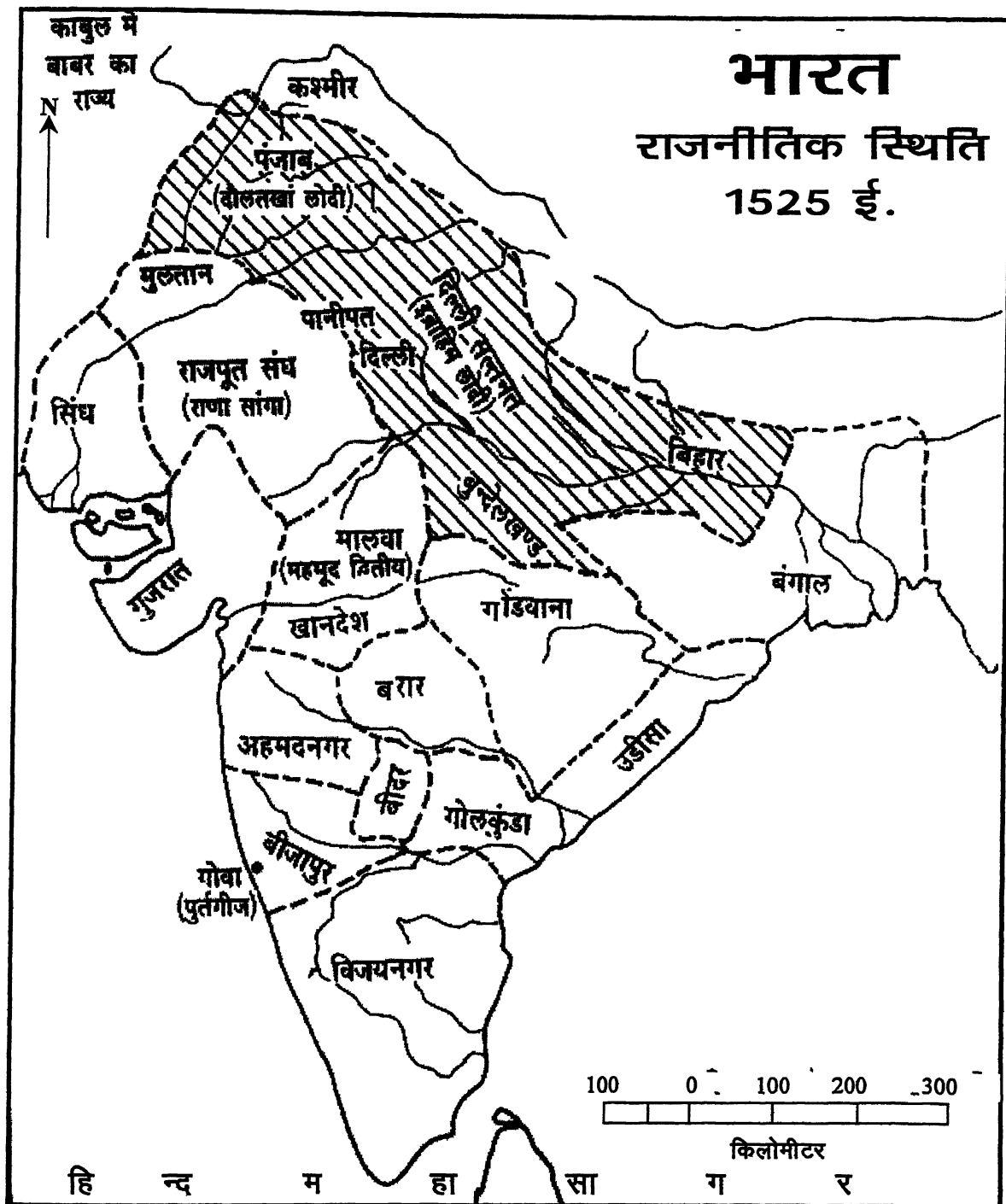
चित्र 3.6

कालिजर, मारवाड, जैसलमेर, बीकानेर, दक्षिण भारत मे खानदेश, दौलताबाद, अहमदनगर तथा असीरगढ (चित्र 3 7)। उत्तर भारत के सभी राजपूत शासको ने अकबर का स्वामित्व स्वीकार किया। दक्षिण भारत मे उसने गोदावरी नदी तक अपने राज्य का विस्तार किया। गुजरात, कच्छ, मध्य भारत और सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर अकबर का आधिपत्य था। पूर्व मे मुगल राज्य की सीमाये गगा के डेल्टा और पश्चिम मे सिन्धु घाटी व उत्तर–पश्चिम मे अफगानिस्तान तक विस्तृत थी। उसने अपने साम्राज्य को 18 प्रान्तो मे विभाजित किया। प्रत्येक प्रान्त का शासक कुछ हद तक स्वायत्त था, किन्तु वह केन्द्रीय शासन की कडी से आबद्ध था। अकबर के उत्तराधिकारी जहॉगीर एव शाहजहॉ, चूँकि कला प्रेमी थे। इसलिए उन्होने साम्राज्य विस्तार पर ध्यान नही दिया। औरगजेब (1658–1707 ई०) अन्तिम महान मुगल सम्राट था, जिसने मुगल साम्राज्य की सीमाओ का विकास चरम सीमा पर पहुँचा दिया। औरगजेब के दक्षिण अभियान बहुत ही सफल रहे तथा केरल एव तमिलनाडु के दक्षिणी भागो को छोडकर शेष समस्त प्रायद्वीपीय भारत मुगल राज्य मे समाहित था। उत्तर, पूर्व तथा पश्चिम मे राज्य की सीमाये अकबर के शासन काल के समान थी। यद्यपि औरगजेब के समय राज्य का विस्तार चरम सीमा पर था पर औरगजेब की नीति अकबर के समान दूरदर्शिता की नहीं थी। धर्म सम्बन्धी उसकी कठोरता ने हिन्दुओ को असन्तुष्ट कर दिया। औरगजेब के दक्षिण भारत के अभियान धन व जन हानि की दृष्टि से इतने मॅहगे साबित हुए कि मुगल साम्राज्य की जडें खोखली हो गईं और उसकी मृत्यु के बाद भारत पुन अनेक प्रशासकीय इकाइयो मे विभक्त हो गया।

3.3 आधुनिक काल

औरगजेब के कमजोर उत्तराधिकारी मुगल साम्राज्य को संगठित नहीं रख सके, मात्र 27 वर्ष मे 5 मुगल सम्राट हुए। इसका परिणाम यह हुआ–पंजाब मे सिखो का प्रभाव बढने लगा, सरहिन्द के निकट जाटो तथा दक्षिण एवं पश्चिम सूबो में मराठा राज्य स्थापित हो गया। मराठों के आक्रमण उत्तर भारत पर होने लगे। अली मुहम्मद खा ने रूहेलखण्ड, द्वाब और कुमायूॅ की पहाडियो मे अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। सआदत अली खां अवध में स्वतन्त्र हो गया। अलीवर्दी खा बंगाल मे स्वतन्त्र हो गया। निजाम–उल–मुल्क हैदराबाद में

भारत
अकबर का साम्राज्य
1605 ई.
N
फरगना
बुखारा
समरकन्द
ची न
ट्रासआक्सियाना
वलख
फारस
काबुल
श्रीनगर
अफगानिस्तान
कलानौर
कन्धार
A
ति ब्ब त
लाहौर
मुल्तान
पानीपत
दिल्ली
ने पा ल
अ क ब र का
फतेहपुर सीकरी
आगरा
सा म्रा ज्य
भूटान
अमरकोट
अजमेर
B
रोहतास गढ
सासाराम
सोनारगाव
सूरत
असीरगढ
गोडवाना
दौलताबाद
अहमदनगर
गोलकुडा
बं गा ल
की
खा ड़ी
अ र ब
सा ग र
बीजापुर
पौलिगार
स्वतत्र राज्य
A कागडा राज्य
B मेवाड-उदयपुर राज्य
100 0 100 200 300
किलोमीटर
हि न्द म हा सा ग र
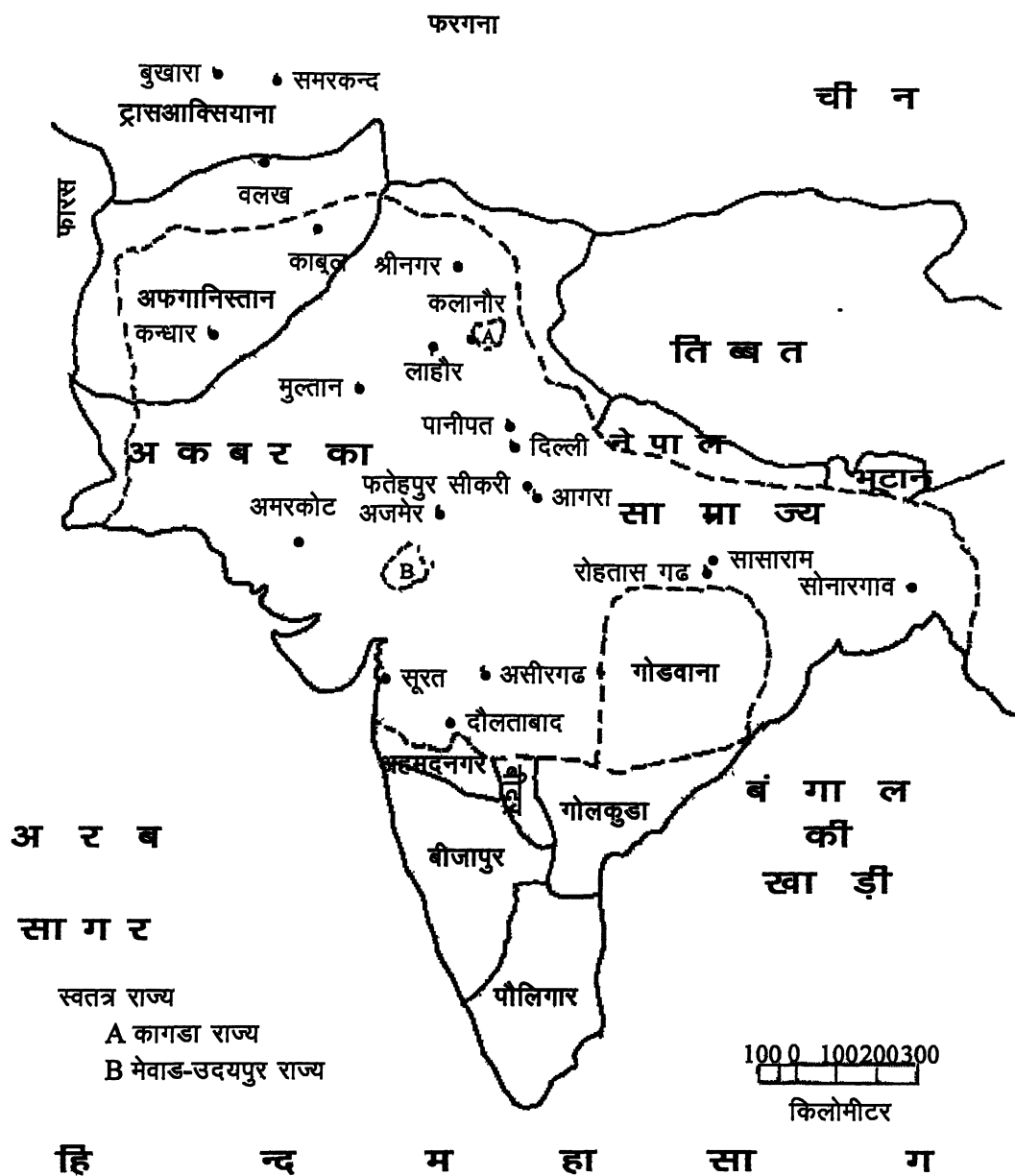
चित्र 3.7

स्वतन्त्र हो गया। इससे भारत की राजनीतिक एकता खण्डित हो गयी और यूरोपीय कम्पनियो को भारतीय देशी राज्यो मे हस्तक्षेप का मौका मिल गया।

सत्रहवी शताब्दी के प्रारम्भ तक भारत तथा यूरोप के बीच होने वाले व्यापार का अधिकाश भाग पुर्तगालियो के हाथ मे था किन्तु शीघ्र ही डेनिस, डच, अग्रेज तथा फ्रान्सीसी भी इस रगमच पर अवतरित हुए। डच लोगो ने अपने मुख्य केन्द्र नागापट्टनम, पुलीकट एव कोचीन मे बनाये। 1600 ई० मे अग्रेजो की मुख्य व्यापारिक इकाई ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई। अग्रेजो ने अपनी फैक्टरियॉ सूरत, मछलीपटनम एव कालीकट मे स्थापित की तथा 1639 ई० मे अपना पहला किला सेट जार्ज (चेन्नई) मे बनाया। फ्रान्सीसियो के मुख्य केन्द्र पाण्डिचेरी, चन्द्रनगर व मछलीपट्टनम थे जबकि डेनमार्क के व्यापारियो ने ट्रकेबार व हुगली तट पर श्रीरामपुर मे अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित किये।

सत्रहवीं शताब्दी में राजनीतिक दृष्टि से भारत मे दो तत्वो का प्रादुर्भाव हुआ। प्रथम सत्रहवी शताब्दी के अन्त मे मुगल साम्राज्य के प्रति विद्रोह की आग हिन्दू राजाओ एव कुछ असन्तुष्ट अफगान नवाबों के ह्रदय मे थी एव औरगजेब की मृत्यु के बाद यह प्रत्यक्ष रूप से सामने आ गयी। मुगल साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो चुका था (चित्र 3.8)। दक्षिण मे मराठा शासको का प्रभुत्व बढ रहा था, शिवाजी ने औरगजेब के खिलाफ जिस राज्य की स्थापना की थी, वह धीरे–धीरे बढ रहा था। देश मे राजनीतिक अस्थिरता बढ रही थी और हम भारतीय स्वय स्वार्थवश अपने अस्तित्व को समाप्त करने की शीघ्रता से तैयारी कर रहे थे। दूसरा महत्वपूर्ण तत्व यह था कि बाहर से आये हुये व्यापारी अपनी-अपनी शक्ति बढा रहे थे। पुर्तगालियो का प्रभुत्व हिन्द महासागर मे जो कि सोलहवीं शताब्दी मे अपने चरर्मोत्कर्ष पर था, धीरे–धीरे कम हो रहा था। डच एव फ्रान्सीसी अपना प्रभुत्व तेजी से बढा रहे थे। इन विदेशी व्यापारियो में आपस मे युद्ध होते रहते थे (सिंह एव श्रीवास्तव, 1973, पृ० 624)।

3.3.1 मराठा काल

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में भारत में तीन शक्तियो का प्राधान्य था– उत्तर तथा उत्तर–पश्चिम में पंजाब, सिन्ध, कश्मीर, सीमान्त प्रदेश व बलोचिस्तान में अफगान शक्ति का पुनरोत्थान हो रहा था, दक्षिण में निजाम की शक्ति का विकास हो रहा था और कलिग,

N
भारत
मुगल साम्राज्य
1739 ई.
करनाल
दिल्ली
अ व ध
राजपूताना
जोधपुर
भरतपुर
आगरा
बि हा र
सि न्ध
मु ग ल सा म्रा ज्य
पटना
मा ल वा
बुन्देलखण्ड
ब गा ल
गुजरात
सूरत
मराठा
राज्य
कटक
बम्बई
पूना
अ र ब
बं गा ल
की
खा ड़ी
उत्तरी सरकार
कोल्हापुर
हैदराबाद
सा ग र
अडमान
और
निकोबार
द्वीप समूह
मैसूर
मैसूर
जिजी
लक्षद्वीप
कर्नाटक
ट्रावनकोर
100 0 100 200 300
किलोमीटर
हि न्द म हा सा ग र
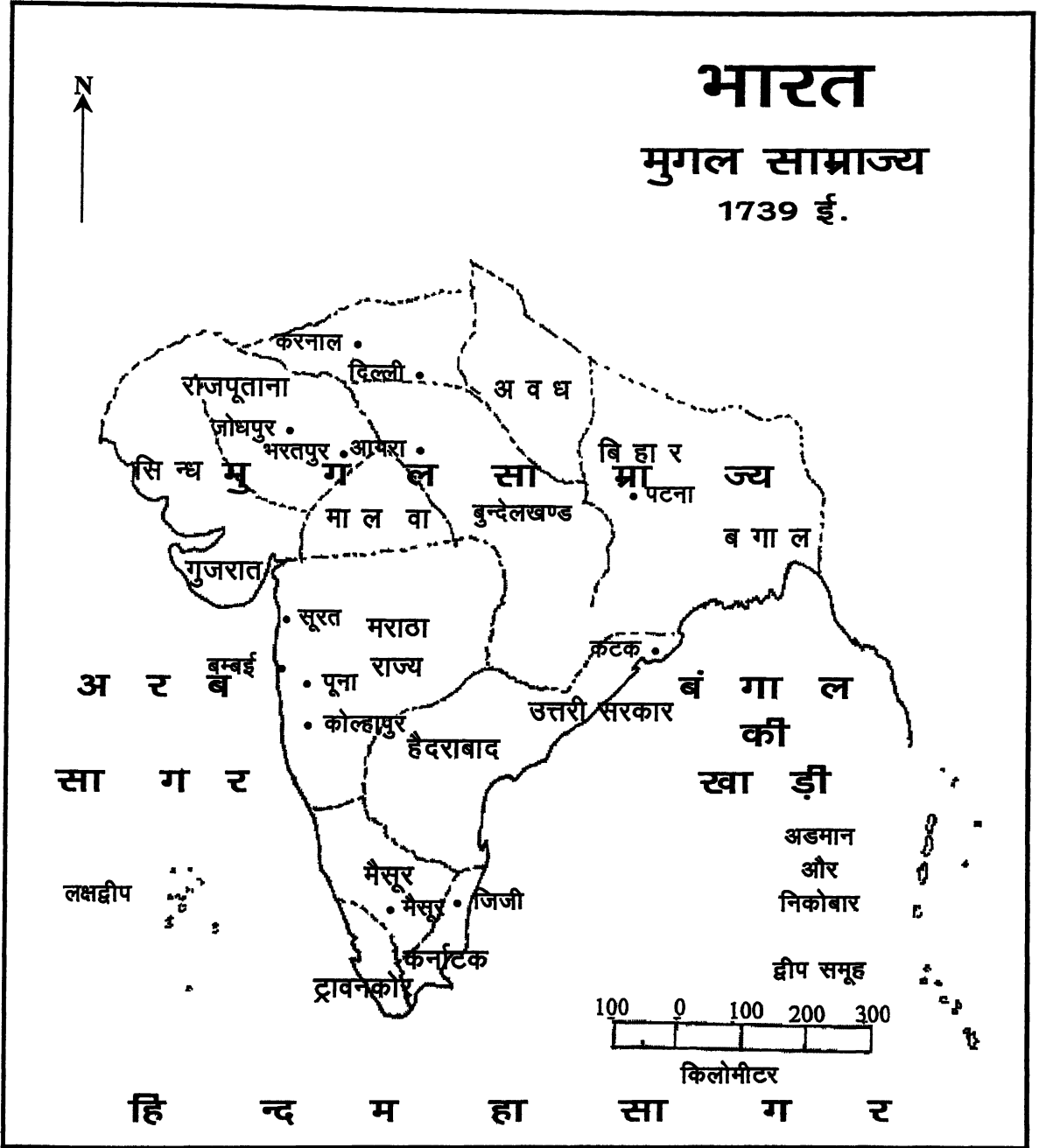
चित्र 3.8

तेलगाना, बरार आदि का अधिकाश भाग निजाम के राज्य का अग था। द्वितीय शक्ति के रूप मे मराठा थे जो अब पश्चिमी घाट के निकटस्थ प्रदेशो तक ही सीमित न थे वरन् पेशवा, भोसले, गायकवाड व होल्कर वश के मराठो के प्रयत्न के फलस्वरूप मराठा राज्य का विकास पश्चिमी समुद्र तट के कोकण प्रदेश से पूर्व मे महानदी के डेल्टा तक और दक्षिण मे तुगभद्रा व गोदावरी नदियो से लेकर उत्तर मे गगा, यमुना व चम्बल नदियो तक था। तीसरी मुख्य शक्ति फ्रान्सीसियो की थी जो देश के तटीय क्षेत्रो मे प्रायद्वीपीय भारत मे थी। बगाल मे चन्द्रनगर, पूर्वी तट पर मछलीपट्टनम् एव पाण्डिचेरी पर पहले ही फ्रान्सीसियो ने व्यापारिक कोठी स्थापित कर ली थी, शीघ्र ही दक्षिणी कर्नाटक के अर्काट तथा उत्तरी सरकार प्रदेश पर इन लोगो ने आधिपत्य जमा लिया। सन् 1751 ई० मे डूप्ले ने अपनी कूटनीति से हैदराबाद को अपने प्रत्यक्ष शासन का अग बना लिया। ठीक इसी समय अग्रेजो ने भारतीय विदेशी व्यापार के तीन मुख्य द्वारों कलकत्ता, बम्बई व मद्रास पर अपना अधिकार जमा लिया, अत व्यापार की दृष्टि से अंग्रेजो की स्थिति सुदृढ हो रही थी (सिह एव श्रीवास्तव, 1973, पृ० 625)।

सन् 1795 ई० में मराठा शक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी जब दक्षिण मे तुगभद्रा नदी, उत्तर मे गगा नदी, पश्चिम मे कच्छ व पूर्व मे महानदी के डेल्टा तक इनका प्रभुत्व फैला। शीघ्र ही मराठा सरदारो ने कुछ अर्द्धस्वतन्त्र राज्यो की स्थापना की जैसे बडौदा के गायकवाड, इन्दौर के होल्कर, नागपुर के भोंसले एव ग्वालियर के सिन्धिया। इन मराठा सरदारो के आपसी द्वन्दो ने मराठा शक्ति व एकता को नष्ट कर दिया। दूसरी तरफ कलकत्ता, बम्बई व मद्रास का महत्व दिन–प्रतिदिन बढता जा रहा था और न केवल आर्थिक दशा पर ही वरन् राजनीतिक स्थिति मे भी इन केन्द्रो का महत्व बढ रहा था। लार्ड क्लाइव की नीति व्यापार से हटकर राज्य ग्रहण करने की हुई। सर्वप्रथम सन् 1757 ई० में बंगाल मे 24 परगना का क्षेत्र अग्रेजो के अधिकार में आया। सन् 1760 ई० मे अग्रेजो ने बर्दमान, मिदनापुर एव चटगाँव जिलो पर अधिकार किया जबकि 1765 ई० मे सम्पूर्ण बगाल एव बिहार अग्रेजों के शासन के अन्तर्गत आ गया। क्लाइव के उत्तराधिकारी वारेन हेस्टिंग्स व कार्नवालिस आदि ने ब्रिटिश राज्य की सीमा का काफी विस्तार किया (सिह एवं श्रीवास्तव, 1973, पृ० 625)।

3.3.2 ब्रिटिश काल

छोटे–छोटे भारतीय राज्यो मे आपसी फूट से अग्रेजो को साम्राज्य विस्तार का अवसर मिला। परिणामस्वरूप एक सौ वर्ष से कम अवधि मे ही सम्पूर्ण भारत पर अग्रेजी कम्पनी का अधिकार हो गया। सन् 1849 ई० मे पजाब पर अधिकार होने के साथ ही सम्पूर्ण भारत पर कम्पनी शासन का प्रभुत्व स्थापित हो गया। लार्ड डलहौजी (1848–56 ई०) की हडप नीति के कारण भारतीयो मे असन्तोष फैल गया। परिणामस्वरूप प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम 1857 का अभ्युदय हुआ। लार्ड डलहौजी के समय देश अग्रेजी साम्राज्य एव अग्रेजो के सरक्षण मे देशी रियासतो मे विभक्त था (चित्र 3.9)।

प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम यद्यपि विफल रहा किन्तु इसके प्रभाव से सम्पूर्ण देश मे अभूतपूर्व एकता का विकास हुआ। सन् 1885 ई० मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना हुई जिसके माध्यम से भारतीयो ने स्वतन्त्रता आन्दोलन चलाया। राष्ट्र की जनता भी राष्ट्रीय आन्दोलन मे उतर पडी। भारत छोडो आन्दोलन बढता गया। जगह–जगह विभिन्न आन्दोलनो, विद्रोहो का ब्रिटिश सरकार ने दमन किया किन्तु वह उग्र से उग्रतर होता रहा। अब ब्रिटिश सरकार की समझ मे आ गया कि भारत को स्वतन्त्र करना ही पडेगा। भारत के वायसराय लार्ड वेवेल (1944–47 ई०) ने काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौता का बहुत प्रयास किया ताकि भारत को विभाजित किये बिना ही भारतीय नेताओ को सत्ता हस्तान्तरित की जा सके परन्तु मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना मुसलमानो के लिये पृथक मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान की मॉग पर डटे रहे। अन्तत भारत के अन्तिम वायसराय लार्ड माउन्ट बेटन मार्च, 1947 ई० मे भारत आये और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 पारित किया। इस अधिनियम के अनुसार 14 अगस्त, 1947 ई० की अर्द्ध रात्रि को आर्थिक, सामाजिक, नैतिक एव धार्मिक सभी दृष्टियो से भारत का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन हुआ और पाकिस्तान नामक एक नये देश ने जन्म लिया। मुस्लिम बहुल जनसख्या वाले क्षेत्रो पश्चिमी पंजाब, सिन्ध, बलूचिस्तान, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त तथा पूर्वी बगाल को मिलाकर पाकिस्तान (क्षेत्रफल 926969 वर्ग किमी०) बनाया गया। देश का शेष भाग 15 अगस्त, 1947 ई० को एक स्वतन्त्र राष्ट्र भारत (क्षेत्रफल 3287263 वर्ग किमी०) बना और इसके बाद पूर्ण स्वतन्त्र भारत से अग्रेज स्वदेश वापस लौट गये।

N
भारत
ब्रिटिश साम्राज्य
1856 ई.
मेरठ
दिल्ली
नेपाल
बिठूर
लखनऊ
अजमेर
ग्वालियर
प्रयाग
(इलाहाबाद)
पटना
इन्दौर
कलकत्ता
सूरत
दीव
दमन
बम्बई
अरब
सागर
कोल्हापुर
विशाखापटनम्
बंगाल
की
खाड़ी
मछलीपट्टम
गोवा
(पुर्तगाल)
मद्रास
मैसूर
माहे
(फ्रांस)
कालीकट
पाण्डिचेरी
(फ्रांस)
कोचीन
भारत में अंग्रेजी साम्राज्य
अंग्रेजो के संरक्षण में देशी रियासतें
100
0
100
200
300
किलोमीटर
लंका
हिन्द
महासागर
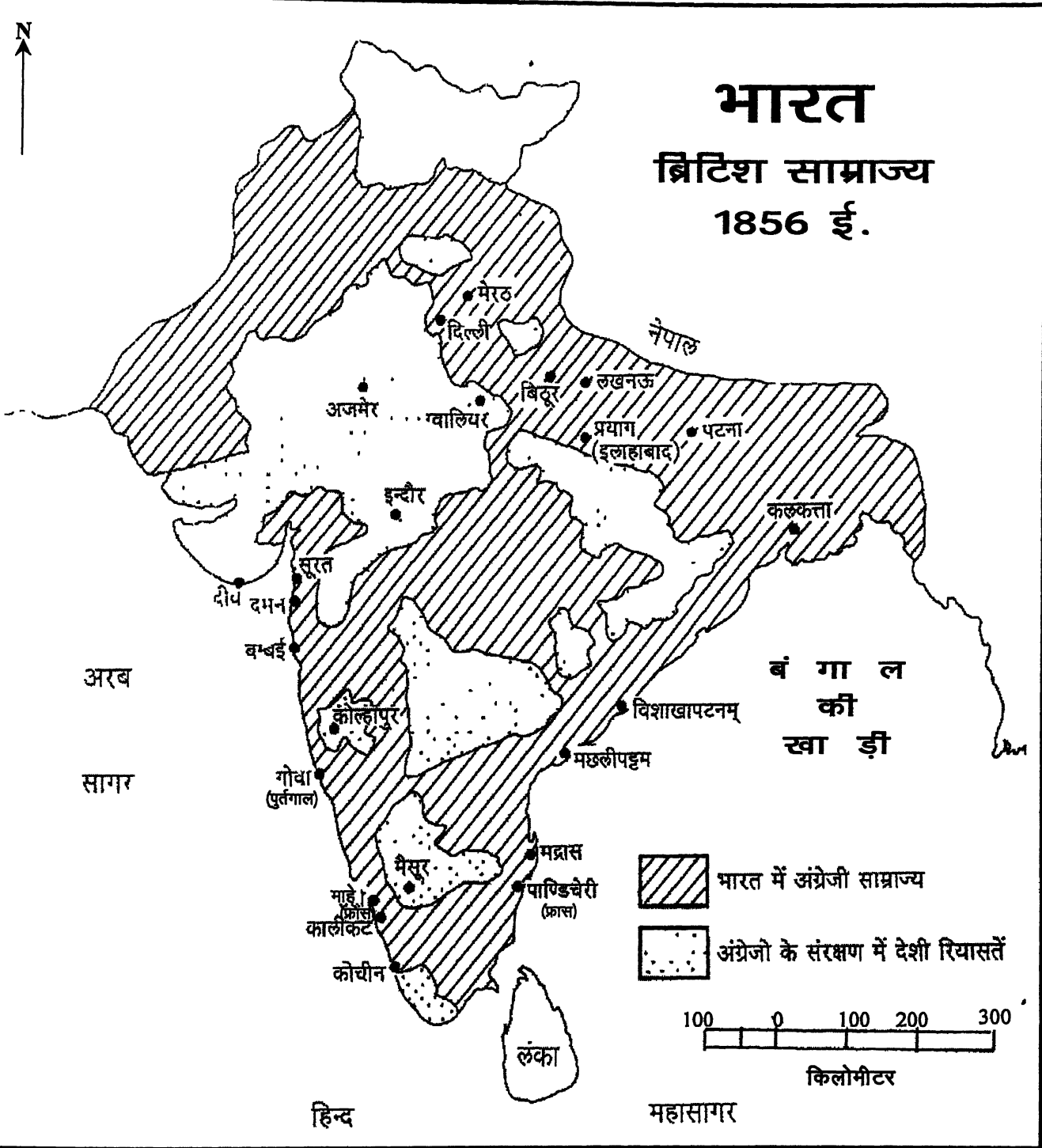
चित्र 3.9

3.3.3 स्वतंत्रता काल

विभाजन के समय देश मे 552 विभिन्न आकार के स्वतन्त्र देशी राज्य विद्यमान थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सरदार पटेल के प्रयासो से देश का पुनर्गठन किया गया। 216 राज्यो का विलय करके विभिन्न प्रान्त बनाये गये, 61 राज्यो को मिलाकर 7 केन्द्र शासित राज्य बने तथा 275 छोटे राज्यो को राजस्थान, मध्य प्रदेश, केरल आदि राज्यो मे मिलाया गया। स्वतन्त्र भारत के पुनर्गठन के प्रथम चरण मे देश मे चार वर्ग के राज्य थे –

(क) 'अ' वर्ग के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बगाल, असम, उडीसा, मध्य प्रदेश, मद्रास (वर्तमान नाम तमिलनाडु) तथा बम्बई (वर्तमान नाम महाराष्ट्र) – राज्यपाल द्वारा शासित 9 राज्य थे।

(ख) 'ब' वर्ग के अन्तर्गत पेप्सू, मध्य भारत (वर्तमान नाम मध्य प्रदेश) मैसूर (वर्तमान कर्नाटक), सौराष्ट्र, राजस्थान, हैदराबाद तथा ट्रावनकोर–कोचीन राज्यों पर राज्य प्रमुखो का शासन था।

(ग) 'स' वर्ग के अन्तर्गत अजमेर, कच्छ, कुर्ग, दिल्ली, बिलासपुर, भोपाल, त्रिपुरा, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर एव विन्ध्य प्रदेश राज्यो का शासन उप राज्यपाल द्वारा सचालित होता था।

(घ) 'द' वर्ग के अन्तर्गत अण्डमान व निकोबार द्वीपो का शासन केन्द्रीय सरकार द्वारा होता था।

3.3.4 राज्यों का पुनर्गठन

राज्य पुनर्गठन आयोग 1953 के गठन से पूर्व कुछ विद्वानो ने राज्यो के गठन हेतु सुझाव दिये, इनमें प्रमुख हैं–

सन् 1939 ई० मे सिकन्दर हयात खान ने भारत को सात प्रदेशो मे विभक्त किया (चित्र 3.10.A)। सन् 1930 ई० में साइमन कमीशन ने भारत को पॉच राज्यो में विभक्त करने की आवश्यकता बतायी। सन् 1941 ई० में भारत के जनगणना कमिश्नर डब्ल्यू० एम० डब्ल्यू०

भारत

राज्य पुनर्गठन योजना

N

सिकन्दर की योजना

7

3

2

1

6

5

4

(A)

ईद्स की योजना

सि न्धु

ग गा

डे ल्टा

द क्क न

(B)

मुखर्जी की योजना

उत्तर प्रदेश

पश्चिम प्रदेश

मध्य प्रदेश

पूर्व प्रदेश

दक्षिण प्रदेश

(C)

भथेजा की योजना

उत्तर भारत

मध्य भारत

पूर्व भारत

पश्चिम भारत

दक्षिण भारत
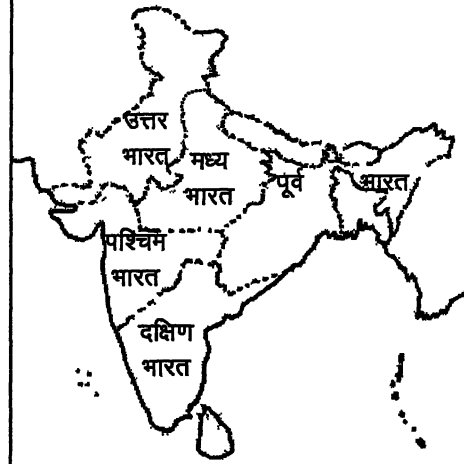
400 0 400 800 1200

किलोमीटर

(D)

चित्र 3.10

ईट्स (W M W Yeats) ने नदी बेसिन के आधार पर देश को 4 प्रान्तो में विभाजित करने की आवश्यकता बतायी। ये 4 प्रान्त है– प्रथम **सिन्धु बेसिन** जिसके अन्तर्गत वर्तमान पाकिस्तान, पजाब, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, राजस्थान, उत्तरी गुजरात, उत्तरी-पश्चिमी गुजरात, द्वितीय **गगा बेसिन** जिसके अन्तर्गत वर्तमान उत्तराचल, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उडीसा तथा मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ, पश्चिम बगाल के क्षेत्र। इसमे गगा तथा महानदी बेसिन के क्षेत्र आयेगे। तृतीय **डेल्टा प्रदेश** के अन्तर्गत ब्रह्मपुत्र बेसिन के क्षेत इसमे वर्तमान बाग्लादेश, उत्तरी-पूर्वी पश्चिम बगाल तथा पूर्वोत्तर भारत के राज्य सम्मिलित हैं। चतुर्थ **दकन प्रदेश** मे दकन बेसिन के सभी क्षेत्र सम्मिलित हैं। इसके अन्तर्गत वर्तमान दक्षिणी गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु तथा दक्षिणी मध्य प्रदेश राज्य आते हैं (चित्र 3.10 B)।

बम्बई विशविद्यालय मे राजनीति विज्ञान के प्रो० के० पी० मुकर्जी ने भारत को पॉच इकाइयो मे विभाजित किया। ये हैं– उत्तर प्रदेश, पश्चिम प्रदेश, मध्य प्रदेश, दक्षिण प्रदेश तथा पूर्व प्रदेश (चित्र 3.10.C)। इसी प्रकार प्रो० एच० आर० भथेजा ने भारत को पांच भागो मे विभक्त किया– उत्तर भारत, मध्य भारत, पूर्व भारत, पश्चिम भारत तथा दक्षिण भारत (चित्र 3 10.D) (श्रीवास्तव, 1979, पृ० 152–157)।

राज्य का उपरोक्त वर्गीकरण देश की सगठित एकता को व्यक्त नही करता था। भाषा, सस्कृति एव भौगोलिक तथ्यो के आधार पर राज्यो का पुनर्गठन आवश्यक समझा गया। दिसम्बर, 1953 ई० मे एफ० फजल अली की अध्यक्षता में राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना की गयी, जिसने भाषा के आधार पर राज्यो के पुनर्गठन की सिफारिश की। 1 नवम्बर, 1956 ई० को भारत सरकार ने आयोग के सुझाव पर देश मे 14 राज्य एव 6 केन्द्रशासित प्रदेशो के बनाने का निर्णय लिया (चित्र 3.11) (सारणी 3-I)।

भारत
पुनर्गठित
1 नवम्बर, 1956 ई.
N
जम्मू
और
कश्मीर
श्रीनगर
पा कि स्ता न
ची न
चण्डीगढ
पजाब
दिल्ली
उत्तर
प्रदेश
लखनऊ
ने पा ल
भूटान
असम
दिसपुर
वर्मा
राजस्थान
जयपुर
मणिपुर
इम्फाल
पटना
बिहार
मध्य
प्रदेश
भोपाल
पश्चिम
बगाल
आगरतला
त्रिपुरा
कलकत्ता
उड़ीसा
भुवनेश्वर
बम्बई
बम्बई
अ र ब
सा ग र
बं गा ल
की
खा ड़ी
हैदराबाद
आन्ध्र प्रदेश
गोवा
मैसूर
बगलौर
मद्रास
अण्डमान
और
निकोबार
लक्षद्वीप
मद्रास
केरल
तिरुवनन्तपुरम
100 0 100 200 300
किलोमीटर
द्वीप
समूह
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
प्रान्तीय सीमा
राज्य
सघीय राज्य
पुर्तगाली क्षेत्र
H
हिमाचल प्रदेश
हि न्द म हा सा ग र
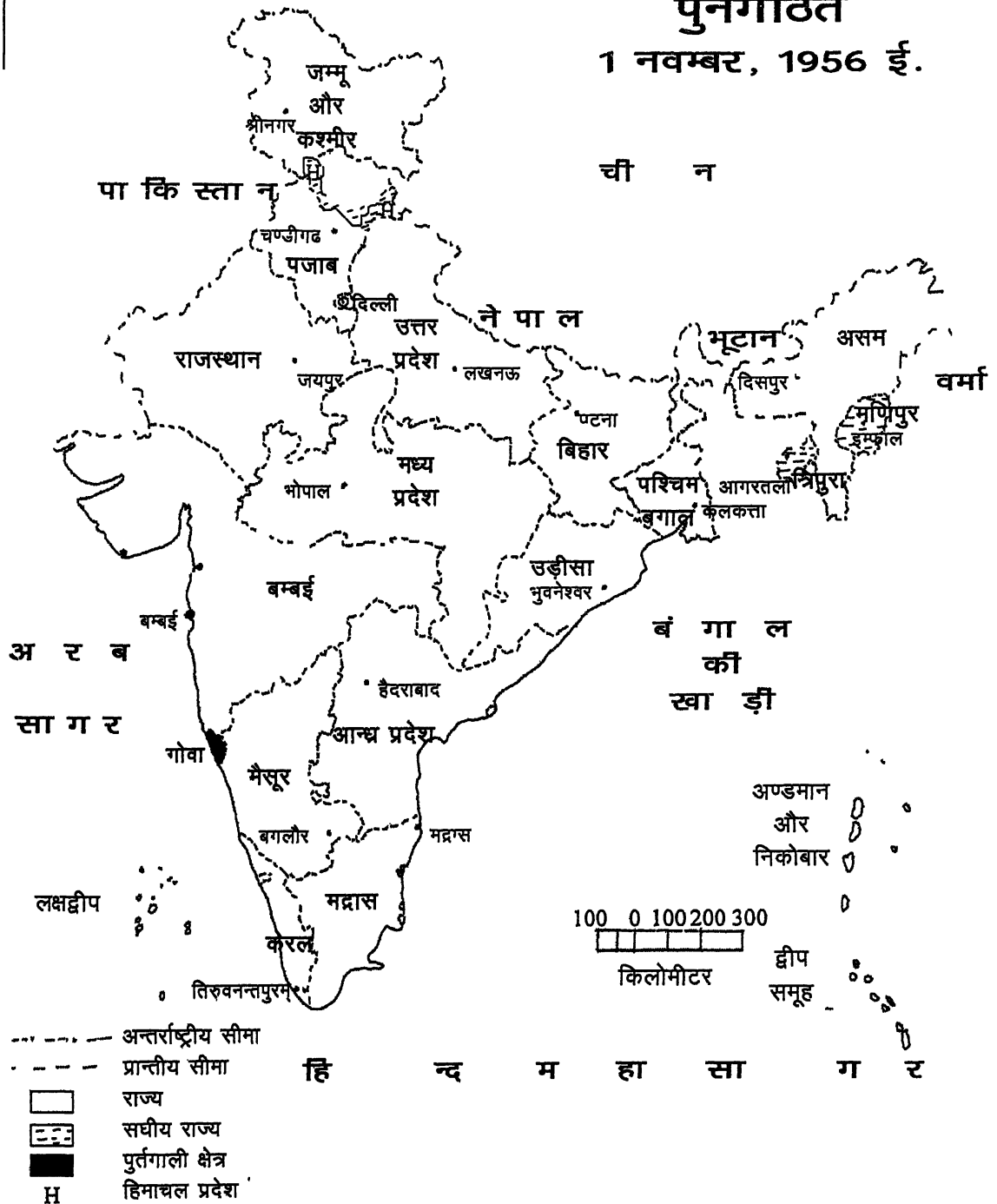
चित्र 3.11

सारणी 3.I

इकाई का नाम	क्षेत्रफल(वर्ग किमी0)	भाषा	राजधानी
राज्य			
आन्ध्र प्रदेश	285,546	तेलुगु	हैदराबाद
असम	220,180	असमिया	शिलाग
बिहार	227,478	हिन्दी	पटना
बम्बई	487,540	मराठी	बम्बई
जम्मू एव कश्मीर	240,299	उर्दू	श्रीनगर
केरल	38,797	मलयालम	त्रिवेन्द्रम
मध्य प्रदेश	443,406	हिन्दी	भोपाल
मद्रास	129,939	तमिल	मद्रास
मैसूर	188,370	कन्नड	बगलौर
उडीसा	155,751	उडिया	भुवनेश्वर
पजाब	120,733	पजाबी, हिन्दी	चण्डीगढ
राजस्थान	342,655	हिन्दी	जयपुर
उत्तर प्रदेश	283,728	हिन्दी	लखनऊ
पश्चिम बगाल	86,192	बगाली	कलकत्ता
केन्द्रशासित प्रदेश			
अण्डमान निकोबार द्वीप समूह	8,327		पोर्ट ब्लेयर
दिल्ली	1,477		दिल्ली
हिमाचल प्रदेश	28,240		शिमला
लक्षदीव, मिनिकॉय एव 26 अमीनी दीव द्वीप समूह			कोजीकोड
मणिपुर	22,346		इम्फाल
त्रिपुरा	10,660		अगरतला

(सिह एव श्रीवास्तव, 1973, पृ० 641–42)

फ्रान्सीसियो द्वारा अधिकृत पाण्डिचेरी, कराईकल, माही व यनम राज्य भारत को सौंप दिये गये। 18 दिसम्बर, 1961 को गोआ, दमन व दिव राज्यो पर भारत सरकार ने पुर्तगालियो से अपने अधिकार मे लेकर इन्हे केन्द्र शासित राज्य घोषित किया।

राज्यो का पुनर्गठन देश के राजनीतिक स्वरूप का एक महत्वपूर्ण चरण था परन्तु कुछ क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति के लिए देश के कुछ भागो मे अशान्ति रही। भाषा एव क्षेत्रीय भेदभाव दबे नही थे। बम्बई, राज्यो के पुनर्गठन के बाद देश का सबसे बडा राज्य था, जहॉ मुख्यत मराठी व गुजराती भाषाये बोली जाती थी। अत इसे भाषा के आधार पर दो राज्यो मे विभक्त करने की मॉग मुखरित हुई। नागपुर के आस–पास के लोग अलग विदर्भ राज्य की मॉग कर रहे थे। फलस्वरूप 1 मई, 1960 ई० को बम्बई राज्य को दो भागो–गुजरात एव महाराष्ट्र मे विभक्त कर दिया गया। बम्बई राज्य देश के मानचित्र से समाप्त हो गया एव राज्यो की सख्या 15 हो गयी। (सिह एव श्रीवास्तव 1973, पृ० 644)।

भारत के उत्तर–पूर्वी पहाडी प्रदेश मे नागा आदि जनजातियॉ रहती हैं। ये लोग अपने पृथक राज्य के लिए निरन्तर उपद्रव करते रहे थे। भारत सरकार ने अप्रैल, 1957ई० मे नागा पर्वत एव तुएनसाग सीमान्त क्षेत्र नामक इकाई की स्थापना की परन्तु विद्रोह शान्त नही हुआ। सन् 1961 ई० मे सरकार ने पृथक् नागालैण्ड नामक राज्य की मॉग को स्वीकार किया और अन्तत देश के सोलहवे राज्य के रूप मे नागालैण्ड का जन्म फरवरी, 1964 ई० मे हुआ।

पजाब भी एक द्विभाषा–भाषी राज्य था। उत्तर–पश्चिम के लोग मुख्यत पजाबी भाषा बोलते थे और दक्षिण–पूर्व मे हिन्दी का प्रचलन था। अकाली दल पृथक् पजाबी सूबा की मॉग कर रहा था जिसकी भाषा पजाबी हो। सरकार ने सन् 1966 ई० मे यह मॉग भी स्वीकार कर ली और 3 जून 1966 ई० को पजाब पुनर्गठन सीमा आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी जिसके आधार पर 1 नवम्बर, 1966 ई० से इस राज्य को पजाबी–भाषा पजाब तथा हिन्दी–भाषा हरियाणा दो इकाइयो मे विभक्त किया गया। पजाब के पहाडी जिले हिमाचल प्रदेश को सौंप दिये गये। 29 जनवरी, 1970 ई० को एक निर्णय के अन्तर्गत केन्द्र शासित

चण्डीगढ पजाब को देने एव उसके बदले मे फाजिल्का तहसील, अबोहर नगर, फिरोजपुर जिले के 114 ग्राम तथा राजस्थान के कुछ भाग हरियाणा को दिये गये।

2 अप्रैल, 1970 ई० को असम राज्य से गारो, खासी तथा जयन्तिया पहाडी क्षेत्रो को पृथक कर मेघालय राज्य की स्थापना की गयी। 20 जनवरी, 1972 ई० को उत्तर–पूर्वी भारत के राज्यो के पुनर्गठन के अन्तर्गत मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर एव नागालैण्ड राज्यो को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। अरूणाचल प्रदेश एव मिजोरम केन्द्र शासित राज्यो की श्रेणी मे रखे गये। 26 अप्रैल, 1975 ई० को भारत का सरक्षण प्राप्त सिक्किम राज्य भारत के 22 वे राज्य के रूप मे देश का अभिन्न अग घोषित किया गया (चौहान एव गौतम, 1999, पृ० 4)।

25 जून, 1986 ई० को सविधान के 53 वे सशोधन विधेयक द्वारा मिजोरम को देश का 23 वॉ राज्य घोषित किया गया। 8 दिसम्बर, 1986 ई० को सविधान के 55 वे सशोधन विधेयक तथा एक अन्य विधेयक के द्वारा अरूणाचल प्रदेश को देश का 24 वॉ राज्य घोषित किया गया। 11 मई, 1987 को सविधान के 56 वे सशोधन विधेयक द्वारा गोआ को देश का 25 वॉ राज्य घोषित किया गया (चौहान एव गौतम, 1999, पृ० 5)

शासन की सुविधा की दृष्टि से सन् 1957 ई० को उत्तर–पूर्वी सीमान्त प्रदेश (NEFA), उत्तराखण्ड तथा लद्दाख सीमा– प्रदेश को पृथक् कर दिया गया। इन पर शासन केन्द्रीय सरकार की ओर से उन राज्यपालो द्वारा होता है, जिन राज्यो मे यह क्षेत्र स्थित हैं। इनके विकास का दायित्व केन्द्रीय सरकार पर है। केवल शासकीय विचार से यह अपने राज्यो के अग हैं। (चौहान एव गौतम, 1999, पृ० 6)।

छत्तीसगढ के गठन के लिए 'मध्य प्रदेश पुनर्गठन विधेयक – 2000' लोक सभा मे 31 जुलाई, 2000 को व राज्य सभा मे 9 अगस्त, 2000 को पारित कर दिया गया। 1 नवम्बर, 2000 को छत्तीसगढ देश के 26 वे राज्य के रूप मे अस्तित्व मे आया। उत्तराचल के गठन के लिए 'उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक–2000' लोक सभा मे 1 अगस्त, 2000 को व राज्य सभा मे 10 अगस्त, 2000 को पारित किया गया। 9 नवम्बर, 2000 को उत्तराचल के रूप मे 27 वे राज्य का जन्म हुआ। इसी प्रकार झारखण्ड राज्य के गठन के लिए 'बिहार

पुनर्गठन विधेयक– 2000' को लोक सभा ने 2 अगस्त, 2000 को व राज्य सभा ने 11 अगस्त, 2000 को पारित किया। 15 नवम्बर, 2000 को देश का 28 वॉ राज्य झारखण्ड अस्तित्व मे आया (चित्र 3 12)।

15 नवम्बर, 2000 को देश के राज्यो व सघ शासित प्रदेशो के क्षेत्रफल को सारणी **3.II** मे प्रदर्शित किया गया है

सारणी 3-II

भारत: राज्यों व संघ शासित प्रदेशों का क्षेत्रफल

(अवरोही क्रम में)

देश में स्थान	राज्य / संघ शासित प्रदेश	क्षेत्रफल (वर्ग कि0मी0)
राज्य		
1	राजस्थान	3,42,214
2	महाराष्ट्र	3,07,762
3	मध्य प्रदेश	2,97,085
4	आन्ध्र प्रदेश	276,814
5	उत्तर प्रदेश	2,36,286
6	जम्मू एव कश्मीर	2,22,236
7	गुजरात	1,95,984
8	कर्नाटक	1,91,773
9	उडीसा	1,55,842
10	छत्तीसगढ	1,46,361
11	तमिलनाडु	1,30,069
12	बिहार	97,200
13	पश्चिम बगाल	87,853
14	अरूणाचल प्रदेश	83,578
15	असम	78,523

भारत
प्रशासकीय इकाइयाँ
15 नवम्बर, 2002 ई.
N
पा कि स्ता न
ची न
जम्मू और कश्मीर
श्रीनगर
हिमाचल प्रदेश
चण्डीगढ
शिमला
पंजाब
हरियाणा
देहरादून
उत्तरांचल
दिल्ली
राजस्थान
जयपुर
उत्तर प्रदेश
लखनऊ
सिक्किम
गंगतोक
बिहार
पटना
अरुणाचल
असम
दिसपुर
नागालैण्ड
कोहिमा
मेघालय
शिलांग
मणिपुर
इम्फाल
त्रिपुरा
अगरतला
आइजोल
मिजोरम
म्यांमार
गुजरात
गांधीनगर
भोपाल
मध्य प्रदेश
झारखण्ड
रांची
पश्चिम बंगाल
कोलकाता
छत्तीसगढ़
रायपुर
उड़ीसा
भुवनेश्वर
दीव
दमन
दादर और नगर हवेली
मुंबई
महाराष्ट्र
बं गा ल की खा ड़ी
अ र ब सा ग र
हैदराबाद
आन्ध्र प्रदेश
यनम (पाण्डिचेरी)
पणजी
गोवा
कर्नाटक
बंगलौर
चेन्नई
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह
लक्षद्वीप
माहे (पाण्डिचेरी)
पाण्डिचेरी
तमिलनाडु
करैकाल (पाण्डिचेरी)
केरल
तिरुवनन्तपुरम्
100 0 100 200 300
किलोमीटर
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
प्रान्तीय सीमा
राजधानी
प्रान्तीय मुख्यालय
हि न्द म हा सा ग र

चित्र 3.12

16	झारखण्ड	76,677
17	उत्तराचल	58,125
18	हिमाचल प्रदेश	55,673
19	पजाब	50,362
20	हरियाणा	44,322
21	केरल	38,864
22	मेघालय	22,489
23	मणिपुर	22,352
24	मिजोरम	21,087
25	नागालैण्ड	16,527
26	त्रिपुरा	10,477
27	सिक्किम	7,298
28	गोवा	3,702
केन्द्रशासित प्रदेश		
1	अण्डमान निकोबार द्वीप समूह	8,249
2	दिल्ली	1,483
3	पाण्डिचेरी	492
4	दादर व नागर हवेली	492
5	चण्डीगढ	114
6	दमन व दीव	112
7	लक्षद्वीप	32
योग	भारत	**32,87,263**

(सिह, 2002, पृ० 2.15–2 16)

सन्दर्भ ग्रन्थ

चन्द्र, विपिन, 1996 **भारत का स्वतन्त्रता सघर्ष**, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली।

चौहान, वीरेन्द्र सिह एव गौतम, अलका, 1999 **भारत**, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।

घोष, शकर, 2000 **यूनिक**, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

गुप्त, मानिक लाल, 2000 **ऐतिहासिक मानचित्रावली**, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

पाण्डेय, रामनिहोर, 1994 **प्राचीन भारत का राजनीतिक एव सास्कृतिक इतिहास**, प्रमानिक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।

शर्मा, रामशरण, 1995 **प्राचीन इतिहास**, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।

सिह, अरूणेश, 2002 **भारतीय अर्थव्यवस्था . एक झलक**, ज्ञान भारती पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद, अध्याय 2 पृ० 15–16।

सिह, जगदीश, सिह कामेश्वरनाथ एव पटेल, रामबरन, 1998 **भारत का भूगोल**, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।

सिह, लेखराज एव श्रीवास्तव, रूद्र प्रकाश, 1973 **भारत का बृहत् भूगोल**, रामनारायण लाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद।

Srivastava, Rudra Prakash, 1979 Territorial and Functional structure of states in India, University of Allahabad, Allahabad

सरकार, सुमित, 1996 **आधुनिक भारत**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली एव पटना।

थपलियाल, हरिप्रसाद, 2000 **भारत की ऐतिहासिक मानचित्रावली,** हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा० लि० वाराणसी।

वाशम, ए० एल०, 1997 **अद्भुत भारत,** शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा।

अध्याय – 4

प्रादेशिकवाद के प्रकार

भारत की स्वतन्त्रता इसकी जनता के लिए एक ऐसे युग की शुरूआत थी, जो एक नये दर्शन से अनुप्राणित थी। सन् 1947 ई० मे देश ने अपने आर्थिक पिछडापन, भयकर गरीबी, निरक्षरता, महामारी, भीषण सामाजिक विषमता और अन्याय के उपनिवेशवादी विरासत से उबरने के लिए अपनी लम्बी यात्रा की शुरूआत की। नवोदित भारत की बुनियादी रूपरेखा राष्ट्रवाद, धर्म निरपेक्षता और लोकतन्त्र सम्बन्धी मूल्य, तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य एव उग्र सुधारवादी परिवर्तन के उद्देश्यो से अनुप्राणित थी। चूँकि भारत मे अत्यधिक क्षेत्रीय, भाषाई, जातीय, और धार्मिक विभिन्नताये विद्यमान हैं। इसलिए देश की बहुतेरी अस्मिताओ को स्वीकार करते एव जगह देते हुए तथा देश के विभिन्न भागो एव लोगो के अनेक समुदायो को भारतीय सघ मे पर्याप्त स्थान देकर भारतीयता को और भी विकसित किया जाना जरूरी है। पश्चिमी राजनीतिक यह भविष्यवाणी करते रहे कि न तो स्वतन्त्रता, न ही लोकतन्त्र और न समाजवाद भारत मे लम्बे समय तक जीवित रह पायेगा और कभी न कभी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था ढह जायेगी, भारत सघ जीवित नहीं बचेगा और यह राष्ट्र–राज्य अपने भाषाई और जातीय टुकडो मे बिखर जायेगा। उन लोगो का यह तर्क है कि भारत की असख्य जातियॉ, धर्म, भाषाई और जनजातीय विभिन्नताये और उसके ऊपर से इसकी गरीबी, सामाजिक तगहाली और असमानता, सम्पत्ति की बढती हुई विषमता, कठोर और श्रेणीगत सामाजिक ढॉचा, विशाल बेरोजगारी और असख्य सामाजिक एव आर्थिक समस्याये इस देश की एकता और इसके विकास सम्बन्धी प्रयासो को निश्चित ही समाप्त कर देगे। सन् 1977 के बाद जब से क्षेत्रीय दलो का उदय हुआ, यह अटकले लगायी जाने लगी कि भारत के विघटन की शुरुआत हेतु उपयुक्त परिस्थितियो का निर्माण हो चुका हैं। साम्प्रदायिक, भाषाई एव जातिगत हिसा, नक्सल विद्रोह, कश्मीर, उत्तर–पूर्व, पजाब और उससे पहले तमिलनाडु मे चलने वाले पृथकतावादी आन्दोलनो के रूप मे भारत मे प्रादेशिकवाद उभर कर सामने आया। भूमि सुधारो की अपर्याप्तता और ग्रामीण इलाको मे बडे पैमाने पर भूमिहीन किसानो की मौजूदगी, उद्योगो और राष्ट्रीय आय की धीमी विकास दर, जनसख्या की ऊँची विकास दर को रोकने मे असमर्थता, व्यापक

असमानता, जातिगत शोषण, महिलाओ के विरुद्ध भेदभाव, निष्क्रिय शिक्षा व्यवस्था, पर्यावरण मे बढता प्रदूषण, शहरो मे बढती आबादी, मानवाधिकारो का हनन, राजनीति मे गुटबन्दी, दलो की अस्त–व्यस्त स्थिति, बढती राजनीतिक अशान्ति, अलगाववादी मॉगो और उनके आन्दोलन, प्रशासनिक पतन और यहॉ तक कि अराजकता, पुलिस की अक्षमता, भ्रष्टाचार और निष्ठुरता का उच्च स्तर एव राजनीति का अपराधीकरण आदि मोर्चों पर भारत को अभी असफलता मिली है (चन्द्र, 2002, पृ० 1 से 7)। इन सभी कारणो से प्रादेशिकवाद को प्रोत्साहन मिलता रहा है। वर्तमान अध्याय मे उपर्युक्त तथ्यो पर विचार करते हुए प्रादेशिकवाद के विभिन्न प्रकारो की विवेचना का प्रयास किया गया है।

प्रादेशिकवाद के प्रकार

प्रादेशिकवाद को सामान्यत निम्न प्रमुख वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है–
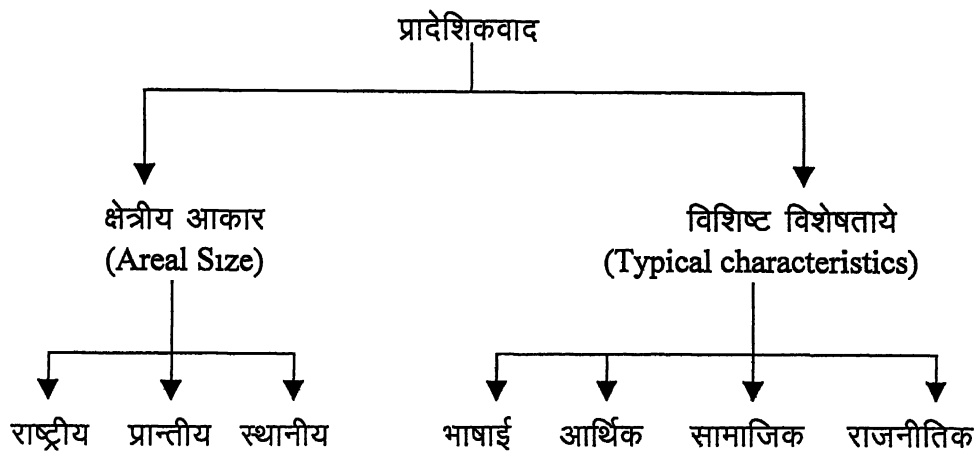
4.1 क्षेत्रीय आकार

क्षेत्रीय आकार पर आधारित प्रादेशिकवाद मे प्रदेश एव प्रान्त के हितो को अधिक महत्व दिया जाता है तथा कई तरह की सुविधाओ, यथा ससाधन विकास कार्यों एव विकास योजनाओ हेतु धन के आबटन, केन्द्रीय सहायता के आबटन आदि मे अधिकाधिक स्थान प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, चाहे इससे राष्ट्र को भले ही हानि हो। क्षेत्रीय आकार पर आधारित प्रादेशिकवाद को तीन प्रमुख प्रकारो मे विभाजित किया जा सकता है–

4.1.1 राष्ट्रीय स्तरीय प्रादेशिकवाद

जब देश के अन्दर लोग अपने प्रदेश को राष्ट्रीय हित से अधिक महत्व देते है, तो उसे राष्ट्रीय स्तरीय प्रादेशिकवाद का नाम दिया जा सकता है। राष्ट्रीय स्तरीय प्रादेशिकवाद देश की एकता एव सम्प्रभुता हेतु गम्भीर खतरा उत्पन्न करता है। भारत मे यह प्रवृत्ति इसलिए और भी बढी क्योकि लोकतन्त्र की व्यवस्था के फलस्वरूप स्पर्धात्मक एव विद्वेषात्मक राजनीति को बढावा मिला। आर्थिक क्षेत्र मे भी प्रतियोगिता बढी और जो राष्ट्रीय एकता धरोहर के रूप मे मिली थी, उसकी राष्ट्रीय भावना धीरे–धीरे कमजोर होने लगी। राष्ट्रीय नेतृत्व कमजोर हुआ तथा प्रान्तो के व्यक्तित्व मे अभिवृद्धि हुई है। यह प्रवृत्ति राष्ट्रीय व्यक्तित्व की कमजोरी का द्योतक है। सन् 1977 ई० के पश्चात् भारतीय राजनीति मे क्षेत्रीय दलो का आविर्भाव हुआ। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय दलो के स्थान पर पजाब मे अकाली दल, कश्मीर मे नेशनल कान्फ्रेस एव पी० डी० पी०, गोवा मे महाराष्ट्रवादी गोमान्तक पार्टी, तमिलनाडु एव पाण्डिचेरी मे द्रविड मुनेत्र कडगम व आल इण्डिया अन्ना द्रविड मुनेत्र कडगम, आन्ध्र प्रदेश मे तेलगुदेशम्, उत्तर प्रदेश मे समाजवादी पार्टी एव बहुजन समाज पार्टी, बिहार मे राष्ट्रीय जनता दल, झारखण्ड मे झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, महाराष्ट्र मे शिवसेना, असम मे असम गण परिषद एव पूर्वोत्तर भारत मे उभरते क्षेत्रीय दल आदि ने राष्ट्रीय स्तर पर प्रादेशिकवाद को प्रोत्साहन दिया है (जैन, 1997, पृ० 278–285)।

राष्ट्रीय स्तर पर प्रादेशिकवाद के रूप मे धरती पुत्र आन्दोलन 1950 के दशक मे सामने आया। यह आन्दोलन एक राज्य से दूसरे राज्य मे आने वाले प्रवासी मजदूरो और भाषायी अल्पसख्यक समुदायो की हैसियत से सम्बन्धित रहा है। कई राज्यो मे इस बात के लिए आन्दोलन आयोजित किये गये हैं कि सरकार अपने हस्तक्षेप द्वारा स्थानीय निवासियो के लिए रोजगार और नौकरियो की गारटी करे और बाहरी लोगो को इसमे प्रवेश करने से रोके। वस्तुत धरती–पुत्र के दर्शन के पीछे मूल विचार यह है कि एक राज्य उस खास भाषाई समूह का है जो वहॉ के निवासी हैं, शेष जितने भी लोग वहॉ रहते हैं एव जिनकी मातृभाषा वहॉ की राजभाषा से भिन्न है, वे सभी बाहरी घोषित कर दिये जाते हैं। चाहे ये बाहरी लोग लम्बे समय से उस राज्य मे रह रहे हो या निकट अतीत मे वहॉ आये हों, पर उन्हे धरती पुत्र नही माना जाता। स्वतन्त्रता के पश्चात् नियोजन और आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप,

खासकर शहरो मे, आर्थिक अवसर बडे पैमाने पर विकसित होने लगे। परन्तु देश के विभिन्न भागो मे इन आर्थिक अवसरो का विकास असमान तरीके से हुआ। इसलिए उन तक पहुँच भी असमान रूप से हुई। तब उन राज्यो के स्थानीय लोगो और धरती–पुत्रो के लिए बाहरी लोगो के मुकाबले रोजगार एव शैक्षणिक अवसरो मे प्राथमिकता देने की बात उठायी जाने लगी, जहाँ ये अवसर उपलब्ध हुए थे। आर्थिक ससाधनो और अवसरो के लिए यह सघर्ष अक्सर साम्प्रदायिकता, जातिवाद और भाई-भतीजावाद का रास्ता अपना लेता है। साथ ही साथ, भाषा के प्रति वफादारी और प्रादेशिकवाद का योजनाबद्ध दुरुपयोग भी बाहरी लोगो को उस राज्य के आर्थिक जीवन से बाहर करने के लिए किया जाता रहा है। सविधान की अस्पष्टता का लाभ उठाते हुए कई राज्यो ने नौकरियॉ आरक्षित कर दी या राज्य की नौकरियो तथा शैक्षणिक सस्थाओ मे भर्ती के लिए राज्य के निवासियो को प्राथमिकता दी जाने लगी। ऐसे मामलो मे निवास की न्यूनतम अवधि निश्चित कर दी जाती है। ऐसे आरक्षण के पक्ष में सबसे प्रमुख तर्क यह दिया जाता है कि सम्बन्धित राज्य के स्थनीय लोग सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक रूप से पिछडे होने के कारण वहॉ के आगे बढे हुए प्रवासी समुदायो के साथ स्पर्धा की स्थिति मे नही हैं। तकनीकी कालेजो और विश्वविद्यालयो मे पिछडे हुए स्थानीय छात्र दूसरे राज्य से आये विकसित छात्रों द्वारा दबा दिये जा सकते हैं। राज्य के पिछडे निवासियों के लिए राज्य प्रशासन की नौकरियों और उच्च शिक्षण सस्थानो मे आरक्षण, राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से अस्वागत होते हुए भी इनका एक तर्क समझा जा सकता है। लेकिन प्रवासी विरोधी आन्दोलनो के लिए ऐसी कोई दलील नहीं मानी जा सकती है। ये उग्रवादी प्रवासीविरोधी और धरती–पुत्र आन्दोलन ज्यादातर शहरो के आस–पास विशेष रूप से असम, आन्ध्र प्रदेश मे तेलंगाना, कर्नाटक, महाराष्ट्र और उडीसा में फैले। इन्होने प्रवासियो को परेशान किया और यहॉ तक कि उनके खिलाफ हिसात्मक कार्यवाही की (चन्द्र, 2002, पृ० 175–178)।

4.1.2 प्रान्त स्तरीय प्रादेशिकवाद

जब किसी राज्य में किसी क्षेत्र विशेष के लोग अपने क्षेत्र के लिए सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक रूप से विशेष मॉग करते हैं तो वह प्रादेशिक स्तरीय प्रादेशिकवाद कहलाता है। जन्म भूमि से प्रेम अथवा किसी क्षेत्र, उसकी भाषा और संस्कृति के

प्रति प्रेम प्रादेशिकवाद नही होता है। वह राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रप्रेम के साथ सुसगत होता है। एक व्यक्ति अपनी अलग क्षेत्रीय पहचान के प्रति सचेत और गौरवान्वित हो सकता है। अपने को पूर्वांचल या बुन्देलखण्ड या तेलगाना या विदर्भ क्षेत्र का होने का अभिमान भी बिना किसी दूसरे क्षेत्र के लोगो के प्रति अनादर अथवा शत्रुता की भावना के और अपने भारतीय होने पर भी उतना ही अभिमान और गौरव महसूस करते हुए हो सकता है। प्रादेशिकवाद का मामला तब हमारे सामने आता है जब एक क्षेत्र के हितों को पूरे देश अथवा दूसरे क्षेत्रो या राज्यो के विरुद्ध पेश करने की कोशिश की जाती है और ऐसे तथा कथित हितो के आधार पर सघर्ष को प्रोत्साहित करने की कोशिश की जाती है। (चन्द्र, 2002, पृ० 165–166)। उदाहरणार्थ असम मे बोडो आन्दोलन, आन्ध्र प्रदेश का तेलगाना क्षेत्रीय आन्दोलन, पश्चिमी बगाल मे गोरखालैण्ड आन्दोलन आदि। ये सभी क्षेत्र राज्य के अन्दर अधिक स्वायत्तता अथवा विशेषाधिकार की मॉग करते रहे हैं।

4.1.3 स्थानीय प्रादेशिकवाद

स्थानीय अथवा क्षेत्र स्तरीय प्रादेशिकवाद मे क्षेत्रीय हितो को अधिक महत्व दिया जाता है इसके अन्तर्गत ब्लाक, तहसील एवं जिला स्तरीय प्रादेशिकवाद को सम्मिलित किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रादेशिकवाद मे जनता खुलकर भाग नही लेती बल्कि राजनीतिक नेता एव प्रशासनिक अधिकारी सुप्रशासन के नाम पर ब्लाक, तहसील एव जिलो का विभाजन करके लोगों को खुश करने के लिए नये ब्लाक, तहसील एव जिला बनाने का प्रयास करते हैं। इसके पीछे जो छिपा तथ्य है वह है गरीबी, बेरोजगारी, भूख, अशिक्षा, जातीयता, बाह्य आक्रमणो से असुरक्षा आदि असफलताओ को छिपाने के लिए कभी कभी राजनेता एव प्रशासक स्थानीय मॉगो को उठाकर लोगो का सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। उन्हे यह बताने का प्रयास किया जाता है कि छोटे प्रशासनिक इकाइयॉ बनाकर उनकी आर्थिक समस्याओ का बेहतर समाधान ढूँढा जा सकता है। राजनीतिज्ञो के इन नारो से गुमराह होकर कभी कभी स्थानीय लोग भी ऐसी मॉगे कर बैठते हैं।

स्थानीय स्तर से शुरू होकर प्रादेशिकवाद प्रान्त एव राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचता है। स्थानीय प्रादेशिकवाद अपेक्षाकृत कम राष्ट्रीय एकता हेतु खतरनाक होता है, प्रान्तीय

प्रादेशिकवाद अपेक्षाकृत कुछ अधिक नुकसानदेह और राष्ट्रीय स्तरीय प्रादेशिकवाद राष्ट्रीय एकता को सर्वाधिक क्षति पहुँचाता है। राष्ट्रीय स्तरीय प्रादेशिकवाद का विकास स्थानीय प्रादेशिकवाद से ही होता है। यदि स्थानीय प्रादेशिकवाद पर अकुश लगा दिया जाये तो राष्ट्रीय स्तरीय प्रादेशिकवाद पर काबू पाया जा सकता है।

4.2. विशिष्ट विशेषताओं के आधार पर प्रादेशिकवाद

अपने क्षेत्र अथवा राज्य को विकसित करने के लिए विशेष प्रयास करने या गरीबी दूर करने, भाषा को विकसित करने एव सामाजिक न्याय दिलाने की कोशिश को प्रादेशिकवाद के रूप मे परिभाषित नही किया जा सकता है। इस प्रकार के सकारात्मक लक्ष्यो की प्राप्ति पर आधारित थोडी अतर्क्षेत्रीय स्पर्धा काफी स्वस्थ चीज हो सकती है। विशिष्ट विशेषताओ के आधार पर प्रादेशिकवाद का मामला तब हमारे सामने आता है जब एक प्रान्त या क्षेत्र के नागरिक, भाषा, आर्थिक, सामाजिक एव राजनीतिक हितो को पूरे देश अथवा दूसरे राज्यो या क्षेत्रो के विरुद्ध पेश करने की कोशिश करते हैं तथा ऐसे हितो के आधार पर सघर्ष को प्रोत्साहित करने की कोशिश की जाती है। विशिष्ट विशेषताओ के आधार पर प्रादेशिकवाद को निम्न चार वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है।

4.2.1 भाषाई प्रादेशिकवाद

भारत मे विभिन्न भाषाये बोली जाती हैं। जिनमे से हिन्दी, बाग्ला, तेलगु, मराठी, तमिल, उर्दू, गुजराती, कन्नड, मलयालम, उडिया, पजाबी एव असमिया को एक प्रतिशत से अधिक जनसख्या बोलती है (चित्र 4.1)। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत का क्षेत्रीय विभाजन सैनिक, प्रशासनिक और राजनीतिक सुविधा की दृष्टि से किया गया था। बंगाल प्रेसीडेन्सी मे बिहार, असम और उडीसा के क्षेत्र सम्मिलित थे। अक्टूबर 1905 ई० मे गवर्नर जनरल की एक उद्घोषणा के द्वारा बंगाल प्रेसीडेन्सी से पृथक करके पूर्वी बगाल का निर्माण किया गया। ज्ञातत्व है कि यद्यपि नये प्रान्त का निर्माण राजनीतिक आधार पर किया गया था, परन्तु मध्य प्रान्त से कुछ उडिया– भाषी क्षेत्रों को बगाल मे सम्मिलित करने के समर्थन में भाषायी सिद्धान्त का भी प्रयोग किया गया था, क्योंकि उडीसा उस समय बगाल प्रेसीडेन्सी मे सम्मिलित था। Prof. J. R. Siwach (Dynamics of India Government and Politics) का

भारत
भाषायी प्रारूप
1991
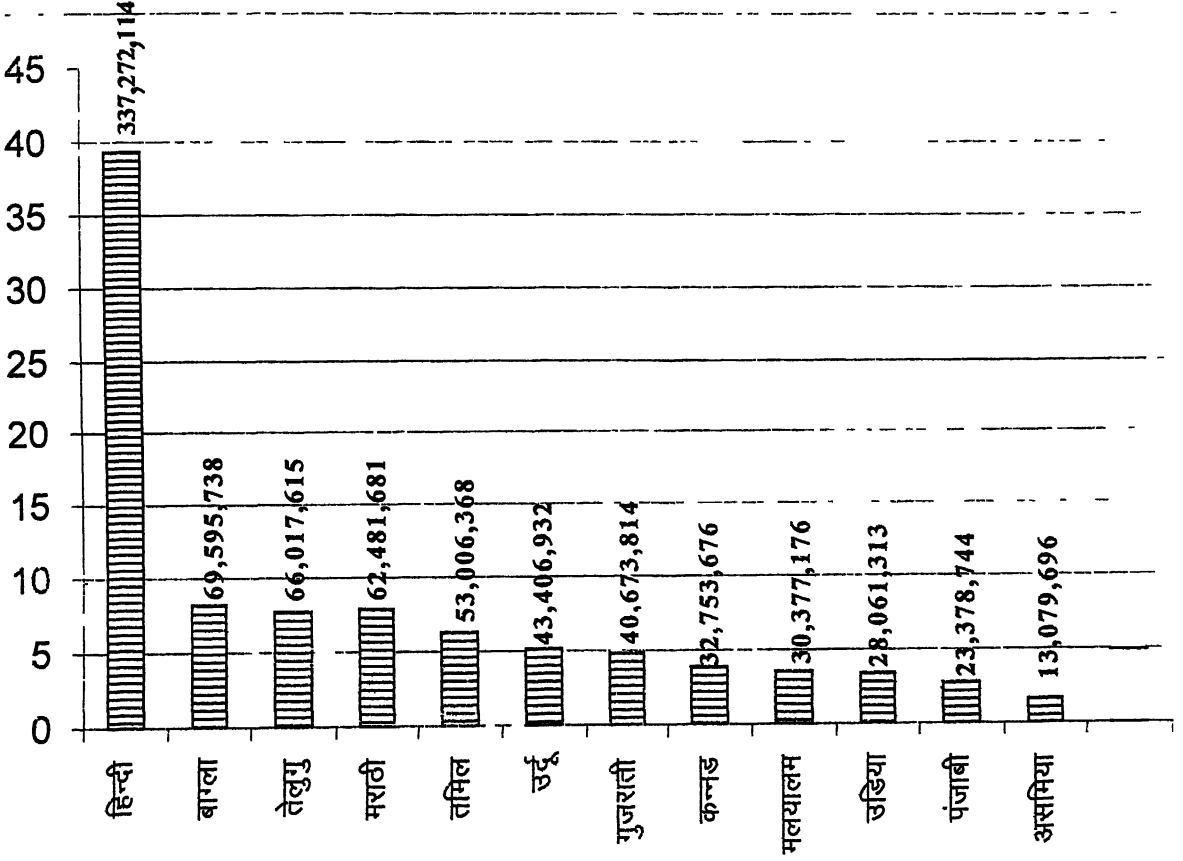
चित्र 4.1

मत है कि "बगाल के विभाजन के उपरान्त आबद्धकारी शक्ति के रूप मे भाषा का महत्व स्वीकार किया गया और इसी आधार पर सन् 1911 ई० मे बगाल का विभाजन निरस्त कर दिया गया। परन्तु जब राजनीतिक कारणो से सन् 1912 ई० मे बिहार, उडीसा और असम को बगाल से पृथक किया गया तो उनकी सीमाओ के निर्धारण मे पुन भाषायी सिद्धान्त का अनुसरण किया गया। "असम, बिहार और उडीसा के पृथक प्रान्त के रूप मे अस्तित्व मे आने (1912 ई०) के अगले ही वर्ष (1913 ई०) आन्ध्र महासभा की स्थापना की गयी। इसका उद्देश्य मद्रास प्रेसीडेन्सी से पृथक करके एक तेलगु भाषी राज्य के रूप मे आन्ध्र प्रदेश की स्थापना था। माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार के दौरान भी भाषायी आधार पर राज्यो के पुनर्गठन पर विचार किया गया। रिपोर्ट मे यह भी स्वीकार किया गया कि भाषायी आधार पर प्रदेशो के निर्माण से प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदो को अपनी कार्यवाही को स्थानीय भाषा मे सम्पादित करने मे आसानी होगी।

जहाँ तक भाषायी आधार पर राज्यो के पुनर्गठन के विचार के प्रति काग्रेस के रुख का प्रश्न है, वह अस्थिर रहा है। बगाल के विभाजन (1905 ई०) का विरोध और विभाजन की समाप्ति (1911 ई०) का समर्थन करके पहले तो काग्रेस ने भाषायी सिद्धान्त के प्रति सहमति व्यक्त की, परन्तु सन् 1908 ई० मे इसने एक कमेटी का गठन कर दिया, जबकि इस समय तक औपचारिक रूप से बगाल और बिहार का विभाजन नही हुआ था। औपचारिक रूप से इस प्रश्न का काग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन (1917 ई०) मे सर्वप्रथम विचार किया गया। काग्रेस की तत्कालीन अध्यक्षा ऐनी बीसेण्ट ने इस विचारधारा का खुलकर विरोध किया। बाल गगाधर तिलक ने भाषायी आधार पर राज्यो के पुनर्गठन का समर्थन किया। सन् 1918 ई० तक महात्मा गाँधी भी भाषायी पुनर्गठन के सिद्धान्त से लगभग सहमत हो चुके थे, क्योकि उनका मानना था कि लोक-सगठन बनाने के लिए कांग्रेस के लिए यह उपयुक्त होगा कि लोगों की भाषायी सवेदनाओं का उपयोग करे। काग्रेस के नागपुर अधिवेशन (1920 ई०) मे भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के सिद्धान्त को आधिकारिक रूप से स्वीकार कर लिया गया। नेहरू रिपोर्ट (1928 ई०) मे भी इसका समर्थन किया गया। सन् 1946 ई० में जारी अपने चुनाव घोषणा–पत्र मे काग्रेस ने सत्ता मे आने की स्थिति मे भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का मंतव्य प्रकट किया।

अन्तरिम चुनावो मे काग्रेस को भारी सफलता प्राप्त हुई। अब भाषायी आधार पर पुनर्गठन के समर्थक काग्रेस पर दबाब डालने लगे। उस समय विभिन्न प्रान्तो मे आन्तरिक भाषायी विवाद थे, जैसे मध्य प्रान्त मे हिन्दी और मराठी–भाषा क्षेत्रो के निवासियो के मध्य, बरार मे महाविदर्भ और सयुक्त महाराष्ट्र के मध्य, बम्बई मे एक ओर महाराष्ट्र और गुजरात समर्थको के मध्य। दक्षिण भारत मे एक ओर आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु समर्थको के मध्य विवाद की स्थिति थी तो दूसरी ओर तमिलनाडु और केरल के समर्थको के मध्य। इन सब विवादो को मदद्नेजर रखते हुए प० जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, जय प्रकाश नारायण, के० एम० मुशी जैसे वरिष्ठ काग्रेसी नेताओ ने तात्कालिक रूप से इस पर निर्णय स्थगित रखना ही उचित समझा, क्योकि इस विषय पर कोई भी निर्णय लेने से और विवाद पैदा होने की सम्भावना थी। महात्मा गाधी और डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने भी इस बिन्दु पर भाषायी आधार पर राज्यो के पुनर्गठन का विरोध किया।

क्रमश आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र के भाषायी आधार पर पुनर्गठन के समर्थको का दबाव बढने लगा। अन्तत 27 नवम्बर, 1947 ई० को प० जवाहर लाल नेहरू ने भाषायी आधार को स्वीकार कर लिया। तदोपरान्त 17 जून, 1948 ई० को सविधान सभा के अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद ने भाषायी प्रदेश आयोग की नियुक्ति की। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश श्री एस० एन० धर की अध्यक्षता मे गठित इस आयोग के अन्य सदस्य थे– सर्व श्री डा० पन्नालाल (अवकाश प्राप्त आई० सी० एस० अधिकारी) तथा जगत नारायण लाल (सदस्य, सविधान सभा) जबकि श्री बी० सी० बनर्जी (महालेखा परीक्षक, बिहार) को आयोग का सचिव बनाया गया। आयोग के नौ सहयोगी सदस्य भी बनाये गये सर्व श्री रामकृष्ण राजू, टी० ए० रामलिगम, नारायण मेनन, टी० सुब्रहयमण्यम, के० एम० मुशी, आर० आर० दिवाकर, एच० वी० पाटस्कर, टी० एल० सियोडे तथा गोपाल श्रीवत्स। आयोग ने भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के विचार से असहमति प्रकट की। स्वाभाविक था कि धर आयोग की रिपोर्ट से भाषायी आधार पर पुनर्गठन के समर्थक सन्तुष्ट न हुए। भाषायी पुनर्गठन पर धर आयोग के विचारानुसार "पूर्णत या अशत भाषायी आधार पर राज्यो का गठन भारत राष्ट्र के दीर्घकालीन हित मे नहीं है। अतएव इसे क्रियान्वित नही किया जाना चाहिए। नये प्रान्तों की स्थापना मे भाषा की समरूपता को अन्य कारकों की

भॉति एक कारक के रूप मे मान्यता दी जा सकती है, परन्तु इसे निर्णायक अथवा मुख्य तत्व नही माना जा सकता। यदि भारत का अस्तित्व ही कायम नहीं रहता है तो भारत की भाषायी समस्याओ के निराकरण से कुछ प्राप्त नही होगा।"

ऐसी स्थिति मे दक्षिण भारत के काग्रेस जनो ने कार्य समिति से इस विषय पर पुनर्विचार करने का आग्रह किया अपने जयपुर अधिवेशन मे काग्रेस ने इस विषय पर विचार हेतु उच्च स्तरीय जे० वी० पी० समिति (जिसके सदस्य थे– प० जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल और पट्टाभि सीतारमैया) की नियुक्ति की। इस समिति ने भी विस्तृत विचार–विमर्श के उपरान्त भाषायी आधार पर पुनर्गठन की मॉग को निरस्त कर दिया।

जिस समय भारत का सविधान लागू हुआ, भारत मे श्रेणी 'क' के 9 राज्य, श्रेणी 'ख' के 8 राज्य, श्रेणी 'ग' के 10 राज्य तथा श्रेणी 'घ' का एक राज्य था। सरकार के नकारात्मक दृष्टिकोण के बावजूद पृथक् आन्ध्र प्रदेश की स्थापना के लिए आन्दोलन जोर पकडने लगा। जुलाई, 1952 ई० मे आन्ध्र के विधान सभा सदस्यो की बैठक आयोजित की गयी, बावजूद इसके कि विभिन्न राजनीतिक दलो ने अपने सदस्यो पर इस प्रकार की किसी बैठक मे भाग लेने के लिए प्रतिबन्ध लगा रखा था। सन् 1952 ई० के अन्तिम महीनो में पृथक आन्ध्र की स्थापना की मॉग को लेकर पोट्टी श्रीरमुलु ने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया और 56 दिनो के अनशन के उपरान्त उनकी मृत्यु हो गयी। तदुपरान्त आन्दोलन हिंसक होने लगा। अन्तत. 19 दिसम्बर, 1952 ई० को प्रधानमन्त्री प० जवाहर लाल नेहरू ने पृथक आन्ध्र प्रदेश की स्थापना की घोषणा कर दी। न्यायमूर्ति वाचू को नये राज्य के सीमाकन का दायित्व सौंपा गया। 1 अक्टूबर, 1953 ई० को आन्ध्र प्रदेश औपचारिक रूप से नया प्रदेश बन गया। यह भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का पहला चरण था।

आन्ध्र प्रदेश की स्थापना से, जैसा कि स्वाभाविक था, भाषायी आधार पर पृथक् राज्यो की स्थापना की मॉग करने वालों को पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त हुई। देश के कई भागों से इस तरह की मॉगे आने लगीं। इन मॉगो की जॉच पडताल करने और नये राज्यों की सीमा–निर्धारण के लिए सरकार द्वारा एक आयोग की नियुक्ति की गयी जिसकी औपचारिक घोषणा तत्कालीन गृहमन्त्री डॉ० कैलाश नाथ काटजू ने की। न्यायमूर्ति श्री एफ० फजल अली

को इसका अध्यक्ष और श्री ह्रदय नाथ कुजरू तथा श्री के० एम० पन्निकर को इस "राज्य पुनर्गठन आयोग" का सदस्य बनाया गया।

समग्र रूप से आयोग की राय थी कि सिर्फ भाषायी आधार पर राज्यो का पुनर्गठन भारत के राष्ट्रीय हित मे नहीं है, क्योकि राष्ट्र की एकता और अखण्डता तथा वित्तीय एव प्रशासकीय सुविधाये भी महत्वपूर्ण हैं। परन्तु इसके बावजूद व्यवहार मे, आयोग ने जितने भी राज्यो की सस्तुति की, उनमे पजाब और हरियाणा को छोडकर सभी राज्य भाषायी दृष्टि से समरूप थे। आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे 16 राज्य और 3 सघ–शासित क्षेत्र की सस्तुति की। इसके अतिरिक्त आयोग ने राज्यो की पूर्व विद्यमान श्रेणियो (क, ख, ग, घ) के समाप्ति की भी सस्तृति की। सरकार ने आयोग की सभी संस्तुतियो को यथावत स्वीकार नही किया। आयोग की सस्तुति 16 राज्य और 3 सघ–शसित प्रदेश की स्थापना की थी, जबकि सरकार ने अन्तत 14 राज्य (आन्ध्र प्रदेश, असम, बम्बई, जम्मू–कश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, उडीसा, पजाब, राजस्थान, बिहार उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बगाल) तथा 6 सघ–शासित (अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, लक्षद्वीप मिनीकॉय तथा अमीनदिवी द्वीप) की स्थापना की।

परन्तु पुनर्गठन की प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं हुई। आयोग द्वारा बम्बई के विभाजन की मॉग से असहमति के कारण जनवरी, 1956 ई० में महाराष्ट्र मे बडे पैमाने पर दंगे हुए। परिणामत 'राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956' के अन्तर्गत बम्बई के विभाजन का प्रावधान किया गया और सन् 1960 ई० मे बम्बई का महराष्ट्र और गुजरात में विभाजन कर दिया गया। सन् 1962 ई० मे असम से अलग करके नागालैण्ड की स्थापना की गयी। सन् 1972 ई० मे असम को पुनः विभाजित करके मेघालय की सृष्टि हुई। सन् 1972 ई० मे ही अरूणाचल प्रदेश और मिजोरम को केन्द्र शासित प्रदेश बनाया गया। सन् 1987 ई० से ये दोनो राज्य बन चुके हैं। सन्त फतेह सिंह की आत्म–दाह की धमकी के उपरान्त सन् 1966 ई० मे पंजाब का (पंजाबी भाषा–भाषी राज्य) तथा हरियाणा (हिन्दी भाषा–भाषी राज्य) के रूप मे विभाजन कर दिया गया। चण्डीगढ को एक सघ शासित क्षेत्र बना दिया गया। सन् 1966 ई० के अन्त तक संविधान की आठवी अनुसूची में सम्मिलित 14 भाषाओं (वर्तमान में 18 भाषायें) में से 12 भाषाओं (उर्दू और सस्कृत को छोड़कर क्योंकि इन दोनों भाषाओं का क्षेत्र

सम्पूर्ण देश मे है एव इनके बोलने वाले एक जगह सग्रहीत नही है) मे से प्रत्येक पर आधारित एक राज्य बन चुका था। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि सन् 1966 ई० तक भाषायी आधार पर भारत के पुनर्गठन की प्रक्रिया काफी हद तक पूरी हो चुकी थी।

राज्य पुनर्गठन की सिफारिशो के विश्लेषण से दो नतीजे निकलते हैं– पहला यह कि यद्यपि आयोग ने बढती हुई प्रादेशिक चेतना को पहचान लिया फिर भी आयोग इन आयामो को पहचानने मे नाकाम रहा, जिसके कारण अलग–अलग प्रादेशिक आन्दोलन पैदा हुए। दूसरी बात यह है कि दूसरे दशक के मध्य से राज्यो के भाषायी आधार पर पुनर्गठन करने की मॉग करके काग्रेस भी उसकी अनेक शाखाओ–प्रशाखाओ के विस्तार को ऑकने मे नाकाम रही।

भाषा प्रादेशिकवाद का एक प्रमुख तत्व माना जाता है। यहॉ तक कि प्रादेशिकवाद के वर्गीकरण मे एक प्रकार भाषाई प्रादेशिकता (Linguistic Regionalism) को अलग से महत्व दिया जाता है। इसी भाषाई प्रादेशिकता के ज्वलन्त उदाहरण हैं। असम एव बगाल के मध्य भाषायी दगे तथा तमिलनाडु में हुए आन्दोलन इत्यादि। यह प्रादेशिकता भाषा के माध्यम से लोगों को एकत्रित करती है। इससे सम्पूर्ण भाषा एक इकाई के रूप में सगठित होकर दूसरी भाषायी इकाइयो के सामने आता है। उदाहरणार्थ, जब अग्रेजी का बहिष्कार करके हिन्दी को तेजी से लागू करने के प्रयास किये गये तो कुछ क्षेत्रो खासकर दक्षिण भारत मे उग्र हिन्दी विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। इससे वैमनस्यता बढती है। किन्तु केवल भाषा ही इस वैमनस्यता का कारण हो, ऐसी बात नहीं है, इसके पीछे आर्थिक पिछडापन भी महत्वपूर्ण कारक है। भाषा से प्रादेशिकवाद को बल अवश्य ही मिलता है किन्तु यह भी नही है कि एक भाषा-भाषी क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं होता है जैसे, आन्ध्र एवं तेलंगाना मे भाषा एक ही है फिर भी यहॉ पृथक राज्य की मॉग की जा रही है। अत अन्दरूनी तौर पर भी आपस मे तनाव हो सकता है जैसा कि तेलगानावासियो ने कहा था कि उनका शोषण किया जा रहा था (जैन, 1997, पृ० 281)।

अप्रैल, 1963 ई० में तत्कालीन गृहमन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा ने संसद में यह घोषणा की कि सघ के कार्यालयो में हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग के लिए हर सम्भव उपाय

किए जायेगे। गृहमन्त्री के इस आश्वासन ने अहिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्रो को चौकन्ना कर दिया। जून, 1963 ई० मे द्रविण मुनेत्र कडगम (D. M K) ने हिन्दी साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रत्यक्ष सघर्ष का आहवान किया ताकि "दक्षिण भारत के लोगो को दोयम दर्जे का नागरिक बनाने के षडयत्र को नेस्तनाबूद किया जा सके"। प्रकारान्तर से आन्दोलन आन्ध्र प्रदेश और पश्चिम बगाल मे फैल गया (चित्र 4.2)। तब से आज तक समय–समय पर तमिलनाडु मे हिन्दी विरोधी आन्दोलन होता रहा है। दक्षिण मे हिन्दी विरोधी आन्दोलन की प्रतिक्रिया उत्तर के हिन्दी भाषा–भाषी प्रदेशो मे हुई। इसके बावजूद हिन्दी विरोधी आन्दोलन जारी रहा।

केन्द्र सरकार द्वारा सन् 1983 ई० मे केन्द्र–राज्य सम्बन्धो के विषय मे सुझाव देने के लिए गठित सरकारिया आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे यह स्वीकार किया है कि भाषाई आन्दोलन से भारत की राजनीतिक व्यवस्था के विकास मे काफी विवाद और कटुता पैदा हुई है। आयोग ने भारतीय राजनीति मे भाषा के कार्य–भाग पर कडा दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा कि भाषा का राजनीतिकीकरण राष्ट्र के लिये घातक है। आयोग का मानना है कि राजभाषा के विकास की प्रक्रिया मे अंग्रेजी सहित भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओ के रूप, शैली तथा अभिव्यक्ति को बरकरार रखना जरूरी है। आयोग ने त्रि–भाषा सूत्र को कडाई से लागू करने की भी सिफारिश की है।

4.2.2 आर्थिक प्रादेशिकवाद

देश की एकता और अखण्डता सर्वोपरि होती है। किसी भी देश का विकास उसकी एकता और अखण्डता पर निर्भर करता है। देश के विभिन्न भागो के बीच पाया जाने वाला आर्थिक असन्तुलन और आर्थिक शोषण पारस्परिक मतभेदो को बढावा देने में प्रभावशाली कारक रहा है। देश के कुछ राज्यो की आर्थिक स्थिति अच्छी है, जबकि उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड जैसे कुछ राज्य आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक पिछडे हुए हैं। एक राज्य विशेष के आर्थिक संसाधनो पर दूसरे राज्य के लोगो के आधिपत्य का घोर विरोध किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, बिहार तथा झारखण्ड में गठित बिहार बचाव मोर्चा इस बात की मॉग कर रहा है कि बिहार में जो भी सार्वजनिक या निजी उपक्रम खनिज उत्पादन का व्यापार कर रहे हैं, उनके मुख्य कार्यालय बिहार राज्य के अन्तर्गत स्थित होने चाहिए। राज्य के बाहर इनके

भारत
हिन्दी भाषा विरोधी आन्दोलन
N
पा कि स्ता न
ची न
पंजाब
ने पा ल
भूटान
असम
नागालैण्ड
म्यां मा र
पश्चिम बंगाल
उड़ीसा
बं गा ल की खा ड़ी
अ र ब सा ग र
आन्ध्र प्रदेश
कर्नाटक
तमिलनाडु
केरल
लक्षद्वीप
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह
100 0 100 200 300
किलोमीटर
हिं न्द म हा सा ग र
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
प्रान्तीय सीमा
राजधानी
आन्दोलन प्रभावित क्षेत्र
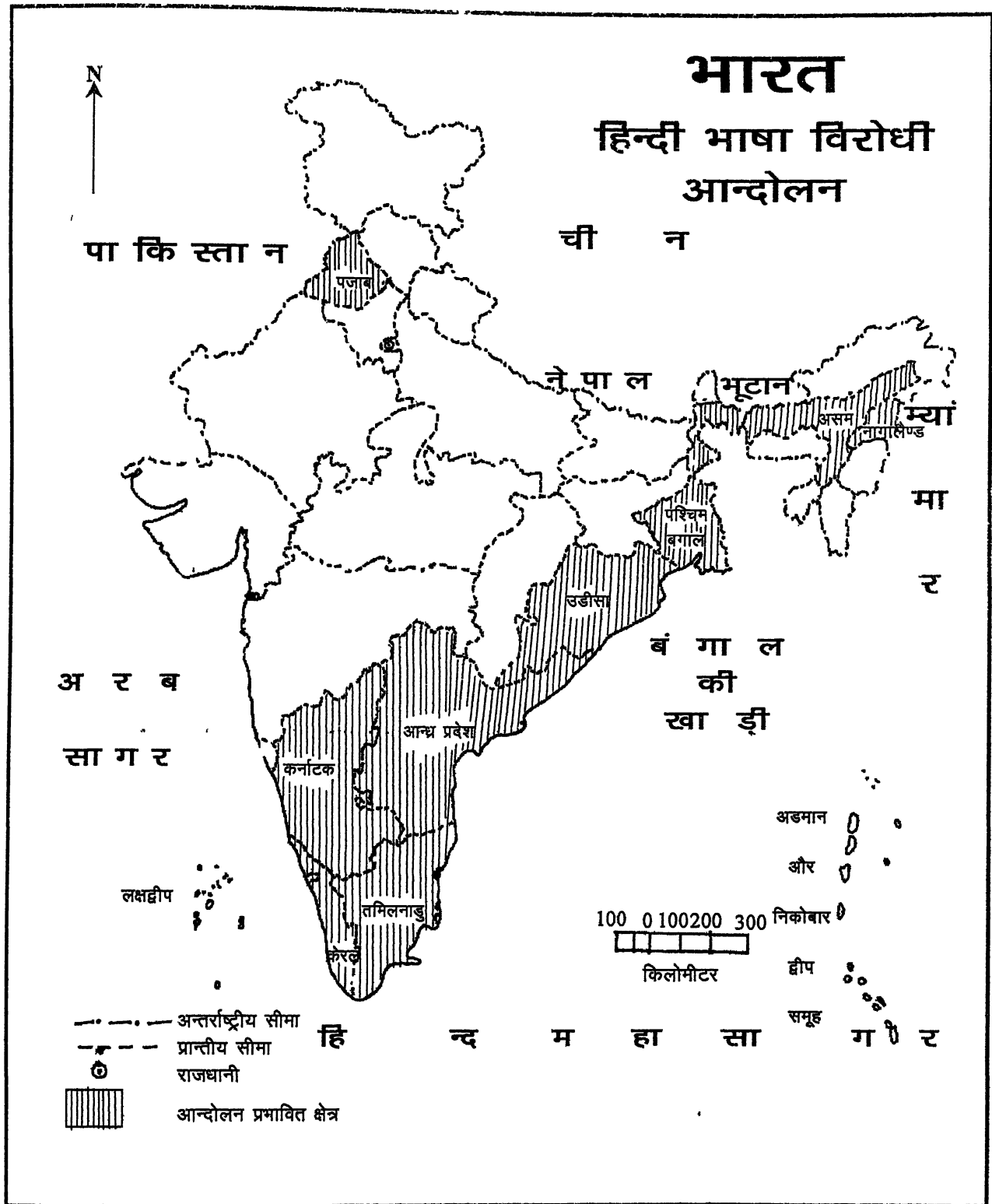
चित्र 4.2

मुख्यालय होने से बिहार वालो के लिए रोजगार का अवसर खत्म हो जाता है। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश मे 'पहाडी समाज' नामक सगठन विदेशियो के विरुद्ध आन्दोलन कर रहा है। उनका कहना है कि स्थानीय निवासियो को विदेशियो के हाथ कोई सम्पत्ति नही बेचना चाहिए (सईद, 1996, पृ० 370)।

सन् 1966 ई० मे बाल ठाकरे द्वारा स्थापित शिवसेना द्वारा महाराष्ट्रियो के हितो के सरक्षण का मुद्दा उठाया गया। शिवसेना द्वारा इस सम्बन्ध मे तीन सूत्रीय कार्यक्रम रखा गया–

(क) महाराष्ट्रियो को सिर्फ महाराष्ट्रियो द्वारा स्थापित होटलो मे ही जाना चाहिए।

(ख) उन्हे मकान की खरीद/बिक्री या किराये पर देना सिर्फ आपस मे ही करना चाहिए।

(ग) उन्हे सिर्फ महाराष्ट्रियो को ही अपने प्रतिष्ठान मे रोजगार देना चाहिए।

शिवसेना का यह आन्दोलन मुख्य रूप से आर्थिक क्षेत्र मे दक्षिण भारतीयो के बढते हुए प्रभुत्व के विरुद्ध उन्मुख था। सन् 1981 ई० मे महाराष्ट्र मे दक्षिण भारत के रहने वालो के विरुद्ध शिवसेना के नेतृत्व मे हिसात्मक घटनायें हुईं। उसने केरलवासियो, कर्नाटकवासियो तथा तमिल लोगो को महाराष्ट्र से निकालने की मॉग की। इसी प्रकार कर्नाटक मे यह मॉग की जा रही है कि केरलवासी और तमिल लोग कर्नाटक राज्य को छोडकर चले जाये।

साठ के दशक के अन्तिम वर्षों मे आन्ध्र प्रदेश, जिसका निर्माण सन् 1963 ई० मे मद्रास राज्य को विभाजित करके किया गया था कि तेलुगु जनमानस द्वारा इस आधार पर आन्दोलन किया गया कि आन्ध्र प्रदेश की अपेक्षाकृत समुन्नत जनसख्या द्वारा उनका शोषण किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि पूर्वकाल मे तेलगाना क्षेत्र के निंवासियो को सन्तुष्ट करने के लिए मुल्की नियम (Mulki rules) का निर्माण किया गया था। सन् 1968 ई० मे उच्चतम न्यायालय ने इन नियमो को विभेदकारी मानते हुए निरस्त कर दिया। इसके विरोध मे के० रगा रेड्डी के नेतृत्व मे तेलगाना क्षेत्र के सभी मन्त्रियो ने त्याग पत्र दे दिये। अन्तत· सन् 1973 ई० मे आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने इन नियमों को पुनर्परिभाषित किया। इसके

तहत उसी व्यक्ति को "मुल्की" (स्थानीय निवासी) माना जाता था, जिसका जन्म या तो हैदराबाद राज्य मे हुआ हो और यदि वह बाहर से आया हो तो उसे हैदराबाद राज्य मे निवास करते हए न्यूनतम 15 वर्ष हो गये हो और वह स्थायी रूप से वही बसने का निर्णय ले चुका हो। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से लोग इन नियमो से मिलने वाले लाभो से वचित हो गये। अन्तत तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गॉधी के इस आश्वासन पर कि "मुल्की नियमो" को धीरे–धीरे समाप्त किया जायेगा, तेलगाना आन्दोलन समाप्त हुआ।

बोडो आन्दोलन आर्थिक प्रादेशिकवाद का एक दूसरा उदाहरण है। 2 मार्च, 1987 ई० से औपचारिक रूप से प्रारम्भ बोडो आन्दोलन के मूल मे यह एहसास रहा है कि पहाडी और मैदानी जनजातियो मे सख्यात्मक दृष्टि से सबसे बडी होने के बावजूद बोडो जनजाति गरीबी और उपेक्षा की शिकार है। बोडो लोगो का यह विश्वास तब और बढ जाता है जब वे यह देखते हैं कि मेघालय, मिजोरम और नागालैण्ड मे पर्वतीय जनजातियो ने अत्यधिक उन्नति की है।

आर्थिक दृष्टि से अखिल भारतीय स्तर पर 30 प्रतिशत से अधिक जनसख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन–यापन कर रही हैं, जबकि बोडो समुदाय की 90% से अधिक जनसख्या गरीबी की रेखा के नीचे जीवन–यापन कर रही है। इस समुदाय का तीन–चौथाई से अधिक भाग ऐसे दूर–दराज के भागो मे रहता है, जिनके लिए बिजली, सिचाई, सचार, रेल आदि कल्पना से अधिक और कुछ नही है। स्वतन्त्रता के बाद आदिवासियो के हित सवर्द्धन के जो भी प्रयास किये गये, वे सभी पर्वतीय आदिवासियो के लिये थे, मैदानी आदिवासी उससे प्राय अछूते रहे। मैदानी जनजातियों के विषय में मात्र यह निर्णय लिया गया कि ब्रह्मपुत्र घाटी मे "जनजातीय बेल्ट" की स्थापना की जाये ताकि इन क्षेत्रो मे गैर–आदिवासियो के अतिक्रमण को रोका जा सके।

तीव्र आर्थिक विकास के निमित्त चलाया गया एक और उदाहरण गोरखालैण्ड आन्दोलन था। सुभाष घीसिग के नेतृत्व वाले "गोरखालैण्ड नेशनल लिबरेशन फ्रण्ट" (GNLF) की मुख्य माँग थी : सन् 1950 ई० की भारत–नेपाल सन्धि के अनुच्छेद को निरस्त किया जाये, क्योकि यह नेपाल मूल के नेपालियों और भारतीय मूल के नेपालियो मे कोई

विभेद नही करता तथा ऐसी स्थिति मे नेपाली मूल के नेपालियो को भी भारत मे वही सब सुविधाये प्राप्त हैं जो भारतीय मूल के नेपालियो को है। वार्ता के अनेक दौरों के उपरान्त अन्तत सन् 1988 ई० मे "दार्जिलिंग हिल काउसिल" की स्थापना का निर्णय लिया गया जिसे स्थानीय सामाजिक और आर्थिक प्रशासन मे व्यापक स्वायत्तता प्रदान की गयी इसके 2/3 सदस्य निर्वाचित और 1/3 नामाकित होगे। झारखण्ड एव उत्तराचल मे आदिवासी अपने आर्थिक हितो पर गैर–आदिवासियो द्वारा अधिकार किये जाने से चिन्तित हैं।

वस्तुत इस प्रकार के आन्दोलन मूलत उन्ही क्षेत्रो मे विकसित हुए हैं जहॉ कोई विशिष्ट समुदाय जनसख्या की दृष्टि से बहुमत मे है परन्तु आर्थिक क्षेत्र मे पिछडा हुआ है। साठ के दशक मे भारत के विभिन्न भागो में 'भूमिपुत्र के सिद्वान्त' के आधार पर तमाम आन्दोलन चलाये गये। इस तरह के आन्दोलनो मे सम्बन्धित क्षेत्र के निवासियों को यह अहसास कराया गया कि वे अपेक्षाकृत अलाभकारी आर्थिक स्थिति मे हैं एव गैर स्थानीय लोग उनके ससाधनो का दोहन कर उनका शोषण कर रहे हैं। इन आन्दोलनों द्वारा क्षेत्र के मूल निवासियो के हितो के सरक्षण एव उनके साथ विशिष्ट व्यवहार की मॉग की जाती रही है। दूसरे शब्दो मे शिक्षा सरकारी व्यवसाय आदि के क्षेत्रो में स्थानीय एवं मूल निवासियो को प्राथमिकता देने की मॉग की गई।

एक मजबूत राष्ट्रीय सरकार ही क्षेत्रीय विषमताओ को दूर करने के लिए आर्थिक एव अन्य कदम उठा सकती है, खासकर जबकि इनमे केन्द्रीय ससाधनो और निवेशो के आबटन, उद्योगो के स्थान निर्धारण तथा निजी क्षेत्र द्वारा निवेश के लिए निर्देशो एवं प्रलोभनो का प्रश्न जुडा हो। पिछडे राज्यो मे आर्थिक विकास की दर और श्रमिको की बहुलता तथा गरीब इलाको से श्रमिको के अभाव वाले क्षेत्रो की तरफ प्रवाह को प्रोत्साहित करना शक्तिशाली केन्द्रीय हस्तक्षेप के बिना सम्भव नही है। जनजातियो को समाप्त होने से बचाने तथा समाज के गैर–जनजातीय तबकों द्वारा उनको शोषण से बचाने तथा जनजातीय लोगों को अपने तरीकों और रफ्तार से विकसित होने देने के लिए मजबूत राष्ट्रीय सरकार एव स्पष्ट नीति की आवश्यकता है। सिर्फ शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार ही संसाधनो के लिए युद्धतत्पर राज्यों के बीच मध्यस्थता के योग्य हो सकती है (चन्द्र, 2002, पृ० 183)।

4.2.3 सामाजिक प्रादेशिकवाद

सामाजिक प्रादेशिकवाद का उद्‌भव तब होता है जब किसी क्षेत्र अथवा राज्य को यह महसूस होता है कि उसके ऊपर सास्कृतिक वर्चस्व या भेदभाव आरोपित करने की कोशिश की जा रही है। सेलिग एस० हैरिसन नामक अमरीकी विद्वान एव पत्रकार ने सन् 1960 ई० मे अपनी प्रसिद्ध कृति **'इडिया– द मोस्ट डेनजरस डिकेड्स'** मे भारतीय एकता पर बहुत बडे खतरे की बात कही है। उनके अनुसार "राष्ट्रीय सरकार और क्षेत्रो के बीच सघर्ष का एक वास्तविक खतरा क्षेत्रो द्वारा अपनी अलग सास्कृतिक पहचान के लिए दबाव डालने के कारण पैदा हो रहा था।" परन्तु प० जवाहर लाल नेहरू के शब्दो मे, "दरअसल भारत देश भारतीय सास्कृतिक विभिन्नता को न केवल अपने अन्दर समाहित करने बल्कि उन्हे गौरव का वस्तु बनाने मे काफी सफल रहा है।" भारत के विभिन्न सास्कृतिक क्षेत्रो की अपनी पूर्ण सांस्कृतिक स्वायत्तता रही है और अपनी सास्कृतिक महत्वाकाक्षाओ की सन्तुष्टि पूरी तरह उनके अधिकारो के अन्दर ही है (चन्द्र 2002, पृ० 166–167)।

साम्प्रदायिक प्रादेशिकवाद, प्रादेशिकवाद का वह प्रकार है, जिसमे प्रादेशिकवादी आन्दोलन एक विशेष सम्प्रदाय के लोगो द्वारा चलाया जाता है। इस श्रेणी के प्रादेशिकवाद मे भाषा का तत्व भी सहायक हो सकता है, परन्तु इसके बावजूद इस श्रेणी के प्रादेशिकवाद में सम्प्रदाय का तत्व भाषा के तत्व पर हावी रहता है। अकाली दल द्वारा पजाब मे चलाया गया उग्रवादी आन्दोलन इसका एकमात्र उदाहरण है। पजाब मे अकाली दल द्वारा चलाये गये आन्दोलन की गहरी ऐतिहासिक जडे हैं, परन्तु तात्कालिक रूप से इसका ऐतिहासिक सन्दर्भ सन् 1972 ई० से लिया जा सकता है जब अक्टूबर, 1972 ई० मे अकाली दल की कार्यकारिणी समिति ने सरदार कपूर सिह के नेतृत्व मे अकालियो की मुख्य मॉगो के सुसज्जित निर्माण के लिए एक उप–समिति का निर्माण किया। 17 अक्टूबर, 1973 ई० को अकाली दल द्वारा इस समिति की सस्तुतियो को 'आनन्दपुर साहिब' प्रस्ताव के रूप मे स्वीकार कर लिया गया।

केन्द्र सरकार को अकाली दल की धार्मिक मॉगों पर कोई विशेष आपत्ति नही थी, परन्तु आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव की राजनीतिक मॉगों, खासकर खालसा की प्रभुता की

स्थापना एव स्वायत्तता पर्याप्त विवादास्पद सिद्ध हुईं। जहाँ तक चण्डीगढ के हस्तान्तरण का प्रश्न था आकली दल चण्डीगढ को तो लेना चाहता था, परन्तु उसके बदले मे पजाब के हिन्दी–भाषी क्षेत्र को हरियाणा को हस्तातरित नही करना चाहता था। इसी प्रकार रावी–व्यास नदी के जल के बँटवारे के प्रश्न पर हरियाणा और राजस्थान ने कठोर दृष्टिकोण अपनाया। इस मामले को सन् 1981 ई० मे न्यायाधिकरण द्वारा निर्णय कर दिया गया, जिसे पजाब ने स्वीकार नही किया। 24 जुलाई, 1985 ई० को पजाब समझौता सम्पन्न हआ, जिसके तहत चण्डीगढ पजाब को मिलना था और इसके बदले मे हरियाणा को पजाब के 70,000 वर्ग किमी के हिन्दी–भाषी क्षेत्र हस्तातरित किये जाने थे, परन्तु यह समझौता कभी भी अपनी मूल भावना मे आज तक लागू नही किया जा सका है।

व्यक्तिगत अस्मिता और पहचान बरकरार रखने के निमित्त चलाया गया आन्दोलन गोरखालैण्ड आन्दोलन था, जिसका सचालन सुभाष घीसिग के नेतृत्व वाले "गोरखालैण्ड नेशनल लिबरेशन फ्रण्ट" द्वारा किया गया। ऑल बोडो स्टूडेन्ट यूनियन (A B S U) द्वारा बोडोलैण्ड नाम से एक पृथक राज्य की स्थापना को लेकर चलाया गया आन्दोलन सामाजिक प्रादेशिकवाद का एक नमूना है। सामाजिक प्रादेशिकवाद का एक उदाहरण बोडो आन्दोलन है बोडो लोग जब यह देखते हैं कि लुसाई पर्वत श्रेणियो मे मिजो, नागा पर्वत श्रेणियो मे नागा और मेघालय मे खासी, जयन्तिया और गारो आदिवासी जातियॉ अपनी पृथक पहचान स्थापित करने मे सफल हुए है तो उन्हे विभेद-पूर्ण व्यवहार के कारण तीव्र असंतोष एव आक्रोश होता है। असम के ही करबी एलाग और उत्तरी कछार पर्वत श्रेणियो में आदिवासी स्वायत्तशासी जिला परिषदो के कारण कमोवेश रूप से स्वायत्तता प्राप्त कर सके हैं, परन्तु इस प्रक्रिया मे बोडो जैसे आदिवासी समूहों को कोई सहभागिता नही प्राप्त हो सकी है। इस विभेद-पूर्ण व्यवहार से बोडो जनजाति मे सामाजिक प्रादेशकिवाद का जन्म हुआ।

उल्लेखनीय है कि बोडो एक जाति न होकर एक जातीय परिवार है जिसके अन्तर्गत कोच कछारी, मेच, लाल्लुग, दिमासो, गारो एवं घटिया इत्यादि जनजातिया सम्मिलित हैं। ऑल बोडो स्टूडेन्ट यूनियन के अनुमान के अनुसार (1993) असम मे कुल मिलाकर 65 लाख जनजातीय आबादी है, जिसमे से लगभग 40 लाख बोडो हैं। इस प्रकार सख्यात्मक दृष्टि से

तो बोडो असम का सबसे बडा आदिवासी समूह है ही, यह मैदानी जनजातियो का भी सबसे बडा समूह है। अधिकाशत इनका निवास स्थल ब्रह्मपुत्र नदी का उत्तरी किनारा है।

यद्यपि आन्दोलन का प्रारम्भ एक पृथक राज्य की मॉग के साथ हुआ था, परन्तु आन्दोलन अन्तत निम्नलिखित तीन मॉगो पर सकेन्द्रित हो गया–

(A) ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट पर बोडो समुदाय के लिए एक पृथक होमलैण्ड की स्थापना,

(B) ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तट पर मैदानी जनजातियो के लिए जिला परिषद की स्थापना, तथा

(C) कर्बी–एलाग की बोडो–कछारी जनजाति को सविधान की छठी अनुसूची मे सम्मिलित किया जाना।

अन्तत 20 फरवरी, 1993 ई० को केन्द्र सरकार, असम सरकार और ऑल बोडो स्टूडेन्ट यूनियन के मध्य हुए त्रिपक्षीय समझौते द्वारा यह निर्णय लिया गया कि बोडो बाहुल्य क्षेत्रो के प्रशासन के लिए "बोडो स्वायत्त परिषद्" का गठन किया जायेगा। इसके बावजूद भी बोडो आन्दोलनकारी पुन आन्दोलन की धमकी दे रहे हैं क्योंकि वे परिषद् के अधिकार क्षेत्र मे और अधिक गॉवो को सम्मिलित करने की मॉग कर रहे हैं, जिसके लिए राज्य सरकार सहमत नही है। झारखण्ड आन्दोलन भी सामाजिक प्रादेशिकवाद का एक विशिष्ट नमूना है, जहॉ आदिवासी अपनी सास्कृतिक अस्मिता पर गैर–आदिवासियों द्वारा आक्रमण से चिन्तित हैं।

सन् 1979 ई० मे प्रारम्भ असम आन्दोलन भी एक सामाजिक आन्दोलन का एक नमूना है। इसके मूल में ऑल असम स्टूडेन्ट यूनियन (A A S U) और ऑल असम गण सग्राम परिषद (A A G S P) की यह मॉग थी कि असम से विदेशियो को बाहर निकाला जाये। विदेशी किसे माना जाये? इस बिन्दु पर सरकार और उपर्युक्त दोनो संगठनों मे मत–वैभिन्न था। सरकार सन् 1971 ई० को आधार वर्ष (Cut off Year) बनाना चाहती थी, जबकि आन्दोलनकारी सन् 1951 ई० को। बाद मे सरकार सन् 1967 ई० को आधार वर्ष

मानने को तैयार हो गई, परन्तु आन्दोलन जारी रहा। हिसात्मक घटनाओ के मध्य सन् 1983 ई० मे असम विधान सभा के चुनाव हुए। अतत 15 अगस्त, 1985 ई० को केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और आन्दोलनकारियो के मध्य त्रि–पक्षीय असम समझौते पर हस्ताक्षर हुए, जिसके तहत 1 जनवरी, 1966 ई० को आधार तिथि मानी गयी। यह भी प्राविधानित किया गया कि 1 जनवरी, 1966 ई० से 24 मार्च, 1971 ई० के मध्य जो विदेशी असम मे आये हैं उनके नाम मतदाता सूची मे आगामी 10 वर्षों के लिए निकाल दिये जायेगे। इसके अतिरिक्त जो विदेशी असम मे 25 मार्च, 1971 ई० को या इसके बाद आये हैं, उन्हे राज्य से निष्कासित कर दिया जायेगा। पूरे अन्दोलन की पृष्ठभूमि मे मुख्य कारण यह था कि आन्दोलनकारियो की दृष्टि मे असम मे बडी सख्या मे नेपाली, सथाल, बगाली, बिहारी, पजाबी, तथा बाग्लादेशी मुस्लिमो के आ जाने के कारण असम के मूल निवासियो की अस्मिता खतरे मे पड गयी थी।

4.2.4 राजनीतिक प्रादेशिकवाद

जब राजनीतिक कारणो से क्षेत्र विशेष के लोग राजनीतिक एव आर्थिक सुविधाओ हेतु अपने क्षेत्र के लिये अधिक मॉग करते हैं, तो उसे राजनीतिक प्रादेशिकवाद कहा जा सकता है। भारत मे अधिकतर प्रादेशिकवाद राजनीति से जुडा हुआ होता है। जिसे राजनीतिक दलो का पोषण प्राप्त होता है। वास्तव मे कोई भी प्रादेशिकवाद का आन्दोलन राजनीतिक दलों के समर्थन के बिना चलाया जाना सभव नहीं होता है। यह राजनीतिक दल एव नेता ही हैं जो ऐसे आन्दोलनों को जन्म देते हैं, उनका पोषण करते हैं एव उन्हे अपने गतव्य उद्देश्य तक ले जाने मे सहयोग करते हैं। इन आन्दोलनों के पीछे उनके व्यक्तिगत एवं राजनीतिक स्वार्थ होते हैं। इसे कुछ इस प्रकार समझा जा सकता है। सुभाष घीसिंग जिन्हे गोरखालैण्ड आन्दोलन मे मुखिया के रूप मे काफी प्रसिद्धि मिली, पश्चिम बंगाल की राजनीति मे कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखते थे। ज्योति वसु आदि मूर्धन्य राजनीतिक नेताओ के सामने उनका कोई महत्व नहीं था। परन्तु गोरखालैण्ड आन्दोलन के दौरान उन्हें जो प्रसिद्धि मिली उसके तहत वे गोरखालैण्ड हिल कौसिल के चेयरमैन बन गये एव यदि कहीं अलग राज्य का निर्माण होता तो वे निसन्देह उसके प्रथम मुख्यमंत्री भी बन जाते। इसी तरह बहुत से राजनीतिक दलों के नेता हैं जो अपने राजनीतिक कद को ऊँचा करने के लिए एवं

राजनीतिक स्वार्थों हेतु सदा प्रादेशिकवाद के आन्दोलनो को परोक्ष रूप मे एव कभी–कभी प्रत्यक्ष रूप मे समर्थन देते रहे हैं। इस प्रकार राजनीतिक प्रादेशिकवाद वास्तव मे प्रादेशिकवाद का सबसे निकृष्टतम एव भयानक रूप है जिस पर अकुश लगाना सबसे दुष्कर कार्य है। इस पर नियन्त्रण किये बिना प्रादेशिकवाद को रोके जाने मे भी काफी कठिनाई आती रहेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

चन्द्र, विपिन, 2002 **आजादी के बाद का भारत**, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

जैन, एस० एन०, 1997 **भारतीय सविधान शासन और राजनीति**, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

सईद, एस० एम०, 1996 **भारतीय राजनीतिक व्यवस्था**, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।

अध्याय–5

प्रादेशिकवाद का स्थानिक प्रतिरूप

प्रादेशिकवाद का स्वरूप उदार से उग्र हो सकता है। दूसरे शब्दो मे इसका स्वरूप इतना उदार हो सकता है कि वह कई समान राष्ट्रो को अपनी बाहो मे समेट ले और सदा राष्ट्रीय हितो को ध्यान मे रखते हुए क्रियाशील हो। इसके विपरीत इसका स्वरूप इतना उग्र हो सकता है कि वह अपने क्षेत्र को ही सर्वोपरि मानकर अपने हितो के सम्मुख राष्ट्रीय हितो की बलि चढाने मे जरा भी सकोच न करे। इन दोनो अतिरेकताओ के बीच प्रादेशिकवाद के अनेक स्वरूप हो सकते हैं। प्रादेशिकवाद की भावना विभिन्न क्षेत्रो के लोगो मे अथवा एक ही क्षेत्र के सभी लोगो मे समान न होकर अलग–अलग होती है। उदाहरणार्थ, भारत के उत्तरी क्षेत्र के लोग अपनी प्रादेशिक विरासत के सम्बन्ध मे जितना अधिक जागरूक हैं, उतनी जागरूकता मध्य भारत के क्षेत्र के लोगो मे नहीं देखी जाती है अथवा उनकी वह जागरूकता दक्षिणी क्षेत्र के लोगो की उग्र जागरूकता के सामने फीकी लगती है। उसी प्रकार यह नही कहा जा सकता कि दक्षिण क्षेत्र के सभी लोगो मे अपनी प्रादेशिक विरासत के प्रति समान सचेतता है। विभिन्न लोगो मे यह सचेतता कम या अधिक, उदार या उग्र हो सकती है। (मुकर्जी, 2001, पृ० 425)।

भारतीय राजनीति मे प्रादेशिकवाद की प्रवृत्ति के अनेक रूप हैं, जिसमे भारतीय संघ से पृथक् होने की मॉग अपने लिए पृथक् राज्य की मॉग, क्षेत्रीय भाषाई विवाद, अन्तर्राज्यीय विवाद, क्षेत्रीय आर्थिक टकराव, राजनीतिक नेतृत्व और क्षेत्रीय राजनीतिक दलो का अस्तित्व प्रमुख हैं, परन्तु इनमे से आज प्रादेशिकवाद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष पृथक् राज्य की मॉग है जो भारतीय राजनीति को प्रभावित कर देश की एकता एव अखण्डता को खतरा उत्पन्न कर रहा है, जिस पर विचार करना अति आवश्यक है।

पिछले कुछ वर्षों से देश में कम से कम दस–बारह नए राज्यो की मॉग उठने लगी हैं यह मॉग मुख्यत बडे राज्यो में उठ रही है। जैसे पश्चिम बगाल में गोरखालैण्ड की मॉग, असम मे बोडोलैण्ड, महाराष्ट्र मे विदर्भ, आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना, मध्य प्रदेश में बुन्देलखण्ड

तथा उत्तर प्रदेश मे हरित प्रदेश की मॉग आदि। वर्तमान अध्याय मे प्रादेशिकवाद के स्थानिक प्रतिरूप के विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

5.1 भारतीय संघ से अलग होने की माँग

भारतीय सघ से अलग किये जाने की मॉग, प्रादेशिकवाद की सर्वाधिक गम्भीर अभिव्यक्ति है। वस्तुत यह देश की एकता और अखण्डता के मूल सिद्धान्तो एव विचारधारा को ध्वस्त कर देने के समान है। भारतीय सघ से अलग होने की मॉग देश के निम्न भागो मे देखी जा रही है।

5.1.1 जम्मू–कश्मीर

विभाजन के समय भारत मे दो प्रकार की शासन प्रणालियॉ काम कर रही थी प्रान्तीय व्यवस्था और देशी रियासत। प्रान्त ब्रिटिश भारत के नाम से जाने जाते थे और उनका शासन सीधे ब्रिटिश ससद के हाथो में था। देशी रियासतो की सख्या 562 थी और वे ब्रिटेन के राजवश द्वारा शासित थे। 15 अगस्त, 1947 ई० को सत्ता का हस्तान्तरण करते समय ब्रिटिश सरकार ने इसके लिए दो प्रकार के तरीके अपनाये। ब्रिटिश भारत का द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त के आधार पर भारत और पाकिस्तान के रूप में विभाजन कर दिया गया जबकि देशी रियासतो का भाग्य 12 मई, 1946 ई० के कैबिनेट मिशन ज्ञापन की व्यवस्थाओ के अनुरूप तय किया गया। इस ज्ञापन के अनुसार इन सभी देशी रियासतो (जम्मू–कश्मीर, जूनागढ तथा हैदराबाद को छोडकर) ने भारत या पाकिस्तान मे विलय को मान लिया। देशी रियासतो पर द्विराष्ट्रवाद का सिद्धान्त लागू नही किया गया यानि साम्प्रदायिक आधार पर उनका विभाजन नही किया गया। ब्रिटिश ससद द्वारा 3 जून, 1947 ई० को पारित योजना मे इसे स्पष्ट कर दिया गया था। कश्मीर के महाराजा ने 15 अगस्त, 1947 ई० तक भारत या पाकिस्तान मे से किसी एक में विलय का अनुमोदन नही किया। उन्होने पाकिस्तान के साथ एक समझौता अवश्य किया जिसे यथास्थिति समझौता (स्टैंडस्टिल एग्रीमेट) कहते हैं। समझौता वार्ता के लिए पर्याप्त समय न होने के कारण भारत के साथ उनका इस तरह का कोई समझौता न हो सका। इधर पाकिस्तान कश्मीर पर कब्जा करने के लिए लालायित हो उठा। उसने एक पक्षीय रूप से इस समझौते को भंग कर दिया और

कश्मीर को आवश्यक वस्तुओ की आपूर्ति रोक दी। कश्मीर पर पाकिस्तान मे विलय के लिए अधिक दबाव बढाने के उद्देश्य से 'जिहाद' और 'इस्लाम खतरे मे है' के नारो के साथ कश्मीर पर कबाइली हमला किया गया। पाक सेना ने न केवल उनका मार्गदर्शन किया, बल्कि इन हमलावरो को हथियार, गोलाबारूद और परिवहन सुविधाये उपलब्ध करायी (शर्मा, 1999, पृ० 6)।

जम्मू–कश्मीर राज्य मे मुस्लिम धर्म के लोग बहुसख्यक मे हैं। उत्तर भारत के इस राज्य का क्षेत्रफल 86,024 वर्ग मील है और इसको, 'पृथ्वी का स्वर्ग' कहा जाता है। परन्तु दुर्भाग्यवश भारत विभाजन के बाद से कश्मीर, भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव और शत्रुतापूर्ण सम्बन्धो का कारण रहा है। कश्मीर पर पाकिस्तान के समर्थन से कबायलियो के आक्रमण से कुछ ही समय पूर्व पाकिस्तान ने महाराजा हरि सिह से रियासत के, पाकिस्तान मे विलय के लिए एक अन्तिम प्रयास किया था। परन्तु महाराजा हरि सिह ने जल्दबाजी मे कोई निर्णय लेने से इनकार कर दिया। इसके तुरन्त बाद 22 अक्टूबर 1947 ई० को कश्मीर पर कई ओर से आक्रमण शुरू किया गया। पाकिस्तान के सीमा प्रान्त के ये कबायली अच्छी तरह प्रशिक्षित थे और पॉच दिनो मे आक्रमणकारी श्रीनगर से केवल 25 (40 कि०मी०) मील दूर बारामूला तक पहुॅच गये। आक्रमण से घबराए हुए महाराजा हरि सिह ने भारत मे तुरन्त विलय की प्रार्थना की। महाराजा ने केन्द्र को विलय स्वीकार करके तुरन्त सेनाये भेजने के लिए कहा ताकि आक्रमण करने वालो को भगाया जा सके। महाराजा हरि सिह ने माना कि उनके सामने केवल दो विकल्प थे या तो आक्रमणकारियो को यह छूट दे दी जाये कि वे कश्मीर की जनता की लूट-मार करे या फिर कश्मीर का भारत मे विलय किया जाये। महाराजा की प्रार्थना को भारत ने 27 अक्टूबर, 1947 ई० को स्वीकार करके आक्रमण का सामना करने के लिए सेना को हवाई जहाजो के द्वारा कश्मीर भेज दिया। राज्य के विलय की प्रार्थना स्वीकार करते हुए भारत ने यह कहा कि आक्रमणकारियो को खदेड देने के बाद विलय के प्रश्न पर राज्य की जनता की इच्छा पूछी जायेगी। पाकिस्तान ने कश्मीर के विलय को स्वीकार नही किया। पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमन्त्री लियाकत अली खान ने तो कहा कि कश्मीर का भारत में विलय राज्य की जनता पर एक धोखा था जो कि एक बुजदिल महाराजा ने भारत सरकार की आक्रामक सहायता से किया था। उल्लेखनीय है कि

पाकिस्तान ने आक्रमण किया और उसने भारत को आक्रामक कहना शुरू कर दिया (खन्ना एव अरोडा, 1997, पृ० 89–90)।

भारत पाकिस्तान के साथ सीधा युद्ध नही चाहता था। 1 जनवरी, 1948 ई० को भारत ने यह मामला सयुक्त राष्ट्र सघ में उठाया। जनवरी, 1949 ई० मे सयुक्त राष्ट्र सघ ने 'युद्ध विराम रेखा' के माध्यम से युद्ध बन्द करवाया। युद्ध विराम रेखा के फलस्वरूप कश्मीर राज्य का दो-तिहाई क्षेत्र जहाँ 4/5 जनसख्या निवास करती थी, भारत के नियन्त्रण मे आया तथा युद्ध विराम रेखा पर सयुक्त राष्ट्र पर्यवेक्षको की नियुक्ति की गयी। इसके पश्चात् पाकिस्तान जातीय, राजनीतिक आर्थिक आदि तथ्यो के आधार पर अपना अधिकार प्रस्तुत करने लगा। सयुक्त राष्ट्र सघ ने इसके सम्बन्ध में अनेक प्रयत्न किये, किन्तु अन्त मे निराशा ही हाथ लगी। जनमत सग्रह का भी प्रश्न आया किन्तु कार्यान्वित नहीं हुआ। भारत मे कश्मीर का कानूनी विलय होने के कारण किसी प्रकार का जनमत सग्रह युक्तिसगत नही लगता (सक्सेना, 1997, पृ० 316)।

कश्मीर के पाकिस्तान मे विलय की मॉग के समर्थन मे, पाकिस्तान सरकार ने समय–समय पर कई तर्क दिये हैं। पहला, दो राष्ट्रो के सिद्धान्त के आधार पर पाकिस्तान का तर्क है कि कश्मीर मे मुसलमानो की काफी अधिक जनसख्या होने के कारण उसका स्वाभाविक स्थान पाकिस्तान में है। ब्रिटिश भारत के विभाजन का आधार यही था कि मुस्लिम बहुसख्या वाले प्रान्तो को मिलाकर, पाकिस्तान का निर्माण हुआ, इसलिए कश्मीर को पाकिस्तान का ही अग होना चाहिए। दूसरा, यह तर्क दिया गया कि पाकिस्तान में बहने वाली तीन नदियो सिन्धु, झेलम और चिनाव का उद्‌गम कश्मीर मे है। पाकिस्तान की कृषि सिचाई पर निर्भर करती है इसलिए भी कश्मीर को पाकिस्तान का अंग होना चाहिए। यदि कश्मीर मे कोई अमैत्रीपूर्ण सरकार बनती है, जो पाकिस्तान में पानी नहीं आने देगी, तो उसकी अर्थव्यवस्था बर्बाद हो जायेगी। इसलिए इनके उद्‌गम को भारत मे नही रहने दिया जा सकता। तीसरे, चूँकि पाकिस्तान और जम्मू–कश्मीर की आर्थिक निर्भरता एक दूसरे पर थी इसलिए कश्मीर को पाकिस्तान से अलग रखने पर, दोनो की अर्थव्यवस्था संकट में पड़ जायेगी। चौथे, भौगोलिक तौर पर कश्मीर पाकिस्तान के अधिक निकट एवं अभिगम्य है। पाकिस्तान का तर्क है कि कश्मीर की काफी लम्बी सीमा पाकिस्तान के साथ मिलती है।

जबकि केवल तीस मील (50 कि० मी०) का एक टुकडा कश्मीर को भारत के साथ जोडता है, इसलिए भी कश्मीर को पाकिस्तान मे होना चाहिए। अन्तिम, पाकिस्तान की सैनिक शक्ति के लिए कश्मीर बहुत उपयोगी है। न केवल पाकिस्तान सेना मे बडी सख्या मे कश्मीरी जवान थे बल्कि पाकिस्तान की सुरक्षा की रणनीति भी कश्मीर को पाकिस्तान के अग के रूप मे रखने की है। कश्मीर को भारत मे छोडना पाकिस्तान के लिए खतरनाक है (खन्ना एव अरोडा, 1997, पृ० 96–97)।

भारत ने दो राष्ट्रो के सिद्धान्त को कभी नहीं माना। भारतीय नेताओ ने यह कभी भी स्वीकार नही किया कि हिन्दुओ और मुसलमानो के लिए अवश्य ही दो राज्य होने चाहिए। भारत की प्रतिबद्धता धर्म–निरपेक्ष नीति के प्रति है। विभाजन के समय धर्म के आधार पर जनसख्या की अदला–बदली का कोई विचार नहीं था। परन्तु पाकिस्तान मे अधिकतर अल्पसख्यको को अपने घर और सम्पत्ति छोडकर भारत आना पडा था। भारत धर्म को राज्य का आधार नहीं मानता है। भारतीय नेताओ ने देश का विभाजन हिसा को रोकने के लिए स्वीकार किया था, धर्म के आधार पर नहीं। इसलिए कश्मीर को बहुसख्यक लोगो के धर्म के आधार पर पाकिस्तान का भाग नहीं बनाया जा सकता। पाकिस्तान का यह तर्क कि उसकी तीन मुख्य नदियो का उद्‌गम कश्मीर मे है, स्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तव मे केवल झेलम कश्मीर से निकलती है। सिन्धु और सतलज का उद्‌गम तिब्बत में होता है। इसके अतिरिक्त यह घ्यान देने योग्य है कि देशों की सीमाये कभी भी नदियो के स्रोत के आधार पर तय नही की जातीं। यूरोप मे अनेक ऐसी नदियॉ हैं जो कि विभिन्न देशो मे होकर बहती हैं। इसलिए पाकिस्तान के दावे का कोई महत्व नही है। पारस्परिक आर्थिक निर्भरता, कश्मीर और पाकिस्तान के दावे को उचित नही ठहरा सकती। पाकिस्तान और भारत की एक दूसरे पर आर्थिक निर्भरता, कश्मीर और पाकिस्तान की पारस्परिक निर्भरता से, कहीं अधिक है। वास्तव मे यह तर्क भी निराधार है क्योंकि ससार के सभी देशो की एक दूसरे पर निर्भरता बढ रही है। इसी प्रकार पाकिस्तान का यह तर्क कि कश्मीर की अधिकतर सीमा पाकिस्तान के साथ लगती है इसलिए उसे पाकिस्तान का भाग होना चाहिए, यह भी तर्क सगत नहीं है। अगर पाकिस्तान की यह बात मान भी ली जाये तो बहुत सारे देश अपनी स्वतन्त्रता खो बैठेगे। पाकिस्तान का यह कहना कि उसकी रक्षा के लिए बहुत से सैनिक कश्मीर से लिये

जाते हैं, भी अर्थहीन है क्योकि पाकिस्तान की एक मजबूत सेना है जिसका कोई भी सम्बन्ध कश्मीर की सीमित आबादी से नही हो सकता (खन्ना एव आरोडा, 1997, पृ० 96–97)।

6 फरवरी, 1954 ई० को कश्मीर की सविधान सभा ने भारत मे इस राज्य के विलय का अनुमोदन कर दिया। 14 मई, 1954 ई० को भारत के राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 370 की कानूनी व्यवस्थाओ को ध्यान मे रखते हुए एक राजाज्ञा प्रसारित करके कश्मीर को भारतीय सघ का एक अभिन्न अग बना दिया। 19 नवम्बर, 1954 ई० को राज्य के सविधान का प्रारूप तैयार किया गया तथा इसे स्वीकार भी कर लिया गया। इस प्रकार कश्मीर को भारत का अविच्छिन्न भाग बना दिया गया। 26 जनवरी, 1957 ई० को भारत ने इस राज्य के विलय को कानूनी रूप दे दिया और इस अधिनियम को अटल बना दिया गया। 20 जनवरी, 1960 ई० को यह राज्य भारत के सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र मे आ गया। अत सुरक्षा की दृष्टि से कश्मीर का क्षेत्र अब दोनो विरोधी देशो के लिए अति महत्व का क्षेत्र बन गया है। यदि सैनिक दृष्टि से देखा जाये तो जम्मू–कश्मीर को तनाव के स्थल के रूप मे ही परिवर्तित कर दिया गया है, क्योकि यहॉ दोनो विरोधी सेनाये एक दूसरे के सामने हैं। मई, 1999 ई० मे कारगिल सेक्टर मे पाकिस्तान के आक्रामक रुख से भी हमे पाकिस्तान के इरादे की झलक मिल जाती है। सन् 1954 ई० तक दोनो देशो के लिए कश्मीर राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन गया और यदि अब किसी ने भी खाली करने की बात को स्वीकार कर लिया तो यह उस देश के विघटन का कारण बन सकता है (श्रीवास्तव, 2000, पृ० 56–57)।

यदि इस समस्या पर गम्भीरता से विचार किया जाये तो यह कहा जा सकता है कि जो मूल तत्व है वह दोनो राष्ट्रो के मध्य अविश्वास का है। यदि इसको समूल रूप से नष्ट कर दिया जाये तो कश्मीर समस्या एक गौण स्थान प्राप्त कर लेगी और यदि ऐसा नही किया जा सका तो समस्या ज्यो की त्यो बनी रहेगी। भारत हमेशा इस बात पर बल देता रहा है कि दोनो देशो से सम्बन्धित सभी समस्याओ को एक साथ सुलझाने का प्रयास किया जाये। दूसरी ओर पाकिस्तान हमेशा यह कहता रहता है कि वह कश्मीर की समस्या को एक अलग प्रश्न के रूप मे ही लेता है। दोनो देशों को यह समझ लेना चाहिए कि विदेशी हस्तक्षेप से केवल युद्ध की सम्भावनाये ही बढेंगी। इससे चिरस्थायी शान्ति की स्थापना कदापि नहीं की जा सकती। यह अधिक अच्छा होता यदि दोनो देशों को अपने अपने विकास

के लिए एव आर्थिक क्षेत्र मे क्रान्ति के लिए पर्याप्त समय व अवसर प्रदान कर दिया जाता ताकि आन्तरिक सुरक्षा, राष्ट्रीय परिपक्वता तथा आर्थिक विकास द्वारा उनकी आशकाओ एव भय को समाप्त किया जा सके (Rao, 2000, p 28)।

भारतीय सविधान के अनुच्छेद 370 के तहत कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा दिया गया है। भारतीय सविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार ससद राज्यो के नाम, क्षेत्रफल, सीमाओ मे परिवर्तन कर सकती है किन्तु कश्मीर के मामले मे भारतीय ससद असहाय सी है। अनुच्छेद 370 की उपस्थिति देश की एकता मे बाधक तो है ही वरन् अप्रत्यक्ष रूप से अन्य राज्यो को भी पृथक् अस्तित्व प्राप्त करने के लिये प्रेरित करता है। आम धारणा है कि यदि सविधान निर्माताओ ने धारा 370 का निर्माण करके जम्मू–कश्मीर को भारतीय सघ मे विशेष स्थिति न प्रदान की होती तो आज वहॉ पाकिस्तान समर्थक तत्वो को खुलकर खेलने का मौका न मिलता और विद्रोह जैसी स्थिति न होती। स्थिति की गम्भीरता को तत्कालीन जनसघ एव जम्मू प्रजा परिषद ने समझा और धारा 370 को तत्काल रद्द करने के लिये सन् 1953 ई० मे जबरदस्त आन्दोलन छेडा। फलत· प० जवाहर लाल नेहरू के रुख और धारा 370 को खत्म करने की मॉग से शेख अब्दुल्ला उग्र हो गये और उन्होने भारतीय सघ से कश्मीर को अलग करने की धमकी दे डाली। परिणामस्वरूप तत्कालीन केन्द्र सरकार ने शेख अब्दुल्ला को गिरफ्तार करके कश्मीर की सत्ता बख्शी गुलाम मुहम्मद को सौंप दी। तत्पश्चात् नेतृत्व बदलता रहा परन्तु अनुच्छेद 370 ज्यों का त्यो बना रहा। इस अनुच्छेद के कारण कश्मीर और शेष भारतीय प्रदेशों के बीच एक ऐसी अपारदर्शी अभेद्य दीवार खडी हो गयी जिसके कारण वहॉ के लोगो के बीच सामान्य आवाजाही और आदान–प्रदान कभी नही हो सकता। कश्मीरियो के लिये शेष भारतीय प्रदेशो के लोग 'हिन्दुस्तान' से आने वाले पर्यटक मात्र बन कर रह गये और यहॉ निवास, सम्पत्ति बनाने के कानून से वचित कर दिये गये। शेष भारत के लोगो के लिये कश्मीर का महत्व सैरगाह से ज्यादा कभी नहीं बन सका। इस धारा के तहत कश्मीर राज्य का पृथक् ध्वज तथा अपना पृथक् सविधान भी है। कुछ वर्ष पहले तक तो कश्मीर मे राष्ट्रपति तथा प्रधानमन्त्री भी हुआ करते थे, किन्तु धीरे–धीरे इन पदो को समाप्त कर दिया गया। धारा 370 के अन्तिम भाग मे यह उल्लेख है कि जब भी कश्मीर की विधान सभा चाहे, तो भारत के राष्ट्रपति इस व्यवस्था को अपने अनुदेश से तुरन्त

समाप्त कर सकते हैं। वास्तव मे अनुच्छेद 370 के कारण कश्मीर को स्वायत्तशासी कहा जा सकता है (सिह, 1999, पृ० 387–388)।

स्वायत्तता का मुद्दा जम्मू–कश्मीर के क्षेत्रीय राजनीतिक दल नेशनल कान्फ्रेस और केन्द्र सरकार के बीच हमेशा विवाद का विषय रहा है। कश्मीर की स्वायत्तता का अर्थ है, उसे भारतीय सघ के नियमो और निर्देशो से मुक्त करके स्वय के कानून बनाने की अनुमति देना। दूसरे शब्दो मे कश्मीर को एक स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया जाये। दूसरी ओर, भारतीय सविधान की प्रस्तावना मे स्पष्ट रूप से घोषित किया गया है सभी भारतीय नागरिक, भारतीय सघ की एकता, अखण्डता और सम्प्रभुता की रक्षा के लिए वचनबद्ध हैं। अत कश्मीर की स्वायत्तता का प्रश्न भारतीय सविधान की मूल भावनाओं के विरूद्ध है और देश की सम्प्रभुता के साथ छल है। नवम्बर, 1996 ई० मे कश्मीर के तत्कालीन मुख्यमत्री फारूक अब्दुल्ला ने स्वायत्तता के विषय पर दो पृथक् समितियो के गठन की घोषणा की। एक समिति राज्य के अन्दर क्षेत्रीय स्वायत्तता पर विचार करने के लिए बनाई गई एव दूसरी समिति भारत के सविधान के अन्तर्गत जम्मू–कश्मीर को अधिकतम स्वायत्तता देने के लिए गठित की गई। इन दोनो समितियो का गठन करते समय मुख्यमन्त्री ने कहा था कि इनकी रिपोर्टों पर व्यापक बहस करायी जायेगी। जनता के बीच, बुद्धिजीवियो के समक्ष और विधानमण्डल के दोनो सदनो –विधान-सभा एव विधान-परिषद मे व्यापक विचार–विमर्श के बाद एक सर्वसमर्थन बनाकर इन रिपोर्टों को केन्द्र सरकार के पास भेजा जायेगा। लेकिन राज्य ने इस प्रक्रिया से गुजरे बिना केन्द्र एव राज्य सरकार के सम्बन्धों पर पुनर्विचार के लिए बनी राज्य स्वायत्तता समिति की रिपोर्ट न केवल केन्द्र सरकार सन् 2000 ई० मे भेज दी, बल्कि इसकी सिफारिशो को लागू करने की मॉग को लेकर विद्रोही तेवर भी दिखाना शुरू कर दिया।

शुरूआत मुख्यमन्त्री के अत्यन्त निकट समझे जाने वाले तत्कालीन लोक निर्माण मन्त्री अली मोहम्मद सागर ने की। उन्होने कहा कि फैसला केन्द्र सरकार को करना है कि वह आतकवादियो की मॉग आजादी को मानती है या नेशनल काफ्रेंस की मॉग अधिकतम स्वायत्तता को। खुद मुख्यमन्त्री डॉ० फारूक अब्दुल्ला ने कहा, "सन् 1953 ई० में अधिकतम स्वायत्तता माँगने के कारण ही केन्द्र सरकार ने उनके वालिद शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को गिरफ्तार कर लिया था और अब वे भी इसी माँग को लेकर गिरफ्तार होने को तैयार हैं।"

साथ ही मुख्यमन्त्री के मुद्दे पर केन्द्र सरकार तथा नेशलन काफ्रेस हमेशा से ही अपने–अपने तरीको से लाभान्वित होने का प्रयास करते रहे हैं। स्वायत्तता एक ऐसा भावनात्मक मुद्दा है, जिससे मतदाताओ का ध्रुवीकरण होता है। सघ परिवार अपनी शैली के अनुरूप डॉ० फारूक अब्दुल्ला को देशद्रोही कहने लगा है और उनकी स्वायत्तता की मॉग को आजादी से भी ज्यादा खतरनाक बताकर उनकी सरकार को बर्खास्त कर जेल भेजने की मॉग करने लगा है। काग्रेस का कहना है कि दोनो 'नूरा कुश्ती' लडकर जनता को बेवकूफ बनाने की कोशिश कर रहे हैं। इस मुद्दे के नाम पर इन्हे अपनी–अपनी राजनीति चमकाने का मौका मिल गया है (अख्तर, 2000, पृ० 6)।

राज्य मे आतकवादी गतिविधयॉ बढ रही हैं, विदेशी आतकवादियो ने बडी सख्या मे घुसपैठ करके स्थानीय आतकवादियो का नेतृत्व सभाल लिया है, राज्य आर्थिक रूप से दीवालिया हो गया है, विकास कार्य ठप्प पडे हैं, भ्रष्टाचार सारी हदे पार कर गया है और आम आदमी को फिलहाल स्थिति सुधरने की कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही है। इस सकटकाल मे यदि राजनीतिक दल 'स्वायत्तता लूँगा' और 'नही दूँगा' जैसे युद्धघोषो मे लगे रहते हैं, जो जनता के लिए जले पर नमक छिडकने से कम नहीं है।

राज्य स्वायत्तता समिति की रिपोर्ट मे मॉग की गई है कि सन् 1953 ई० से पूर्व की उस स्थिति को बहाल किया जाये, जब केन्द्र के पास केवल तीन विषय रक्षा, विदेश मामले और दूरसचार ही थे। मुख्यमत्री का पदनाम वापस प्रधानमन्त्री किया जाये और राज्यपाल को सदर–ए–रियासत कहकर सम्बोधित किया जाये। उच्चतम् न्यायालय, निर्वाचन आयोग और नियत्रक एव महालेखा परीक्षक के अधिकार क्षेत्र से जम्मू–कश्मीर को बाहर रखा जाये। सन् 1953 ई० के बाद जो लगभग 300 कानून राज्य मे लागू हुए हैं, उन्हें वापस लिया जाये। जम्मू–कश्मीर का राज्यपाल विधानसभा चुनाव के लिए अधिसूचना तो जारी करता है, लेकिन मतदान नहीं कर सकता क्योकि वह यहॉ का स्थायी नागरिक नही है (खाती, 2000, पृ० 6)।

स्वायत्तता का मुद्दा चुनावी राजनीति मे अवश्य भारी उलटफेर करने की क्षमता रखता है, लेकिन इसे पूरी तरह राजनीतिक दलो पर छोडना कश्मीर और राष्ट्र के हित में नहीं है, क्योंकि यह मुद्दा सिर्फ इसी राज्य तक सीमित रहने वाला नहीं है। इसका असर देशव्यापी है।

सन् 1967 ई० मे जब देश के कई राज्यो मे सयुक्त विधायक दल की मिली जुली सरकारे बनी तो पहली बार मुख्यरूप से स्वायत्तता की मॉग उठाई गई थी। पूर्व प्रधानमन्त्री पी० वी० नरसिह राव ने कहा था कि कश्मीर को आजादी से कम कुछ भी दिया जा सकता है। लेकिन यदि कश्मीर को स्वायत्तता मिल जाती है और शेष राज्यो की स्थिति पूर्ववत् ही रहती है तो क्या यह राज्यो तथा केन्द्र के बीच विवाद का एक स्थाई मुद्दा नही बन जायेगा ? शेष राज्य इस स्थिति को किस तरह स्वीकार करेगे। स्वायत्तता राजनीति का नही, राष्ट्रनीति का सवाल है (अख्तर, 2000, पृ० 6)।

सामाजिक–सास्कृतिक रूप मे कश्मीर के तीन पृथक् भाग किये जाते हैं– प्रथम लद्दाख क्षेत्र –बौद्ध बाहुल्य, द्वितीय कश्मीर घाटी मुस्लिम बाहुल्य तथा तृतीय जम्मू क्षेत्र – हिन्दू बाहुल्य (चित्र 5 1)। इनमे से तीनो इकाइयॉ भौगोलिक क्षेत्र के रूप में हैं (चौहान, 1995, पृ० 281)। अभी भी जम्मू मे दो लाख मतदाता ऐसे हैं, जो लोक सभा में तो वोट देते हैं, लेकिन उन्हें विधानसभा मे वोट देने का अधिकार नही है। यानि वे भारत के नागरिक तो हैं लेकिन जम्मू–कश्मीर के नागरिक नही हैं। ये वे लोग हैं, जो विभाजन के कुछ समय बाद पाकिस्तान से भारत आये थे। केन्द्र तथा प्रत्येक राज्य मे 5 वर्ष बाद चुनाव होता है, लेकिन जम्मू–कश्मीर मे 6 वर्ष बाद चुनाव होता है। जम्मू–कश्मीर राज्य को 3 भागों मे बाटने की बात की जा रही है। जम्मू (क्षेत्रफल 26,293 वर्ग किमी०), कश्मीर (15,853 वर्ग किमी०) तथा लद्दाख (59,241 वर्ग किमी०)। लद्दाख को केन्द्रशासित प्रदेश बनाने की मॉग की जा रही है (वैद्य, 2002, पृ० 8)।

1950 के दशक के आरम्भ से लेकर आज तक कश्मीर कई प्रमुख समस्याओ से ग्रस्त रहा है जिसके परिणामस्वरूप जम्मू और कश्मीर के लोगो का न केवल राज्य के शासको बल्कि समूचे भारत से ही विलगाव बढता जा रहा है। वहॉ अच्छे और मजबूत प्रशासन का अभाव रहा है। सरकार और उसके विभिन्न विभाग भ्रष्टाचार और भाई भतीजावाद मे डूबे रहे हैं। सन् 1951 ई० मे हुए पहले चुनाव से लेकर आज तक हुए ज्यादातर चुनावों मे तिकडम और चुनावी धांधलियॉ बड़े पैमाने पर होती रही हैं जिनके परिणामस्वरूप जनता के बीच चुनावी प्रक्रिया और सम्पूर्ण राजनीतिक प्रणाली के प्रति अनास्था पनपी। इसलिए उन्हे संविधानेतर रास्तों को अपनाने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई।

N
जम्मू और कश्मीर
प्रशासकीय इकाइयाँ
ची न
गिलगित
जनजाति
राज्य क्षेत्र
चिलास
गिलगित
वजारत
पा कि स्ता न
लद्दाख
कुपवाड़ा
बारामूला
कारगिल
मुजफ्फराबाद
श्रीनगर
लेह
बडगाम
पुलवामा
पुछ
अनन्तनाग
ची न
राजौरी
उधमपुर
मीरपुर
जम्मू
कठुआ
हि मा च ल
प्र दे श
50 0 50 100
किलोमीटर
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
प्रान्तीय सीमा
जनपद सीमा
जनपद मुख्यालय
प्रान्तीय मुख्यालय
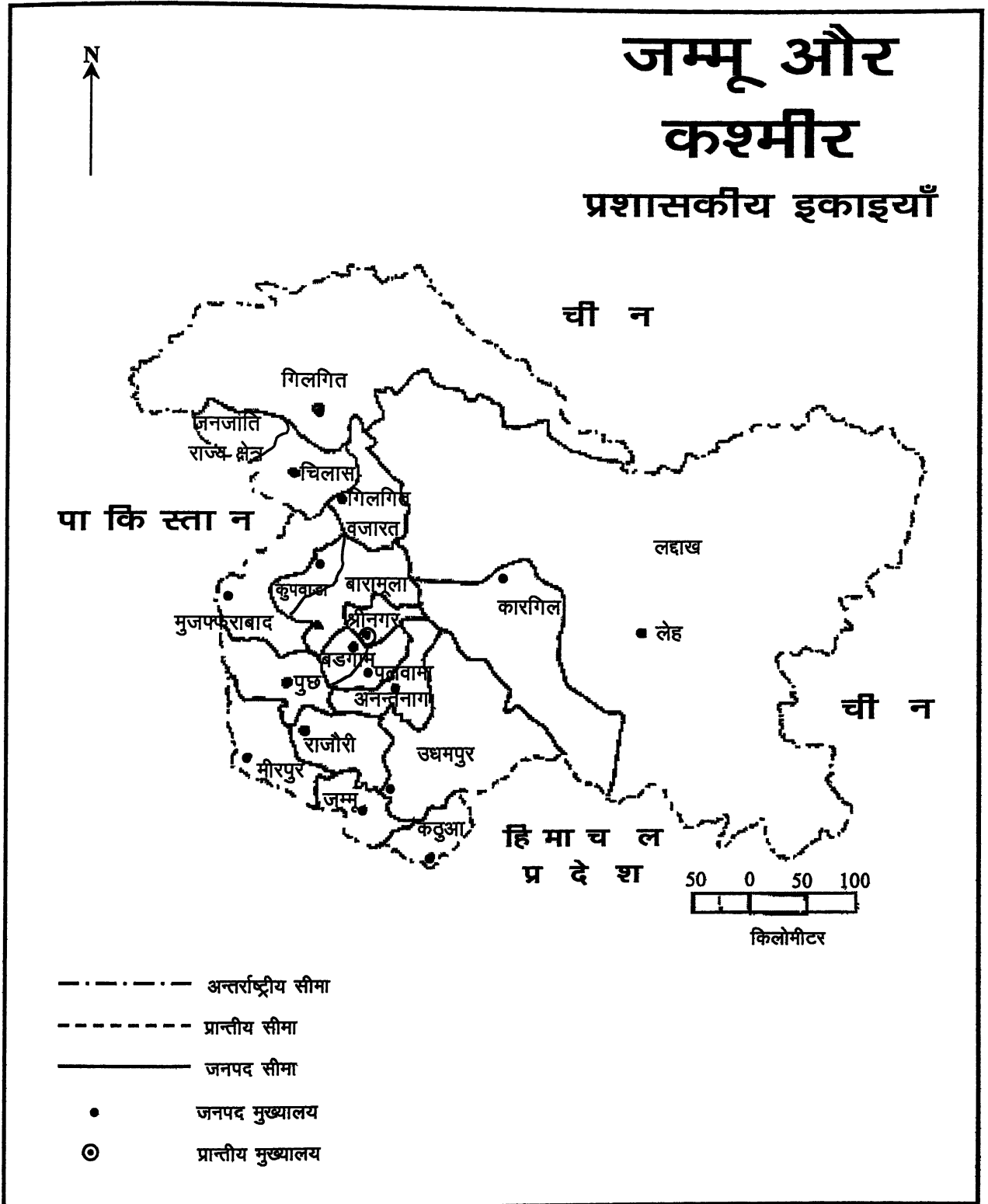
चित्र 5.1

वैसे भी यहाँ शुरू से ही लोकतन्त्र बहुत ही अपरिपक्व तरीके से सक्रिय रहा है तथा राज्य मे राजनीति और प्रशासन ने निरकुश स्वरूप ग्रहण कर लिया था। समय बीतने के साथ–साथ जैसे–जैसे पाकिस्तान समर्थित विद्रोह बढता रहा है वैसे–वैसे कश्मीर मे मानवाधिकारो का हनन भी बढता गया है। पाकिस्तान द्वारा सैनिक खतरे और तोड–फोड के मद्देनजर कश्मीर मे भारतीय सैनिको की व्यापक भूमिका एक आवश्यकता रही है, परन्तु इसका अर्थ नागरिक अधिकारो पर आधारित राजनीति की सक्रियता समाप्त होने के रूप मे कीमत की अदायगी भी रही है।

कश्मीर करीब–करीब हमेशा ही राजनीतिक अस्थिरता से ग्रस्त रहा है जिसका कारण और परिणाम दोनो ही बार–बार केन्द्रीय हस्तक्षेप और राजनीतिक तिकडमबाजी, अकुशल और भ्रष्ट नेताओ के एक गुट की जगह, दूसरे गुट की स्थापना, सरकारो की बर्खास्तगी और राष्ट्रपति शासन लागू करने के रूप मे सामने आया है। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य की जनता केन्द्र समर्थित सभी शासको को कठपुतली और राज्यपाल को केन्द्र सरकार का एजेट मानती है।

जम्मू और कश्मीर का भारत मे विलय अपरिवर्तनीय है, हालाकि पाक अधिकृत कश्मीर पर भारत का अधिकार पुन सम्भव नहीं दिखता। जहाँ आतकवाद और विद्रोह के खिलाफ कठोर कदम उठाना आवश्यक है वहीं आम जनता के नागरिक अधिकारों और मानवाधिकारो पर भी आँच नहीं आनी चाहिए। तनावपूर्ण भारत–पाक सम्बन्ध जम्मू और कश्मीर के ऊपर अपना गहरा और काला साया बनाये रखेगा। परन्तु इसी कारण से यह ज्यादा जरूरी हो जाता है कि कश्मीर मे एक साफ, मजबूत और जनवादी सरकार प्रदान की जाये जो पुलिस, सेना और अर्द्धसैनिक बलो की ज्यादतियों से मुक्त हो। हाल के चुनाव से पी०डी०पी० एव काग्रेस के सहयोग से मुफ्ती मुहम्मद सईद के नेतृत्व मे एक नई सरकार का गठन हुआ है। जिससे राज्य की जनता में कुछ नई उम्मीदे जगी हैं। देखना है कि यह सरकार कश्मीर समस्या के समाधान हेतु कैसा कारगर कदम उठा पाती है। स्थानीय स्वायत्तता की सीमा एक विवादास्पद मुद्दा है जिसका समाधान राज्य के लोगो की भावनाओं और भारत के सघीय सवैधानिक ढांचे को ध्यान रखते हुए करना होगा। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि राज्य में जनवादी प्रक्रिया किस प्रकार आम जनता की सम्पूर्ण

भागीदारी से विकसित होती है। कश्मीर समस्या का समाधान करना मुश्किल नही होगा यदि दो महत्वपूर्ण मानदण्डो को ध्यान मे रखा जाये। कोई भी लोकतन्त्र अपने किसी अग को खुद से अलग होने की इजाजत आसानी से नही देगा और कोई भी लोकतन्त्र अपने किसी भी हिस्से की जनता की इच्छाओ को लम्बे समय तक नजरअदाज करने मे समर्थ भी नहीं हो सकता है (चन्द्रा, 2000, पृ० 427–428)।

5.1.2 खालिस्तान

भारतीय सघ से अलग किये जाने की मॉग सर्वप्रथम सिख बहुसख्यक भूतपूर्व राज्य पेप्सू द्वारा प्रस्तुत की गयी थी। सन् 1956 ई० मे राज्यो के पुनर्गठन के उपरान्त द्विभाषी पजाब राज्य का गठन किया गया था। इसके गठन से असन्तुष्ट होकर अकाली नेता मास्टर तारा सिह ने पजाबी भाषी पृथक् राज्य के गठन की मॉग की। उल्लेखनीय है कि यद्यपि इस मॉग द्वारा भाषायी आधार पर पृथक् राज्य के गठन की मॉग की गयी थी, तथापि इस मॉग का मुख्य उद्देश्य सिखो के लिए ही पृथक् राज्य का गठन करना था। इस मॉग के प्रतिरोध मे आर्य समाज के नेताओ ने बृहत् पजाब के गठन की मॉग प्रस्तुत की। इस मॉग मे बृहत् पजाब मे पजाब, हिमाचल प्रदेश तथा पेप्सू के क्षेत्रो को सम्मिलित माना गया था। 20 वी शताब्दी के पाचवें तथा छठवे दशक मे इन दोनो समुदायों ने अपनी–अपनी मॉगो के समर्थन मे आन्दोलनात्मक रुख अपनाये रखा। अनेक हिसक घटनाओ के विपरीत भी जब इस आन्दोलन मे किसी भी पक्ष को सफलता नहीं मिली तो अकाली नेता सन्त फतेह सिह ने पृथक् पजाबी राज्य के गठन के लिये 25 सितम्बर, 1966 ई० को आत्मदाह करने की घोषणा की। तत्कालीन पजाब राज्य का विभाजन किया गया। लगभग 41 प्रतिशत क्षेत्र, जिसमे एक करोड पन्द्रह लाख की आबादी थी, नवगठित पंजाब राज्य में सम्मिलित किया गया। 35 8 प्रतिशत क्षेत्र, जिसमे 75 लाख की आबादी थी और जो प्रमुख रूप मे हिन्दी भाषी थी मे हरियाणा राज्य का गठन किया गया। शेष बचे हुए क्षेत्र, जिसकी जनसख्या 71 लाख थी, हिमाचल प्रदेश मे सम्मिलित कर दिया गया। चण्डीगढ किसी भी राज्य को नहीं दिया गया और उसे केन्द्र शासित इकाई के रूप में सघीय क्षेत्र मे अन्तर्गत रखा गया। इसी समय चण्डीगढ के विषय मे यह भी निश्चय किया गया कि जब पजाब फाजिल्का एवं अबोहार के भूभाग हरियाणा को देगा तो चण्डीगढ पजाब को दे दिया जायेगा।

पजाब का गठन तो हो गया, परन्तु जैसा कि प्राय होता है, सभी सिख नेता इससे सन्तुष्ट नही थे। इनमे उग्रवादी तत्व अब यह कहने लगे कि उन्हे पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त सिख राज्य स्थापित करके सन्तोष मिलेगा। यह मॉग निश्चय ही अतिवादी थी और भारत के सविधान की व्यवस्थाओ मे इसे स्वीकार नही किया जा सकता था। सन्त फतेह सिह अकाली दल मे उग्रवादी तत्वो का नेतृत्व कर रहे थे। अपनी नई मॉग के समर्थन मे विदेशी समर्थन की प्राप्ति के लिए वे अकाली दल के तत्कालीन महासचिव डॉ० जगजीत सिह के साथ कई देशो का भ्रमण किये। उनके इस कृत्य को सम्पूर्ण अकाली दल का समर्थन प्राप्त नही था। कुछ समयोपरान्त दल विरोधी नीति को अपनाने के आरोप मे सन्त फतेह सिह को अकाली दल से बहिष्कृत कर दिया गया।

यद्यपि सिखो के एक वर्ग ने सम्पूर्ण स्वायत्तता युक्त पृथक सिख राज्य की मॉग की थी, तथापि वे इस बात को भली–भॉति जानते थे कि इस मॉग को पूरा करना सम्भव नही है। इस दिशा बोध के कारण अकाली दल ने यह मॉग प्रस्तुत की कि राज्यो और केन्द्र के सम्बन्धो पर पुर्नविचार किया जाये और सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो, जिससे राज्य को अधिक स्वायत्तता और शक्तियॉ मिले। तमिलनाडु, पश्चिमी बगाल तथा जम्मू–कश्मीर भी इस समय राज्यो को अधिक अधिकार दिये जाने की मॉग कर रहे थे। पजाब भी उनके साथ हो लिया और केन्द्र पर दबाव डालने लगा। 28 अगस्त, 1977 ई० मे अकाली दल द्वारा अमृतसर मे आयोजित सामान्य अधिवेशन मे आनन्दपुर साहब प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए, यह मॉग की गयी कि प्रतिरक्षा, विदेश मामले एव नीति, सचार, रेलवे, मुद्रा के विषयो के अतिरिक्त सारे विषय केन्द्र द्वारा राज्यो को दिये जाने चाहिये। अकाली नेतृत्व ने यह मॉग भी की कि डलहौजी (जिला गुरूदासपुर), चण्डीगढ, पिन्जौर, नालागढ क्षेत्र, शाहाबाद एव गुहला ब्लाक (जिला करनाल), सिरसा, तोहाना तहसीले एव हिसार जिला का रतिया ब्लाक, कालका, अम्बाला, ऊना तहसील (जिला होशियारपुर) और राजस्थान के गंगा नगर जिले की छ तहसीले पजाब को दिये जाये। परन्तु सन् 1977 ई० मे अकाली दल द्वारा पंजाब में सत्ता ग्रहण करने के उपरान्त इस मॉग को पूरा करवाने के लिये अधिक जोर नही डाला गया। किन्तु सन 1980 ई० मे पजाब मे काग्रेस की सरकार बनने पर पुन सिखो के लिये अलग देश खालिस्तान की मॉग दुहरायी जाने लगी। अभी तक अकाली दल द्वारा ही इस मॉग को

उठाया जा रहा था, परन्तु अब पजाब मे काग्रेस का एक गुट भी इस मॉग को बुलन्द करने वालो मे शामिल हो गया। मार्च, 1981 ई० मे सिखो के 54 वे शिक्षा अधिवेशन मे खालिस्तान के गठन को समर्थन देने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। अप्रैल, 1981 ई० मे अकालियो की एक उपशाखा ने विश्व सिख अधिवेशन का आयोजन किया और इसमे स्पष्ट शब्दो मे स्वतन्त्र खालिस्तान राज्य की स्थापना करवाने का सकल्प लिया। सिखो का उदारवादी वर्ग इस अतिवादी मॉग का समर्थक नही था, परन्तु यह लोग आतक एव भय के कारण अपनी बात को स्पष्ट और प्रभावी ढग से नही कह पा रहे थे। अलगाववादियो ने एक सूत्रीय मॉग प्रस्तुत करते हुए कहा कि भारतीय सघ मे सिखो के साथ द्वितीय श्रेणी का व्यवहार किया जा रहा है और तुरन्त कार्यवाही करके सिखो को सम्मान और समानता दी जानी चाहिए। इसी सन्दर्भ मे आनन्दपुर साहब प्रस्ताव को लागू किये जाने की मॉग को लेकर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया गया। यह आन्दोलन प्रारम्भ के कुछ दिनो तक तो शान्तिपूर्ण रहा, किन्तु खालिस्तान की मॉग को अनुचित बताने का दोषी बनाते हुए पजाब केसरी नामक समाचार पत्र के सम्पादक लाला जगत नारायण की हत्या कर दिये जाने से मामला गम्भीर दिखायी देने लगा। इस आतकवादी मामले के सम्बन्ध मे सन्त जरनैल सिह भिण्डरावाला की गिरफ्तारी के लिए वारण्ट जारी किये जाने से गतिरोध बढ गया। भिण्डरावाला ने अमृतसर के मेहता चौक स्थित गुरूद्वारा मे शरण ले ली। धार्मिक सरक्षण की नीति के अनुसार गुरूद्वारा में पुलिस अथवा सैनिक बल प्रवेश नही कर सकते थे। प्रतिरोध के उपरान्त भिण्डरावाला ने पुलिस के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। उसके अनुयायी उग्र हो गये और विरोध स्वरूप पुलिस बल पर हमला करने लगे। पुलिस ने आत्मरक्षार्थ गोली चलाई, जिसके कारण दस व्यक्ति मारे गये और अनेकानेक घायल हुए। इसका विरोध और अपनी मॉगो को मनवाने की प्रक्रिया को जारी रखते हुए भिण्डरावाला की रिहाई के लिए पजाब मे "असहयोग आन्दोलन" छेड दिया गया। इस आन्दोलन के दौरान प्रदर्शन आदि का कार्यक्रम चलता रहा। खलिस्तान समर्थक दल खालसा के पॉच सदस्य सितम्बर, 1981 ई० मे भारतीय वायु सेवा के विमान को अपहृत करके लाहौर ले जाने मे सफल हुए। उन्होने भिण्डरावाला और खालसा दल के अन्य सदस्यो के साथ–साथ खालिस्तान समर्थक बन्दियो को रिहा करने की शर्त पेश की।

आतक और उत्तेजना को दृष्टिगत करते हुए, 15 अक्टूबर, 1981 ई० मे भिण्डरावाला को रिहा कर दिया गया और भारत सरकार ने स्पष्ट शब्दो मे यह कहा कि वह किसी भी दशा मे पृथक्तावाद को स्वीकार नही करेगी। सिखो के हितो के विषय मे विचार करने के लिए प्रधानमन्त्री के विशेष प्रतिनिधि के रूप मे सरदार स्वर्ण सिह ने अकाली नेतृत्व से बातचीत शुरू की। किन्तु बातचीत की प्रक्रिया द्वारा किसी समझौते पर पहुँचने के बजाय अकाली नेताओ ने यह स्पष्ट किया कि "आनन्दपुर साहब प्रस्ताव" को लागू किये जाने से कुछ भी कम उन्हे स्वीकार नही है। केन्द्र सरकार यह जानती थी कि पजाब का मामला उसके निकटवर्ती राज्यो–हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान से भी सम्बन्धित है। अत वह आनन्दपुर साहब प्रस्ताव की मॉग को स्वय स्वीकार करने की अवस्था मे नही है। इन राज्यो ने अपनी–अपनी समस्याओ को पजाब की मॉगो के सन्दर्भ मे केन्द्र के सामने रखना शुरू किया। अकाली दल की मॉगो का मामला उलझता गया। गतिरोध–प्रतिरोध चलता रहा।

पजाब मे आन्दोलन का प्रारम्भ प्रमुख रूप से शहरो में रहने वाले मध्यवर्गीय सिखो के नेतृत्व मे उनकी आकाक्षाओ पर आधारित आन्दोलन था। अपने आन्दोलन के लिए साम्प्रदायिक समर्थन को व्यापक रूप मे प्राप्त करने के लिए अकाली दल ने अपनी मॉगो मे धार्मिक विषयो का समावेश करना प्रारम्भ कर दिया। राष्ट्रीय स्तर पर यह प्रचार किया जाने लगा कि हिन्दू बहुसख्यक केवल सिखो को ही नहीं, वरन् सभी अल्पसख्यको को हिन्दू सास्कृतिक धारा मे विलीन करना चाहते है। सिखो को इस सन्दर्भ मे अधिक खतरा है। वे सामाजिक और सास्कृतिक दृष्टिकोण से हिन्दू धर्म और सस्कृति के अधिक निकट हैं। सिख नेतृत्व ने इस बात पर जोर दिया कि सिखो के सामाजिक और सास्कृतिक अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उनका पृथक राज्य होना चाहिए। इस राज्य की राजनीतिक सत्ता सिखो के पास होनी चाहिए। इसके साथ ही यह भी विचार अभिव्यक्त किया गया कि सिख धर्म मे राजनीति और धर्म एक–दूसरे से अलग नही किये जा सकते। सिख गुरूओ द्वारा धर्म की रक्षा और विस्तार के लिए राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना प्रत्येक सिख का धार्मिक कर्त्तव्य निर्धारित किया गया है। सन् 1960 ई० तक पजाब के सिख कृषको का एक बडा वर्ग काग्रेस का साथ देता रहा था। किन्तु इसके उपरान्त काग्रेस की अनेक कृषि सम्बन्धी नीतियो से भूमिधारी कृषक वर्ग काग्रेस से क्षुब्ध होने लगा। पजाब मे यह वर्ग सिख बाहुल्य था और

धार्मिक आधार पर पहले से ही अकाली दल के प्रति सहानुभूति रखता था। शीघ्र ही अकाली दल ने काग्रेस की नीतियो को सिख किसानो के साथ भेदभाव पूर्ण बताना शुरू कर दिया। व्यापक तौर पर जन समर्थन की अपेक्षा करते हुए अकाली दल ने पजाब मे आन्दोलन को तीव्र कर दिया क्योकि अकाली दल को केवल सिख समुदाय का समर्थन मिलता है। अत अकाली दल के लिए यह आवश्यक था कि वह किसी भी प्रकार सिखो की धार्मिक भावना को उग्र बनाये रखे। उल्लेखनीय है कि जब कभी भी अकाली दल को पजाब मे अपनी शक्ति कम होने का आभास मिला वह तुरन्त धर्म सम्बन्धी उग्रवादिता को उभारता रहा है। इसी सन्दर्भ मे, सन् 1980 ई० मे सत्ता से बाहर अकाली दल ने पजाब के लिए अधिक जल दिये जाने के विवाद को उठाया। पजाबी भाषा क्षेत्रो को राज्य के साथ जोडने और केन्द्र द्वारा राज्य को अधिक से अधिक अधिकार दिये जाने पर जोर दिया।

उपरोक्त सन्दर्भो मे पजाब मे आन्दोलन चलता रहा। स्वर्ण मन्दिर से अराजक तत्वो की सफाई के सन्दर्भ मे की गयी, जून, 1984 ई० की कार्यवाही के उपरान्त हिसा का विषम चक्र प्रारम्भ हो गया जिसकी परिणति भारत की तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाधी की हत्या से हुई। नये प्रधानमन्त्री राजीव गॉधी ने अकाली नेता सन्त हरचन्द सिह लोगोवाल से जुलाई, 1985 ई० मे पजाब समझौता किया किन्तु कुछ समय उपरान्त जब समझौता लागू किये जाने की प्रक्रिया मे था, सन्त लोगोवाल की हत्या कर दी गयी। तत्पश्चात् पजाब मे चुनाव कराये गये। जिसमें अकाली दल को बहुमत मिला। सुरजीत सिह बरनाला मुख्यमन्त्री बने, लेकिन वे जब हिसक गतिविधियो को रोकने मे नाकाम रहे तो 11 मई, 1987 ई० को पजाब मे राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। मार्च, 1988 ई० मे सविधान मे 59 वॉ सशोधन करके वहॉ आपात स्थिति लागू करने का प्रावधान कर दिया गया। आतकवादियो द्वारा स्वर्ण मन्दिर को अपना अभ्यारण्य बनाते हुए अपनी कार्यवाहियो को जारी रखने के कारण मई, 1988 ई० मे वहॉ पुलिस कार्यवाही कर उसे आतकवादियो से मुक्त करा दिया गया। आतकवादी कार्यवाहियो के पीछे विदेशी प्रोत्साहन व सक्रियता के पर्याप्त प्रमाण उपलबध हैं। 16 दिसम्बर, 1989 ई० को विश्वनाथ प्रताप सिह की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने पजाब समस्या के समाधान की दिशा मे अपनी पहली कोशिश के तौर पर राष्ट्रीय सहमति बनाने के लिये सभी राजनीतिक दलो की बैठक की। इसमे निर्णय लिया गया कि पजाब समस्या का हल सविधान

के दायरे के अन्दर होना चाहिए एव राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के सवाल पर कोई समझौता नही किया जायेगा (सिह, 1999, पृ० 362)।

खालिस्तान समर्थको ने भारत सरकार पर दबाव डालने के लिए अनेक स्तरीय आतकवाद का सहारा लिया। हालाकि पजाब मे 100 से अधिक आतकवादी सगठन एव समूह कार्यरत रहे हैं। इनमे से मुख्यत बब्बर खालसा, खालिस्तान कमाडो फोर्स, खालिस्तान लिबरेशन फोर्स, भिडरवाले टाईगर फोर्स आफ खालिस्तान, सिख स्टूडेन्ट फेडरेशन, ऑल इण्डिया सिख स्टूडेन्ट फेडरेशन, दमदमी टक्साल और खालिस्तान नेशलन आर्मी प्रमुख हैं। इनमे से अधिकाश सगठनो के मुख्यालय पाकिस्तान मे हैं, जहॉ इन्हे भारत के विरुद्ध आधुनिक अस्त्र–शस्त्रो की ट्रेनिग और आतकवादी तकनीकी मे प्रशिक्षण दिया जाता रहा है। वर्तमान समय मे पजाब मे आतकवाद को कुचल दिया गया। वहॉ पुन शान्ति स्थापित हो गयी है। विदेशो मे स्थित सिख उग्रवादी सगठनो को प्रोत्साहन उत्तरोत्तर कम होता जा रहा है। राज्य की जनता का अकाली दल की उग्र नीतियो के प्रति समर्थन कम हुआ है। इससे सत्ता परिवर्तन के उपरान्त काग्रेस पार्टी पुन सत्ता मे आयी है। कुल मिलाकर पजाब मे विलगाववाद एव आतकवाद अवसान की स्थिति मे है एव राज्य आर्थिक प्रगति एव शान्ति के पुराने मार्ग पर पुन प्रतिस्थापित हो गया है।

5.1.3 द्रविड़नाड की माँग

भारतीय सघ से अलग द्रविडनाड की स्थापना की मॉग सन् 1960 ई० मे द्रविड मुनेत्र कडगम नामक दल ने की थी। इसके लिए आन्दोलनात्मक कार्यवाही शुरू करत हुए यह मॉग की गयी कि द्रविडनाड को आन्ध्र प्रदेश, केरल, मैसूर तथा मद्रास राज्य के भाग दे दिये जाये (चित्र 5 2) और द्रविड गणराज्य की स्थापना हो। सौभाग्यवश इस मॉग को अधिक समर्थन नही मिला और द्रविड मुनेत्र कडगम दल में फूट पड गयी। इस दल के अधिकाश सदस्य नये द्रविड गणतन्त्र की स्थापना की पृथकतावादी नीति से सहमत नही हुए और उन्होने अपनी मूल मॉग को सशोधित करते हुए इस तथ्य पर जोर दिया कि इन प्रदेशो की स्वायत्तता के विषय मे सवैधानिक सशोधनो द्वारा कुछ प्रावधान कर दिये जाये। इन सदस्यों ने द्रविड मुनेत्र कड्गम दल को छोडते हुए ई० एम० एस० कामथ के नेतृत्व मे एक

भारत
द्रविड़नाड
N
पा कि स्ता न
चीं न
ने पा ल
भूटान
म्यां मा र
बं गा ल की खा ड़ी
अ र ब सा ग र
द्र वि ड़ ना ड
आन्ध्र प्रदेश
कर्नाटक
तमिलनाडु
केरल
लक्षद्वीप
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह
100 0 100 200 300
किलोमीटर
हिन्द महासागर
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
प्रान्तीय सीमा
राजधानी
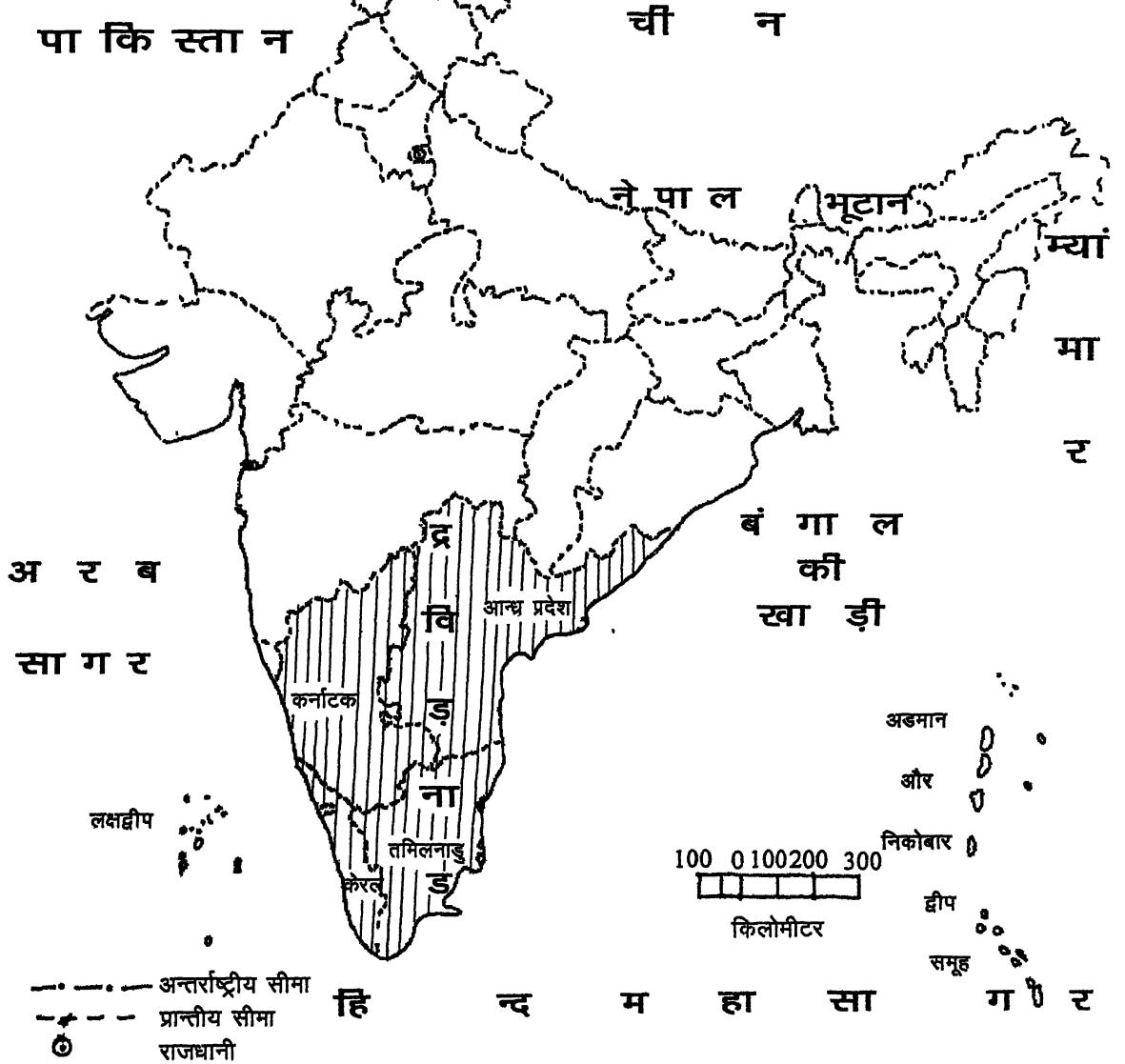
चित्र 5.2

नये दल तमिल नेशलन पार्टी का गठन किया। परन्तु द्रविड मुनेत्र कडगम ने अपनी मूल मॉगो मे कोई परिवर्तन नही किया और द्रविडनाड गणतन्त्र की स्थापना के लिए राजनीतिक स्तर पर अपने आन्दोलन को जारी रखा। तत्कालीन प्रधानमन्त्री प० जवाहर लाल नेहरू ने द्रविडनाड की मॉग को अस्वीकार कर दिया। इस सन्दर्भ मे उन्होने यह भी स्पष्ट कर दिया कि भारतीय सघ से पृथक् होने की किसी भी मॉग और आन्दोलन को पूरी शक्ति से कुचलने मे उन्हे कोई सकोच नही होगा। भारत मे पृथक्तावादी और भारत को विखण्डित करने की मॉग से प्रेरित किसी मॉग को राष्ट्र विरोधी घोषित करने के उद्देश्य से भारतीय सविधान मे सोलहवा सशोधन किया गया। इसके अन्तर्गत ससद को यह अधिकार मिल गया कि वह भारतीय सघ की सत्ता और एकता को खतरा पैदा करने वाले तत्वो से निबटने के लिये आवश्यक कानून बना सकती है। अक्टूबर, 1963 ई० मे किये गये इस सशोधन का परिणाम यह हुआ कि भविष्य मे भारतीय ससद और प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओ के सदस्यो को भारतीय सविधान के प्रति पूर्ण निष्ठा रखने और भारत की एकता, अखण्डता और राज्य सत्ता को सर्वोच्च मानने की शपथ लेनी पडने लगी (कौशिक, 2000, पृ० 202–203)।

केन्द्रीय सरकार द्वारा भारतीय जनता की आकाक्षाओ के अनुरूप किये गये उपरोक्त उपायो का अच्छा परिणाम निकला। इसके फलस्वरूप भारत के अन्य भागो मे, जहॉ पृथक्त्तावादी तत्व उभरने के प्रयास मे थे, पर भी अच्छा प्रभाव पडा। द्रविड मुनेत्र कडगम दल ने अपनी पुरानी मॉग का परित्याग कर दिया तथा अपने दल के विधान मे आवश्यक सशोधन भी किये। अब इस दल ने भारतीय सघ से अलग होने के स्थान पर इस बात पर जोर देना शुरू किया कि भारतीय सविधान के अन्तर्गत द्रविड सघ की स्थापना की जाये और इसमे मद्रास (तमिलनाडु), आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा केरल के राज्य सम्मिलित हो एव राज्यो को अधिकाधिक स्वायत्तता दी जाये। तत्कालीन मुख्यमन्त्री एम० करूणानिधि ने इस विषय मे अपनी मॉगो को मनवाने के लिए असवैधानिक उपायो के प्रयोग करने की धमकी भी दी। इस प्रकार अब द्रविड मुनेत्र कडगम दल ने अपनी पृथक्तावादी नीति में मात्र इतना परिवर्तन किया कि पृथक् राज्य की अपेक्षा, राज्य को अधिक अधिकार दिये जाये। इसी बीच तमिल प्रादेशिकवाद ने एक दूसरे रूप मे भी अपनी अभिव्यक्ति की। मलयाली अधिक सख्या मे तमिल प्रदेश मे बसे हुए हैं। तमिल प्रादेशिकवाद ने अब यह मॉग की कि सभी पदो को

तमिल लोगो के लिये सुरक्षित किया जाये और मलयालियो को तमिल प्रदेश से बाहर कर दिया जाये। वस्तुत यह मॉग स्वीकार नही की जा सकती थी। अब द्रविड मुनेत्र कडगम दल का मुख्य मुद्दा यह बन गया कि केन्द्र सरकार की शक्तियो को कम किया जाये, हिन्दी भाषी उत्तर भारत का दक्षिण के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार एव वर्चस्व समाप्त किया जाये तथा तमिलनाडु के विकास के लिए केन्द्र से अधिक आर्थिक ससाधनो का आबटन कराया जाये। मूलगामी आर्थिक उपायो, सामाजिक परिवर्तन तथा आधुनिक तमिल भाषा एव संस्कृति के विकास का कार्यक्रम काफी लोकप्रिय हुआ।

सन् 1969 ई० मे तमिलनाडु की सरकार ने मद्रास उच्च–न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश डॉ० राजमन्नार की अध्यक्षता मे एक समिति गठित करके राज्य की स्वायत्तता के लिये उपाय सुझाने का आयोजन किया। राज्य स्वायत्तता के सन्दर्भ मे राजमन्नार समिति ने ये सुझाव दिये प्रथम, एक अन्तर्राज्यीय परिषद की स्थापना की जाये, जिसका अध्यक्ष प्रधानमन्त्री हो तथा राज्यो के मुख्यमन्त्री या उनके नामित व्यक्ति उसके सदस्य हो। इस परिषद से परामर्श किये बिना ससद मे ऐसा कोई विधेयक प्रस्तुत न किया जाये जिससे एक या अधिक राज्य प्रभावित होते हो। प्रतिरक्षा और विदेशी सम्बन्धो के अतिरिक्त इस परिषद से परामर्श किये बिना ऐसा कोई निर्णय न किया जाये जिससे एक या अधिक राज्यो के हित प्रभावित होते हो। द्वितीय, योजना आयोग को समाप्त कर दिया जाये तथा उसके स्थान पर एक सवैधानिक निकाय स्थापित किया जाये, जिसमे राज्यो को सलाह देने के लिए विज्ञान, तकनीक, कृषि और अर्थ विशेषज्ञ हो। राज्यो के अपने योजना मण्डल हो जो उन्हे परामर्श देने का कार्य करे। तृतीय, वित्त आयोग स्थायी आधार पर स्थापित किया जाये तथा राज्यो के पक्ष मे करो का पहले से अधिक वितरण हो ताकि उन्हे केन्द्र पर कम से कम निर्भर रहना पडे। चतुर्थ, राजमन्नार समिति ने केन्द्रीय एव समवर्ती सूची के अनेक विषयो को राज्य सूची मे स्थानान्तरित करने की सिफारिश भी की। पचम्, समिति का सुझाव था कि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे राज्यो का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए। षष्ठम्, राज्यो के सभी मामले उच्चतम न्यायालय मे जाने चाहिए। सप्तम्, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति राज्य के मन्त्रिमण्डल अथवा उसी उद्देश्य से बनायी गयी किसी उच्चाधिकार निकाय के परामर्श से की जाये। अष्ठम्, राज्यो को उनके औद्योगिक विकास के लिए विदेशी मुद्रा प्रदान की जाये।

नवम्, समिति का यह भी सुझाव था कि राज्य मे किसी निजी या सार्वजनिक क्षेत्र मे औद्योगिक लाइसेस देने का अधिकार राज्यो को होना चाहिए (कौशिक, 2000, पृ० 202–203)।

सन् 1969 ई० मे द्रविड मुनेत्र कडगम दल के प्रमुख कर्णधार अन्नादुरई की मृत्यु के उपरान्त दल का सगठन विघटित होने लगा। अक्टूबर, 1970 ई० मे द्रविड मुनेत्र कडगम का विभाजन हुआ और अन्ना द्रविड मुनेत्र कडगम नामक नये दल का गठन हुआ। यद्यपि नया दल पुराने दल की विचारधारा के अनुरूप ही आचरण करता रहा परन्तु वर्तमान समय तक स्थिति मे काफी परिवर्तन आ चुका है। इन दलो के आपसी मतभेदो के कारण, राष्ट्रीय राजनीतिक दल भी प्रभावी होने लगे हैं। इससे सन्तुलन बढा है। द्रविड राष्ट्र की मॉग मे न तो अब पहले जैसी उग्रवादिता है और न ही पुरानी एकता। प्रादेशिकवाद की पुरानी प्रक्रिया अब उतनी अलगाववादी न होकर क्षेत्रीय दल की राजनीतिक भागीदारी को केन्द्र के साथ सौदेबाजी मे सशक्त करने मे सलग्न है।

निश्चय ही द्रविड पार्टियो के रूपान्तरण का सबसे मुख्य कारण उनका यह महसूस कर लेना रहा है कि (1) इस देश से अलगाव सम्भव नही है और भारतीय राज्य इतना मजबूत है कि उस तरफ उठाये गये किसी भी कदम को यह सख्ती से कुचल देगा, (2) एक क्षेत्रीय अस्मिता और राष्ट्रीय पहचान के बीच कोई वास्तविक अन्तर्विरोध नही है, (3) भारत की सघीय प्रणाली और लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सरकार, एक प्रदेश और व्यक्ति के रूप मे तमिलो को आर्थिक अवसर तथा समाज सुधार एव विकास के लिए बहुत सी राजनीतिक एव प्रशासनिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है, (4) भारतीय राजनीतिक व्यवस्था और राष्ट्रीय एकीकरण सास्कृतिक अनेकतावाद की स्वीकृति पर आधारित है, और (5) प्रदेशो को सम्पूर्ण सास्कृतिक स्वायत्तता प्राप्त है, जिसमे उनका अपनी भाषा और अन्य सास्कृतिक गतिविधियों पर पूर्ण नियन्त्रण शामिल है। संक्षेप मे, द्रविड पार्टियो और तमिलनाडु की जनता ने समय के दौरान यह महसूस किया कि अनेकता मे एकता एक बिल्कुल व्यावहारिक अवधारणा है तथा वह भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एव स्वभाव का एक अखण्ड हिस्सा है (चन्द्र, 2002, पृ० 401–402)।

द्रविडनाड की मॉग केवल भारत मे ही नही हो रही है बल्कि श्रीलका के आतकवादी सगठन लिट्टे का मानना है कि उत्तरी श्रीलका के तमिल बाहुल्य क्षेत्र एव तमिलनाडु को मिलाकर एक स्वतन्त्र राष्ट्र बनाया जा सकता है।

5.1.4 मिजोरम की माँग

भारतीय सघ से अलग पृथक् देश की स्थापना करने के लिये असम के पहाडी जिलो मे रहने वाले मिजो लोगो ने मॉग की। उन्होने मिजो नेशलन फ्रन्ट पार्टी की स्थापना की। वे असम के मिजो पर्वतीय क्षेत्रो, और साथ ही बाग्लादेश एव म्यामार के कुछ भागो को लेकर, एक सगठित रूप देकर स्वतन्त्र मिजो राज्य की स्थापना करना चाहते थे। भारत सरकार ने सन् 1962 ई० मे मिजो नेशनल फ्रन्ट के प्रति कडा रूख अपनाया। विपरीत परिस्थितियो मे मिजो नेतृत्व ने छिपे तौर पर चाचर पर्वतीय क्षेत्रो एव त्रिपुरा मे अपना अड्डा बनाया और राष्ट्र विरोधी कार्य जारी रखे। तब भारत सरकार ने दमनात्मक कार्यवाही करके मिजो नेतृत्व पर इतना दबाव डाला कि उसके नेता स्वतन्त्र मिजो राज्य की मॉग को छोडने पर विवश हो गये और उन्होने समझौते द्वारा शान्तिपूर्ण उपायों को अपनाने की इच्छा प्रकट की। सन् 1973 ई० मे अपेक्षाकृत कम उग्रवादी मिजो नेताओ ने जब अपनी मॉगो मे भारी कटौती कर दी, तो उसके बाद भारतीय सघ के अन्दर अलग मिजोरम राज्य की उनकी मॉग स्वीकार कर ली गई। मिजो जिलो को असम से अलग कर मिजोरम को केन्द्र शासित राज्य दर्जा दे दिया गया (चन्द्र, 2002, पृ० 159)। इस प्रकार मिजो नेतृत्व ने पृथक्तावाद का परि[illegible] कर दिया। केन्द्रशासित राज्य मिजोरम के विकास और प्रगति के लिये भारत सरकार ने बहुत ज्यादा धनराशि व्यय की। परन्तु सरकार को अधिक सफलता नही मिली। मिजो लोगो का एक वर्ग भारतीय सघ से एक अलग राज्य की मॉग पर दृढ रहा और उसने भारतीय सरकार के प्रयासो को विफल करने में हर सम्भव बाधाये उत्पन्न की। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उसे चीन और म्यामार से प्रोत्साहन मिल रहा था। भारत सरकार ने 1973–74 ई० मे समझौते के कई प्रयत्न किये परन्तु सफलता नही मिली। लालडेगा के नेतृत्व वाला मिजो वर्ग अब विद्रोही कार्यवाही करते हुए, हिसा पर उतारू होने लगा। लेकिन उसे भारतीय सेना के द्वारा प्रभावशाली तरीके से निबटा दिया गया। अलगाववादी विद्रोहियो का सफाया करने के बाद भारत सरकार ने नेहरूवादी जनजातीय नीति का पालन करते हुए कई प्रकार की छूट

और सुविधाओ का प्रस्ताव रखा (चन्द्र, 2002, पृ० 159)। साथ ही सरकार ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह छिपे हुए मिजो नेताओ से किसी भी प्रकार के समझौते के लिए बातचीत नही करेगी। इसका आपेक्षित परिणाम यह निकला कि लालडेगा ने हिसक कार्यवाही बन्द करके, शस्त्र समर्पण किया और यह इच्छा प्रकट की कि भारतीय सविधान के अन्तर्गत ही मिजो समस्या को हल करवाने के लिए वह सहमत हैं। जुलाई, 1976 ई० मे भारत सरकार और मिजो नेताओ के बीच दीर्घकालिक वार्ता के उपरान्त समझौता हो गया। समझौते के अनुसार मिजो नेतृत्व ने हिसा का परित्याग करने और अपने सारे शस्त्र शासन को देने का वचन दिया। परन्तु शीघ्र ही लालडेगा ने वचन भग करके अपने अनुयायियो को भड़काना और राष्ट्र विरोधी कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

सन् 1979 ई० मे मिजो नेतृत्व अधिक हिसक हो उठा। भारत सरकार ने सैनिक कार्यवाही की और विद्रोहियो को पकडने के आदेश दिये। यह भी घोषणा की गयी कि जब तक हिसा और आतक समाप्त नही होगा, मिजो नेशलन फ्रन्ट के नेताओ से बातचीत नही की जायेगी। राजनीतिक स्तर पर सरकार ने यह इच्छा व्यक्त की कि वह मिजो केन्द्र शासित प्रदेश को राज्य का स्तर दिये जाने को सशर्त तैयार है। इसके लिये सभी विद्रोहियो को अपने शस्त्र त्यागने होगे। परन्तु मिजो नेतृत्व पर इसका तुरन्त प्रभाव नहीं पडा था। अन्ततोगत्वा सन् 1980 ई० मे विद्रोही मिजो नेताओ और केन्द्र सरकार के बीच समझौता हुआ। दोनो पक्षो ने शस्त्रो के परित्याग का वचन दिया और किसी भी भावी सघर्ष मे शस्त्र की अपेक्षा बातचीत को माध्यम बनाना स्वीकार किया। यह भी माना गया कि मिजो समस्याओ का हल सवैधानिक प्रावधानो के अन्तर्गत तथा उसके अनुसार किया जायेगा। मिजोरम मे पुन शान्ति व्यवस्था स्थापित हुई। परन्तु यह शान्ति शस्त्र बल के भय से स्थापित हुई थी न कि ह्रदय परिवर्तन से। लालडेगा ने कई देशो का भ्रमण किया और बृहत् मिजोरम राज्य का गठन, जिसमे त्रिपुरा, मणिपुर और असम के भी कुछ भाग शामिल हो, की मॉग की। उसने सविधान के अन्तर्गत ही नये मिजोरम राज्य को अधिक स्वायत्तता दिये जाने की मॉग भी की। वार्ता के कई दौरो के उपरान्त अन्ततोगत्वा 30 जून, 1986 ई० को केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा मिजो नेशनल फ्रन्ट के नेता लालडेगा के मध्य समझौता हो गया। समझौते के अनुसार लालडेगा एव मिजो नेशलन फ्रन्ट अपनी भूमिगत हिसक गतिविधियो को त्याग देने

के लिये तैयार हो गये तथा भारतीय अधिकारियो के समक्ष शस्त्र अर्पण करके वे पुन सवैधानिक राजनीति की मुख्य धारा मे शामिल हो गये। अगस्त, 1986 ई० को मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा मिल गया। सन्धि के तहत लालडेगा को मुख्यमन्त्री बनाकर एक सरकार स्थापित की गयी (चन्द्र, 2002, पृ० 159–160)। फरवरी, 1987 ई० को मिजोरम विधा- स.भा के लिए हुए प्रथम चुनावो मे भी लालडेगा का मिजो नेशनल फ्रन्ट विजयी रहा तथा लालडेगा प्रथम अधिकृत मुख्यमन्त्री बने।

5.1.5 नागालैण्ड की माँग

भारत के असम राज्य के पहाडी क्षेत्र और भारत–म्यामार सीमा पर त्वेगसाग डिवीजन मे बसने वाले नागाओ ने भारतीय सघ से पृथक् होकर स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की मॉग की थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि अग्रेजी शासन काल मे नागाओ को पूरे भारत से अलग रखा गया था और उन्हे प्राय निर्बाध छोड दिया गया था, सिर्फ ईसाई मिशनरियो को गतिविधियॉ चलाने की इजाजत दी गई थी, जिसके परिणामस्वरूप एक छोटा शिक्षित तबका विकसित हो चुका था। आजादी के बाद भारत सरकार ने नागाओ को असम राज्य और सम्पूर्ण भारत के साथ एकबद्ध करने के लिये एक नीति का पालन करना शुरू किया। परन्तु नागा नेतृत्व के एक तबके ने इस एकीकरण का विरोध कर ए० जेड० फीजो के नेतृत्व मे बगावत कर दी। उन्होने भारत से अलग होकर पूरी स्वतन्त्रता की मॉग रखी। उन्हे इस कार्यवाही में कुछ अग्रेज अधिकारी तथा मिशनरियो का योगदान भी प्राप्त हुआ। सन 1955 ई० मे इन अलगाववादी नागाओ ने स्वतन्त्र सरकार के गठन की घोषणा कर दी और हिसक विद्रोह आरम्भ कर दिया (चन्द्रा, 2002, पृ० 157)।

नागा नेतृत्व ने यह धमकी दी कि यदि उनकी मॉगे स्वीकार नही की गयी तो वे सयुक्त राष्ट्र सघ मे पृथक् नागा राज्य की मॉग का प्रश्न उठायेगे। जब सन् 1957 ई० के मध्य मे सशस्त्र विद्रोह की कमर तोड दी गयी, तो अपेक्षाकृत नरमपथी नागा नेतागण डॉ० इमकोनग्लिबा ओ के नेतृत्व मे सामने आये। उन्होने भारतीय सघ के अन्दर नागालैण्ड राज्य के निर्माण के लिए समझौता किया। इस समझौते के द्वारा नागाओ के राज्य का गठन करने को सिद्धान्त रूप मे स्वीकार किया गया। नागालैण्ड के गठन से पूर्व अन्तरिम प्रबन्ध करते

हुए नागा क्षेत्र के प्रशासनिक प्रबन्ध किये गये। सन् 1962 ई० मे भारतीय सघ के अन्तर्गत पूर्ण राज्य के रूप मे नागालैण्ड के गठन की स्वीकृति दी गयी। दिसम्बर, 1963 ई० को नागालैण्ड राज्य का विधिवत् गठन हो गया।

पृथक्तावादी मॉगो मे प्राय यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है कि मॉग स्वीकार होने पर भी एक विद्रोही वर्ग सदैव सघर्ष के रास्ते पर चलता ही रहा है। नागालैण्ड के गठन के उपरान्त भी यही देखने मे आया। नागाओ का एक वर्ग ए०जेड० फीजो के नेतृत्व मे हिसक रास्ता अपनाये रहा। भारतीय सरकार का रुख अब कठोर था। फलस्वरूप फीजो को वहॉ से भागना पडा। वह स्वतत्र नागालैण्ड की स्थापना के लिए समर्थन जुटाने के प्रयास मे लन्दन गया, परन्तु वहॉ पर उसे कोई सहयोग नही मिला। चीन और पाकिस्तान भारत को दुर्बल करने मे सदैव से अप्रत्यक्ष सहायता देते रहे हैं। नागा विद्रोही नेता ने इसका लाभ उठाते हुए इन देशो से सहायता प्राप्त की और अपनी हिसक कार्यवाहिया जारी रखी। इसी बीच पूर्वी पाकिस्तान का अस्तित्व समाप्त हो गया और वहॉ पर बाग्लादेश का जन्म हुआ। इससे विद्रोही नागाओ को मिलने वाली सहायता और प्रोत्साहन मे कमी आने लगी। अब विद्रोही नागाओ ने फीजो के निर्देशानुसार अपने सघर्ष के तरीको मे थोडा परिवर्तन किया और जनजीवन को अस्त–व्यस्त करके भारत सरकार पर दबाव डालने हेतु नागालैण्ड मे व्यापक हत्याकाण्ड किये। केन्द्रीय सरकार ने सुरक्षात्मक उपाय करते हुए प्रतिरोधात्मक कार्यवाही की। यह कार्यवाही इतने प्रभावी स्तर पर की गयी कि उग्रवादी नागा और उनका नेतृत्व वस्तुस्थिति से परिचित होने लगा। अनेक विद्रोही नागाओ को जब अपना अस्तित्व खतरे मे फॅसता दिखने लगा तो उन्होने भारत सरकार से बातचीत द्वारा समस्या के हल की पेशकश की। भारत सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि उनकी मॉगे यदि भारतीय सवैधानिक प्रावधानो के अनुसार होगी तो बातचीत की जा सकती है। इस बीच केन्द्र सरकार ने इस बात का भी पूरा ध्यान रखा कि वार्ता कि पेशकश के बहाने नागा विद्रोही चीन से हथियार प्राप्त न कर पाये और सैनिक प्रशिक्षण के लिए चीन न जा पाये।

अनेक उतार–चढावो के उपरान्त नागाओ तथा केन्द्रीय सरकार के बीच नवम्बर, 1975 ई० मे समझौता हो गया। नागा विद्रोही अपने शस्त्रो का समर्पण करने तथा सभी प्रकार की हिसक कार्यवाहियो को समाप्त करने पर सहमत हो गये। उन्होने भारतीय सविधान

के प्रति आज्ञाकारिता और निष्ठा व्यक्त करते हुए अपनी समस्याओ को सुलझवाने की सहमति भी व्यक्त की। उसके बदले मे भारतीय सरकार ने सभी विद्रोही नागाओ को मुक्त करने और उन पर हिसा आदि के चलाये जा रहे मुकदमो को वापस लेने का वचन दिया। समझौते द्वारा यह भी स्वीकार किया गया कि भय के कारण छिपे हुए नागाओ से सम्पर्क स्थापित करके समस्याओ को सुलझाने के अन्य उपाय प्राप्त किये जायेगे। परन्तु यह समझौता शीघ्र ही समाप्त किया जाने लगा। अनेक नागा खुले आम विद्रोही स्वर अभिव्यक्त करने लगे। उन्होने चीन तथा पाकिस्तान से शस्त्र और प्रशिक्षण प्राप्त करने का प्रयास जारी रखा। सन् 1977 ई० मे नागा नेता फीजो, जो देश से बहिष्कृत हुआ था, ने तत्कालीन प्रधानमत्री मोरारजी देसाई से लन्दन मे वार्ता की परन्तु वार्ता असफल रही।

नागालैण्ड मे शान्ति की स्थिति को बरकरार रखने के लिए केन्द्र सरकार ने राज्य के प्रभावशाली उग्रवादी सगठन नेशनल सोशलिस्ट काउसिल ऑफ नागालैण्ड के आई–एम गुट के साथ गत सन् 1997 ई० से लागू सघर्ष विराम की अवधि को दो वर्ष के लिए और बढा दिया। इसके लिए सगठन के महासचिव टी० मुइवा तथा केन्द्र सरकार के मध्य सहमति जून, 2001 ई० मे बैंकाक मे हुई। इस समझौते के अनुसार सघर्ष विराम को पूर्वोत्तर के अन्य राज्यो मे रहने वाले नागाओ के लिए भी लागू होगा। सघर्ष विराम का क्षेत्र अभी तक नागालैण्ड तक ही सीमित था। इस सघर्ष विराम का नागालैण्ड के मुख्यमत्री ने स्वागत किया, वही असम, मणिपुर व अरूणाचल प्रदेश के विभिन्न सगठनो ने अपने राज्यो की क्षेत्रीय अखण्डता के लिए खतरा मानते हुए इसका भारी विरोध किया है। इन राज्यो मे यह आशका व्याप्त हो गई है कि आगे चलकर सभी नागा बहुल क्षेत्रो को मिलाकर एक वृहत्तर नागालैण्ड का गठन किया जा सकता है, जैसा कि नेशनल सोशलिस्ट काउसिल ऑफ नागालैण्ड (आई एम) की मॉग रही है। असम मे सरकार ने सघर्ष विराम के प्रभाव क्षेत्र के विस्तार के प्रति अपना विरोध केन्द्र के प्रति व्यक्त किया, जबकि मणिपुर मे भारी जनाक्रोश केन्द्र के इस निर्णय के विरुद्ध व्यक्त किया गया। मणिपुर मे बन्द के दौरान अराजकता पर उतरी क्रुद्ध भीड ने राज्य विधान सभा भवन व मुख्यमत्री सचिवालय सहित अनेक सरकारी कार्यालयो मे आग लगा दी और सविधान की प्रतियो मे आग लगाई।

विद्रोही नागाओ की माँगो और उनके द्वारा समझौते के उपक्रम किये जाने के विपरीत अप्रत्यक्ष विदेशी सहायता प्राप्त करने से यह स्पष्ट हो गया कि वे नागाओ के छोटे से वर्ग के समर्थन पर ही टिके हुए हैं। वस्तुत अधिकाश नागा और उनका नेतृत्व अब भारतीय सविधान के अन्तर्गत आने मे अपने को सुरक्षित महसूस कर रहे है। आशा की जाती है कि निकट भविष्य मे नागा समस्या स्वत हल हो जायेगी और नागाओ के सभी वर्ग भारत की मुख्य राजनीतिक धारा मे समाहित हो जायेगे।

5.1.6 त्रिपुरा की माँग

त्रिपुरा मे "जनशक्ति सगठन सेना" ने स्वतत्र त्रिपुरा का नारा बुलन्द किया है। इस सगठन ने मिजोरम नेशनल फ्रन्ट से सम्पर्क स्थापित कर लिया। ये दोनो सगठन हिसात्मक गतिविधियो मे सलग्न हो गये। काग्रेसी नेताओं का आरोप है कि मार्क्सवादी नेता जनजातीय नेताओ से मिलकर त्रिपुरा मे आतकवाद फैला रहे हैं (श्रीवास्तव, 1996, पृ० 345)। सरकार द्वारा विकास की दोहरी नीति अपनाये जाने के कारण त्रिपुरा की आदिवासी जनता हमेशा विद्रोह करती आयी है। इस राज्य मे आदिवासी पहले बहुसख्यक थे, लेकिन बाग्लादेश से भारी सख्या मे बगालियो के आकर बस जाने के कारण आबादी का अनुपात स्तर 30 प्रतिशत का हो गया है। फलत न तो आदिवासी युवको को नौकरी मिल पाती है और न ही शासन मे उचित भागीदारी। परिणामस्वरूप त्रिपुरा के आदिवासी लोग भारतीय सघ से अलग होकर एक स्वतत्र राष्ट्र बनाना चाहते हैं।

5.1.7 असम

यूनाइटेड लिबरेशन फ्रन्ट ऑफ असम (उल्फा) असम का उग्रवादी संगठन है, जिसने आतक और हिसा की अपनी गतिविधियाँ अधिक बढा रखी हैं। उल्फा की मान्यता है कि असम भारतीय साम्राज्यवाद का उपनिवेश बन गया है और इससे मुक्ति का एकमात्र उपाय पृथक् देश का निर्माण करना है, जिसमे समानता के आधार पर शोषण मुक्त समाज हो। अपने उद्देश्यो का प्रचार करने के लिए उल्फा ने हर सम्भव साधन का व्यापक रूप में उपयोग किया है। उल्फा आतक का सहारा लेकर खुलकर राष्ट्र विरोधी गतिविधियो मे सलग्न है। उल्फा की गतिविधियो पर नियन्त्रण करने के लिए केन्द्र ने प्रफुल्ल कुमार सरकार

को अपदस्थ करके 27 नवम्बर, 1990 ई० को असम मे राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। राष्ट्रपति शासन लगते ही उल्फा के विरुद्ध 'आपरेशन बजरग' नाम से सैनिक कार्यवाही की गयी, लेकिन इससे असम मे शान्ति स्थापित नही हो सकी। उल्फा के शिवरो से प्राप्त दस्तावेज से ज्ञात हुआ कि उल्फा कार्यकर्ता एक प्रभुता सम्पन्न, स्वतत्र और समाजवादी असम के निर्माण मे गम्भीरतापूर्वक प्रयासरत् थे। साथ ही नागालैण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा के उग्रवादी सगठनो तथा चीन, पाकिस्तान, म्यामार एव बाग्लादेश से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभी प्रकार की सहायता मिलने की पुष्टि हुई (श्रीवास्तव, 1996, पृ० 340)।

राष्ट्रपति शासन के दौरान भी उल्फा की गतिविधियो के चलते रहने के कारण उल्फा की असम की जनता मे लोकप्रियता हो गयी। माओवादी दर्शन पर आधारित नक्सलवादी तत्व भी उल्फा को हर प्रकार की सहायता प्रदान करते रहे। इससे उल्फा को पुन सगठित होने का अवसर मिल गया। इन परिस्थितियो मे उल्फा के आतक वाले क्षेत्रो जोरहाट, नागौन, तिनसुकिया, गोलाघाट, उत्तरी लखीमपुर, मोनितपुर, धैमाजी और शिवसागर मे एकाएक सेना तैनात करके समूचे असम तथा पडोसी राज्यो के सीमावर्ती क्षेत्रो को अशान्त क्षेत्र घोषित करके सेना का नवीनतम अभियान 'आपरेशन राइनो' शुरू किया गया, जो आशिक सफल रहा (श्रीवास्तव, 1996, पृ० 340–341)।

उल्फा का सिद्धान्त हैं– "चुपचाप दे दो या हमेशा के लिए बोलती बन्द।" वे लोग अपनी गोलियो का निशाना उन असमियों पर भी आजमाते है जो उनका विरोध करते हैं। उल्फा भारतीय सविधान को नही मानता है। उल्फा के अनुसार कोई भी पूर्वोत्तर राज्य भारत का अग नही है। असम के कुछ जिलो मे उल्फा ने समानान्तर सरकार गठित कर ली है, जो अदालते लगाती है, सडक निर्माण, पुल निर्माण आदि कार्य करती हैं और खर्चा चलाने के लिए कर वसूलती है (सिह, 1999, पृ० 366–367)। उल्फा आन्दोलनकारी आये दिन हिसात्मक गतिविधियॉ करते रहते हैं। सरकार को उल्फा समस्या को विवेकपूर्ण ढँग से हल करने की आवश्यकता है।

5.2 पृथक् राज्य का दर्जा दिये जाने की माँग

भारत विविधतायुक्त देश है। इस कारण यहाँ पर सस्कृतियो और भाषाओ की व्यक्तिगत पहचान की जाती है। भारतीय सविधान के निर्माताओ ने सविधान की रचना करते समय इस तथ्य को भली-भॉति स्वीकार किया था कि भारत की स्थानीय सस्कृतियॉ समान रूप से फले–फूले। इसके लिए सवैधानिक उपाय भी किये गये थे। परन्तु जब प्रादेशिकवाद की भावना बलवती होने लगी, इस विषय को उठाया जाने लगा कि अमुक क्षेत्र की सस्कृति और भाषा की व्यक्तिगत पहचान एव अस्तित्व के लिए अमुक राज्य का पृथक् गठन किया जाये। यह प्रादेशिकवाद भारतीय सघ से पृथक् होने के प्रादेशिकवाद से अपेक्षाकृत कम गम्भीर है। इसका उद्देश्य वस्तुत भारतीय सघ की इकाइयो मे वृद्धि करके प्रादेशिकवादियो द्वारा अपने निहित स्वार्थों और हितो को पूरा करवाना है। पृथक् राज्य का दर्जा दिये जाने की मॉग अनेक ओर से आने का उपक्रम राज्यो के पुनर्गठन के उपरान्त अधिक तीव्रता से होने लगा है।

5.2.1 गुजरात और महाराष्ट्र का गठन

राज्य पुनर्गठन आयोग ने बम्बई राज्य का द्विभाषीय आधार पर गठन करने का सुझाव दिया था। परन्तु सयुक्त महाराष्ट्र समिति तथा महा गुजरात जनता परिषद् ने इसमे असहमति अभिव्यक्ति की। इन दोनो सगठनो को सम्बन्धित वर्गों का व्यापक समर्थन प्राप्त था। इसका अनुमान लगाते हुए भारत सरकार ने बम्बई को महाराष्ट्र और गुजरात दो राज्यो मे विभाजित कर दिया। यह विभाजन इस बात को ध्यान मे रखते हुए किया गया कि इससे पूर्व एक भाषीय राज्य के रूप मे आन्ध्र प्रदेश का गठन किया जा चुका था।

5.2.2 पंजाब राज्य का गठन

पजाब के विभाजन को राज्य पुनर्गठन आयोग ने अपनी सिफारिशो मे अस्वीकार कर दिया था। आयोग की इस सिफारिश को सरकार ने भी स्वीकार कर लिया था। किन्तु मास्टर तारा सिह के नेतृत्व मे अकालियो ने पृथक् पजाब राज्य के गठन करने की मॉग की। उन्होने यह भी कहा कि सिखो के हितो की अनावश्यक अनदेखी की जा रही है। इसलिये अन्य

सम्बन्धित आरोपो की जाच करके अपनी सिफारिश देने के लिये भारत सरकार ने एस०आर० दास की अध्यक्षता मे एक आयोग नियुक्त किया। आयोग की रिपोर्ट मे यह बात निराधार बतायी गयी कि सिखो की उपेक्षा की जा रही है। इसने पृथक् पजाब राज्य के गठन को भी उचित नही माना। अकाली नेतृत्व इससे सहमत नही हुआ और उसने आन्दोलनात्मक रुख अपनाया। जब आन्दोलन काफी समय तक चलता रहा तो सरकार ने न्यायमूति जे०सी० शाह की अध्यक्षता मे पुन एक आयोग का गठन किया। इस आयोग ने भाषायी आधार पर पजाब के पुनर्गठन का सुझाव दिया। इन सुझावो को ध्यान मे रखते हुए ससद ने पजाब पुनर्गठन अधिनियम 1966 पारित किया। इस अधिनियम द्वारा पजाबी भाषी क्षेत्रो को पजाब राज्य के रूप मे गठित कर दिया गया। पर्वतीय क्षेत्रो को हिमाचल प्रदेश मे सम्मिलित कर दिया गया और हिन्दी भाषी क्षेत्रो को मिलाकर हरियाणा के रूप मे नये राज्य का गठन किया गया।

5.2.3 मेघालय का गठन

गारो, खासी तथा जैन्तिया के निवासियो ने नेतृत्व पाकर एक पृथक् राज्य की स्थापना की मॉग उठायी थी। आल पार्टी हिल लीडर्स कान्फ्रेन्स नामक दल का गठन किया गया और आन्दोलन शुरू हुआ। भारत सरकार ने सघीय आधार पर असम राज्य का गठन करते हुए इस मॉग की आशिक रूप से पूर्ति की। इससे आल पार्टी हिल लीडर्स कान्फ्रेन्स के नेता सन्तुष्ट नहीं हुए और पृथक् रूप मे पर्वतीय क्षेत्र के राज्य की मॉग करते रहे। सरकार पर अनावश्यक प्रभाव डालने की कोशिश की गयी। असन्तुष्ट नेताओ ने यह भी धमकी दी कि सन् 1967 ई० के असम विधान सभा के बजट सत्र से पहले यदि उनकी मॉग स्वीकार नही की गयी तो उनके विधान सभाई सदस्य विधानसभा की सदस्यता का परित्याग कर देगे। सरकार ने दबाव मे आकर मॉग स्वीकार करने मे असहमति व्यक्त की तो आल पार्टी हिल लीडर्स कान्फ्रेन्स दल के सभी नौ सदस्यो ने विधान सभा की सदस्यता त्याग दी। दल ने व्यापक स्तर पर अहिसक आन्दोलन चलाया। अन्ततोगत्वा भारत सरकार ने नये राज्य के गठन की मॉग को स्वीकार कर लिया। ससद ने असम पुनर्गठन अधिनियम पारित किया जिसके अनुसार असम के अन्दर स्वायत्त पर्वतीय राज्य मेघालय का गठन किया गया। नवीन प्रावधानों के अनुसार मेघालय की पृथक् व्यवस्थापिका और राज्य मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था की

गयी। अनेक कारणो से यह व्यवस्था स्वीकार नही की गयी। मेघालय व्यवस्थापिका ने एक प्रस्ताव पारित करके केन्द्र से यह मॉग की कि मेघालय को पूर्ण स्तर के राज्य के रूप मे मान्यता दी जाये। जनवरी, 1972 ई० मे केन्द्र सरकार ने इस मॉग को स्वीकार कर लिया और पूर्ण राज्य के रूप मे मेघालय का गठन हुआ।

5.2.4 छत्तीसगढ़ का गठन

छत्तीसगढ (चित्र 5 3) के गठन के लिए 'मध्य प्रदेश पुनर्गठन विधेयक 2000' लोकसभा मे 31 जुलाई, 2000 को व राज्य सभा मे 9 अगस्त, 2000 को पारित किया गया। इस विधेयक को राष्ट्रपति ने 28 अगस्त, 2000 को अपनी स्वीकृति प्रदान की। इतिहास के पृष्ठो पर काफी समृद्ध और प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण क्षेत्र के रूप मे अकित छत्तीसगढ अचल भारत के मानचित्र पर 1 नवम्बर, 2000 को एक स्वतत्र राज्य के रूप मे अकित हो गया। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाले इस क्षेत्र को प्राचीन काल मे 'दक्षिण कोसल' के नाम से जाना जाता था। तत्कालीन दक्षिण कोसल के अन्तर्गत रायपुर व बिलासपुर सभाग के अतिरिक्त उडीसा सभाग के सम्बलपुर, कालाहाडी बोलगीर जिले के कई भाग आते थे। बस्तर सहित उडीसा का कोरापुट क्षेत्र, कातर, महाकातर एव दण्डकारण्य के नाम से जाना जाता था। बस्तर के लिए अनेक स्थानो पर चक्रकोट नाम का भी उल्लेख किया गया है। एक किवदती के अनुसार जरासध के शासनकाल मे चर्मकार समाज के 36 परिवार किसी कारणवश दक्षिण की ओर जाकर बस गये और वहॉ छत्तीसघर नामक अपने नये राज्य की स्थापना की। यही छत्तीसघर आगे चलकर छत्तीसगढ कहलाया। दूसरा मत है कि यह क्षेत्र सम्भवत यहॉ स्थित 36 गढो के कारण ही छत्तीसगढ के नाम से जाना जाता है। इतिहासवेत्ताओ के अनुसार कलचुरी काल मे प्रशासन के प्रचलित सामान्य सिद्धान्त के अनुसार 12 गावो का एक बरहा होता था। सात बरहा का समूह गढ कहलाता था। तत्कालीन यह गढ ही प्रशासनिक इकाई होते थे। उस समय शिवनाथ नदी के उत्तर मे रतनपुर और दक्षिण मे रायपुर के कलचुरियो के अधीन 18 गढ थे। सम्भवत इसी कारण इस अचल का नाम छत्तीसगढ पड गया।

छत्तीसगढ़
प्रशासकीय इकाइयाँ
N
उत्तर प्रदेश
झारखण्ड
कोरिया
सरगुजा
मध्य प्रदेश
अम्बिकापुर
जशपुरनगर
कोरबा
बिलासपुर
रायगढ
कवर्धा
जाजगीर
जाजगीर-चपा
दुर्ग
रायपुर
महाराष्ट्र
राजनदगाँव
महासमुन्द
धमतरी
काकेर
बस्तर
जगदलपुर
उडीसा
दन्तेवाड़ा
प्रान्तीय सीमा
जनपद सीमा
प्रान्तीय मुख्यालय
जनपद मुख्यालय
आन्ध्र प्रदेश
25 0 25 50
किलोमीटर

चित्र 5.3

किसी राज्य के पृथक्करण के लिये दीर्घकालीन आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक उपेक्षा एव शोषण है। जिससे धीरे–धीरे क्षेत्रीय असन्तोष जन्म लेता है। जिसका सामयिक निराकरण न होने पर जनाक्रोश के फलस्वरूप पृथक् राज्य की कामना का उदय होता है। पृथक् छत्तीसगढ राज्य की मॉग के मूल कारण हैं– छत्तीसगढ अपनी भाषा, बोली, रहन–सहन व विशिष्ट सस्कृति से शेष मध्य प्रदेश से पृथक है। औद्योगिक विकास की प्रगति अपेक्षाकृत शेष मध्य प्रदेश मे हुई। यहॉ का विकास तो केवल क्षेत्रीय खनिज सम्पदा के दोहन तक सीमित होकर रह गया। छत्तीसगढ से एकत्रित राजस्व की तुलना मे छत्तीसगढ को विकास हेतु पर्याप्त धन नही दिया गया। उदाहरणार्थ, बस्तर जिले से प्रति वर्ष 120 करोड रुपये का राजस्व प्राप्त हुआ, जबकि विकास के लिए बस्तर को सिर्फ 5 करोड रुपये ही दिये जाते रहे। मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से छत्तीसगढ की प्रशासनिक दूरी अधिक होने से नीतिगत फैसलो को करने व उनके क्रियान्वयन मे भी देरी होती रही। मध्य प्रदेश के गठन के समय से ही छत्तीसगढ के साथ भेदभाव किया गया। उच्च न्यायालय व उच्च न्यायालय की खण्डपीठ, राजस्व मण्डल, परिवहन आयुक्त, आबकारी आयुक्त, महालेखाकार, भूराजस्व, विद्युत मण्डल, राज्य उद्योग निगम, औद्योगिक विकास निगम, राज्य निर्यात निगम, माइनिग कार्पोरेशन, वित्त निगम आदि सभी प्रमुख कार्यालय शेष मध्य प्रदेश को मिले व छत्तीसगढ जैसे विस्तृत क्षेत्र को उपेक्षित रखा गया। छत्तीसगढ क्षेत्र की निम्न साक्षरता का लाभ लेकर बाहर के लोगो ने यहॉ के मूलनिवासियो का शोषण किया। क्षेत्र मे विशाल रेल मण्डल हैं, लेकिन बगाल, उडीसा, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश के लोग यहॉ रोजगार प्राप्त करते रहे।

सन् 1861 ई० मे सेन्ट्रल प्रोविसेस मे छत्तीसगढ को शामिल किये जाने के साथ ही पृथक् छत्तीसगढ राज्य की जनभावना का उदय हुआ। सर्वप्रथम सन् 1924 ई० मे पहली बार रायपुर जिला काग्रेस कमेटी द्वारा छत्तीसगढ राज्य के गठन की मॉग की गई। इसके बाद जबलपुर के त्रिपुरी सम्मेलन (1939 ई०) मे यह मॉग उठी। सन् 1956 ई० में राज्य पुनर्गठन आयोग के समक्ष भी पृथक् छत्तीसगढ राज्य के लिए प्रतिवेदन प्रस्तुत किये गये। राज्य सभा सदस्य डा० खूबचन्द्र बघेल ने सन् 1967 ई० मे पृथक् छत्तीसगढ की विचारधारा को सर्वप्रथम अभियान व जन आन्दोलन का रूप दिया तथा छत्तीसगढ भातृसघ का गठन किया। सन् 1977 ई० तक शेष मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ का विकास समान रूप से होता

रहा। अत पृथक् छत्तीसगढ की मॉग सीमित रही। 9 अक्टूबर, 1997 ई० को रायपुर मे पृथक् छत्तीसगढ की मॉग को लेकर पहली बार एक राजनीतिक सम्मेलन हुआ। सन् 1998 ई० मे हुए 12 वी लोकसभा के चुनाव मे भाजपा के घोषणा–पत्र व भाजपा गठबन्धन सरकार के नेशनल एजेडा मे पृथक् छत्तीसगढ राज्य के प्रति सकल्प दर्शाया गया। 1 नवम्बर 2000 को छत्तीसगढ भारत का 26 वा राज्य बना।

5.2.5 उत्तरांचल का गठन

प्रकृति की अमूल्य कृति हिमालय की गोद मे बसा उत्तराचल (चित्र 5 4) एक ऐसी देवभूमि है, जो पुरातन काल से देवगण, ऋषि–मुनि आदि का निवास–स्थल एव तपोभूमि रहा है। यह राजा भरत की जन्मस्थली भी है। इसी स्थल को पुराणो मे मानस, केदारखण्ड एव कूर्मांचल नाम दिया गया है। इतिहासवेत्ताओ के अनुसार गढवाल एव कुमाऊँ पहले मौर्य साम्राज्य का अग था। कुषाण एव कुणिदो का यहॉ शासन होने के प्रमाण मिले हैं। छठी शताब्दी में उत्तराचल पर पौख वश का शासन था। सातवीं शताब्दी मे यहॉ कत्यूरी राजवश का उदय हुआ, जिसने पूरे उत्तराचल को मिलाकर अपने साम्राज्य की स्थापना की। 12 वी शताब्दी मे कत्यूर वश के पतन के बाद यह क्षेत्र चद और पवार शासको के अधीन आया। 16 वी शताब्दी मे गढवाल मे पवार और कुमाऊँ मे चद राजवशो का शासन था। सन् 1771 ई० मे प्रद्युमन शाह का गढवाल और कुमाऊँ सहित सम्पूर्ण उत्तराचल पर अधिकार हो गया। उत्तराचल का अन्तिम शासक प्रद्युमन शाह को ही माना जाता है। सन् 1790 ई० मे कुमाऊँ नेपाल के अधीन हो गया तथा सन् 1803 ई० तक इसने गढवाल पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। सन् 1825 ई० मे अग्रेजो ने नेपाली गोरखाओ को परास्त कर उत्तराचल को अपने अधीन कर लिया। सन् 1815 ई० मे जब उत्तराचल ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन हो गया तब हर्षदेव जोशी ने तत्कालीन उत्तराचल क्षेत्र के लिए विशेष अधिकार और रियायतो की मॉग की। 20 वी शताब्दी के प्रारम्भ में ब्रिटिश सरकार ने भूमि बन्दोबस्तो के द्वारा सार्वजनिक वन भूमि को अपने अधिकार मे लेना प्रारम्भ कर दिया। 20 वी शताब्दी में ही प्रेस, पत्रकारिता और स्थानीय सगठनो का अभ्युदय हुआ। अग्रेजो द्वारा प्राकृतिक स्वतत्रता तथा सम्पदा के पारम्परिक अधिकार मे दखल देने से स्थानीय विरोध हुआ। सन् 1816 ई० में अग्रेजो और गोरखाओं के बीच सगोली सन्धि हुई। सन्धि के अनुसार

उत्तरांचल
प्रशासकीय इकाइयाँ
हिमाचल प्रदेश
N
चीन
नेपाल
उत्तर प्रदेश
उ त्त र का शी
दे ह रा दू न
रुद्र प्रयाग
च मो ली
गोपेश्वर
टिहरी–गढवाल
नरेन्द्र नगर
पौडी
पि थौ रा ग ढ
पौडी – ग ढ वा ल
ह रि द्वा र
बागेश्वर
अ ल्मो ड़ा
नै नी ता ल
रुद्रपुर
ऊधम सिंह नगर
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
प्रान्तीय सीमा
जनपद सीमा
जनपद मुख्यालय
प्रान्तीय मुख्यालय
50 0 50 100
किलोमीटर
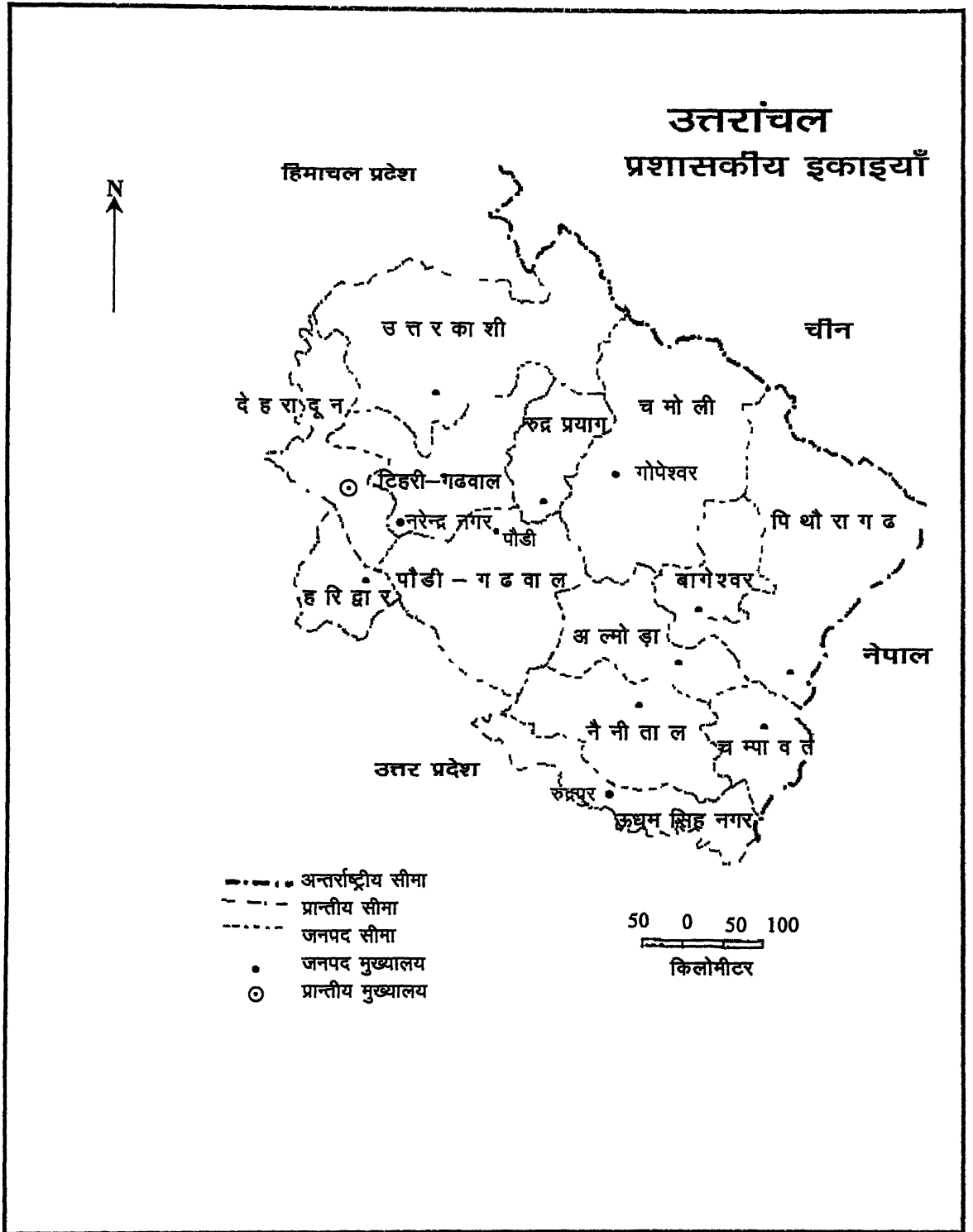
चित्र 5.4

टिहरी रियासत सुदर्शन शाह हो प्रदान की गई और शेष क्षेत्र को नॉन रेगुलेशन प्रान्त बनाया गया, जो उत्तरी–पूर्वी प्रान्त का ही भाग रहा। नॉन रेगुलेशन प्रान्त सन् 1891 ई० मे खत्म कर दिया गया। सन् 1901 ई० मे जब सयुक्त प्रान्त आगरा एव अवध बना तो उत्तराचल क्षेत्र का विलय उसमे कर दिया गया। सन् 1928 ई० मे इस क्षेत्र के लोगो ने लेफ्टिनेट गवर्नर से निवेदन किया कि सन् 1814 ई० से पूर्व कुमाऊँ को स्वतत्र बताते हुये इसे स्वायत्त बना दिया जाय। मई, 1938 ई० मे श्रीनगर (गढवाल) मे आयोजित काग्रेस की विशेष सभा मे उत्तराचल क्षेत्र को स्वायत्तता देने की बात कही गयी (भारती, 1998, पृ० 801)।

स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् आगरा एव अवध प्रान्त उत्तर प्रदेश राज्य कहलाया। सन् 1947 ई० मे टिहरी रियासत का विलय भारत मे नही हुआ। सन् 1948 ई० मे जन क्रान्ति के समय सामन्तशाही का तख्ता पलटने के पश्चात इस रियासत का भारत मे विलय हुआ। सन् 1950 ई० मे जब काग्रेस ने उत्तराचल राज्य की मॉग की तो उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमत्री व काग्रेसी नेता प० गोविन्द वल्लभ पन्त ने यह कहकर विरोध किया कि इसके पास अपने खर्च चलाने के लिए ससाधन नही है। पर्वतीय क्षेत्र के निवासियो के विरोध को देखते हुए उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् 1974 ई० मे पर्वतीय विकास परिषद की स्थापना की। उच्चतम न्यायालय ने सन् 1974 ई० मे निर्णय दिया कि आर्थिक, सामाजिक एव शैक्षिक विकास मे यह क्षेत्र पिछडा है। इसलिए उत्तराचल के छात्रो को मेडिकल एव इन्जीनियरिंग कालेजो मे 2 प्रतिशत आरक्षण दिया जाये।

सन् 1980 ई० मे उत्तराचल मे वन अधिनियम लागू कर इस क्षेत्र को शून्य प्रदूषण क्षेत्र घोषित किया गया। इस अधिनियम के तहत बिना केन्द्र सरकार की अनुमति से पेड काटना और खनिजो की खुदाई का कार्य करना गैर–कानूनी है। परिणामत पर्वतीय लोग, जो वनो पर आधारित रोजगार पर निर्भर थे, बेरोजगार होकर शहरो मे पलायन करते रहे। इसी दौरान उत्तराचल के पृथक् राज्य की मॉग पुन जोर पकडने लगी। प्रदूषण रहित क्षेत्र होने के कारण उद्योग–धन्धो पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया जिससे यह क्षेत्र पिछडेपन का शिकार होता गया। पृथक् उत्तराचल राज्य का आन्दोलन करते हुए सैकडो लोग घायल व मृत्यु को प्राप्त हुए। उत्तराचल उत्तर प्रदेश के सर्वांगीण विकास के लिये महत्वपूर्ण योगदान देता रहा है परन्तु यह क्षेत्र सदैव विकास से वचित रहा है। पृथक् उत्तराचल राज्य के लिए

कई सगठनो का निर्माण हुआ तथा कई राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टियों ने इसका समर्थन भी किया। इसलिए 20 वी शताब्दी का अन्तिम दशक पृथक् उत्तराचल राज्य की मॉग को लेकर आन्दोलनमय दशक बना। जनवरी, 1994 ई० मे उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री मुलायम सिह यादव ने पृथक् उत्तराचल की स्थापना के लिए कौशिक समिति का गठन किया। कौशिक समिति ने अपना प्रतिवेदन 5 मई, 1994 ई० को राज्य सरकार को प्रस्तुत कर दिया।

राज्य सरकार ने कौशिक समिति पर ध्यान नही दिया। आन्दोलन चलता रहा। अन्तत उत्तराचल के गठन के लिए 'उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक 2000' लोक सभा मे अगस्त, 2000 ई० को व राज्य सभा मे 10 अगस्त, 2000 ई० को पारित किया गया। इस विधेयक को राष्ट्रपति ने अपनी स्वीकृति 28 अगस्त, 2000 ई० को प्रदान की। 9 नवम्बर, 2000 ई० को सुरजीत सिह बरनाला के राज्यपाल पद की शपथ ग्रहण करने के साथ ही देवभूमि हिमालय की गोद मे बसा उत्तराचल भारतीय मानचित्र पर 13 जिलो के साथ 27वें राज्य के रूप मे दर्ज हो गया।

5.2.6 झारखण्ड का गठन

झारखण्ड आन्दोलन देश का ही नही, विश्व का सबसे पुराना अहिसक आन्दोलन माना जाता है जो लगातार जारी रहा। झारखण्ड अर्थात झाडो का प्रदेश अविभाजित बिहार का यह पहाडी क्षेत्र एक समय घने वनो का क्षेत्र था और इसमे रहने वाले वनवासी कहे जाते थे। एक समय यह झारखण्डी सस्कृति वाला झारखण्ड अत्यन्त विशाल क्षेत्रफल वाला क्षेत्र माना जाता था ऐतरेय ब्राह्मण मे उल्लेख है कि इसका नाम पुण्ड्र था। इसके चारो ओर काशी, अग, बग तथा सुह्म राज्य थे। महाभारत मे इसका नाम अर्कखण्ड मिलता है। मुसलमान इतिहासकारो ने इस क्षेत्र को कोकरा एव झारखण्ड कहना शुरू कर दिया।

इस क्षेत्र मे नाग सभ्यता का उल्लेख मिलता है, जिसका विस्तार एक समय मोहनजोदडो तथा हडप्पा तक था। फणिमुकुट राय को झारखण्ड क्षेत्र मे नागवश का आदि पुरूष माना गया। उसी के नाम पर यह क्षेत्र नागपुर तथा बाद मे छोटा नागपुर कर दिया गया। चूँकि इसकी राजधानी चुटिया थी, इसलिए इसका नाम चुटिया नागपुर था। चुटिया नागपुर का नाम अग्रेजी उच्चारण के कारण इसका नाम छोटा नागपुर पडा। छोटा नागपुर

राज्य एक समय अत्यन्त शक्तिशाली था। बिम्बसार ने इस राज्य के सहयोग से अगदेश वर्तमान (भागलपुर) के राजा ब्रह्नदत्त का वध कर अगदेश को मगध साम्राज्य मे सम्मिलित किया था। मगध साम्राज्य की सीमा झारखण्ड मे दामोदर नदी के उद्गम तक मानी जाती थी जो हजारीबाग जिले मे स्थित है। रामगढ से सथाल परगना का क्षेत्र, जिसे सुह्य कहा जाता था, इस क्षेत्र का अग बना। **वायुपुराण** और **विष्णु पुराण** मे इसके निवासियो को मुरूण्ड या मुण्डा कहा गया, जिससे यह मुरूण्ड राज्य कहा गया। महाभारत काल मे इस क्षेत्र मे पशुओ की अधिकता के कारण इसे पशुभूमि कहा गया। मौर्य काल मे इस क्षेत्र को अटावी क्षेत्र कहा गया। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद कलिग के राजा खारबेल ने इसी क्षेत्र के रास्ते से मगध साम्राज्य (पाटलिपुत्र) पर आक्रमण किया।

मौर्य साम्राज्य से पूर्व भी यह क्षेत्र स्वतन्त्र था तथा मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद 13वी शताब्दी तक यह राज्य अपनी स्वतत्रता बरकरार बनाये रखा। 14वीं शताब्दी मे पाल वश के शासको ने इस राज्य के कुछ भागो को अपने साम्राज्य मे मिला लिया। अपनी सास्कृतिक कट्टरता के कारण यह क्षेत्र मुसलमानो के धर्मान्तरणो तथा राज्य नियन्त्रण के प्रयासो का विरोध करता रहा। सन् 1556 ई० मे अकबर के सेनापति इब्राहिम खा ने इस क्षेत्र को मुगल साम्राज्य का अग बना लिया, परन्तु अकबर की मृत्यु के बाद यह क्षेत्र स्वतन्त्र हो गया। सन् 1616 ई० मे यह क्षेत्र जहाँगीर के अधीन आया जो अग्रेजो के समय तक जारी रहा। लगातार विद्रोह के कारण अग्रेजो ने इस क्षेत्र को छोटे–छोटे उप राज्यो मे बॉटकर शासन किया। रामगढ राज्य को राची, हजारीबाग, गया व पलामू क्षेत्र मे बॉट दिया गया तथा स्थानीय लोगो को सेना मे भर्ती किया गया।

अग्रेजो के समय झारखण्ड बगाल के अन्तर्गत आता था तथा इस क्षेत्र को साउथ वेस्ट फ्रटियर कहा जाता था। सन् 1912 ई० मे बिहार व उडीसा बगाल से अलग कर दिये गये। मुस्लिम लीग ने इस क्षेत्र को आदिवासी स्थान बनाने तथा उसे पाकिस्तान के समान एक स्वतन्त्र देश बनाने का प्रयास किया जो सफल नहीं हो सका क्योंकि भारत किसी भी कीमत पर अपना खनिज क्षेत्र छोडने को तैयार नही था।

पृथक् झारखण्ड का विचार सर्वप्रथम सन् 1938 ई० मे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पूर्व छात्र जयपाल सिह को आया जिसने यह विचार एक आदिवासी महासभा मे व्यक्त किया था। सन् 1928 ई० के ओलम्पिक खेलो मे उसने भारतीय हाकी टीम का प्रतिनिधित्व किया, जिससे लोकप्रियता के कारण जयपाल सिह को मराग गोमके के नाम से भी जाना गया। सन् 1950 ई० मे जयपाल सिह के नेतृत्व मे आदिवासी महासभा के स्थान पर झारखण्ड पार्टी की स्थापना की गयी तब आन्दोलन की बागडोर इस पार्टी ने सभाली। झारखण्ड पार्टी एक क्षेत्रीय दल के रूप मे उभरी तथा चुनावो मे भाग लेने लगी। प्रारम्भ मे इसकी सदस्यता आदिवासी लोगो तक ही सीमित थी, परन्तु बाद मे गैर–आदिवासी लोग भी इसके सदस्य बनने लगे। 20 जून, 1963 ई० को झारखण्ड पार्टी का विलय काग्रेस मे हो गया।

झारखण्ड आन्दोलन सन् 1968 ई० मे पुन लोकप्रिय होने लगा। इसका नेतृत्व बिरसा सेवा दल के हाथो मे आ गया। इस दल का नामकरण प्रसिद्ध आदिवासी नेता एव क्रान्तिकारी बिरसा मुण्डा के नाम पर किया गया। 'अग्रेजो छोटा नागपुर छोडो' का उद्घोष बिरसा मुण्डा ने ही किया था। बिरसा सेवा दल ने आदिवासियो की भूमि एव अन्य सम्पत्ति हडपने वालो के खिलाफ आवाज उठायी। सरकार ने अध्यादेश जारी किया जिससे आदिवासियो को उनकी हडपी जमीन मिलनी प्रारम्भ हुई। सशक्त नेतृत्व के अभाव मे बिरसा सेवा दल का आन्दोलन समाप्त हो गया। सन् 1973 ई० मे झारखण्ड आन्दोलन शिबू शेरेन नामक नेता के नेतृत्व मे पुन प्रारम्भ हो गया। शिबू शेरेन ने आदिवासियो के शोषण, पुलिस अत्याचार अन्याय एव श्रम दोहन के खिलाफ आवाज उठाई। अनेक सामाजिक कार्यकर्त्ताओ ने भी आदिवासी लोगो के उत्थान के निमित्त कार्य किया। झारखण्ड मुक्ति मोर्चा भी बिखर गया। सन् 1980 ई० मे झारखण्ड आन्दोलन उग्र रूप मे सामने आया। इसका नेतृत्व रॉची विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० रामदयाल मुण्डा ने किया। उन्होने आदिवासी लोगो के सास्कृतिक उत्थान के लिए सराहनीय कार्य किया। इनकी लोकप्रियता बढने के कारण विरोधी दलो ने इन्हे अमेरिकी गुप्तचर सस्था सी० आई० ए० का एजेन्ट कहा। सन् 1986 ई० मे राजीव सरकार के निर्देश से झारखण्ड विषयक समिति का गठन हुआ। उसमे झारखण्ड क्षेत्र स्वशासी परिषद के गठन की अनुशसा की गयी। 1990 के दशक आते–आते छोटा नागपुर सथाल परगना के झारखण्ड क्षेत्र को कई मायने मे स्वयात्तता देने और पूरे क्षेत्र को पृथक्

इकाई के रूप मे देखने का सिलसिला शुरू हो गया। 9 अगस्त, 1995 को रॉची मे झारखण्ड क्षेत्र स्वशासी परिषद्–जैक का गठन हुआ। इस परिषद मे बिहार के 18 जिलो को सम्मिलित किया गया। जैक के गठन के बाद सात बार इसका कार्यकाल बढाया गया। राज्य सरकार ने 17 सितम्बर, 1998 ई० को झारखण्ड क्षेत्र स्वायत्त परिषद्–जैक को भग कर दिया। इस बीच केन्द्र मे भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार आ गई और उसने अपने चुनाव पूर्व किये गये वायदे को राष्ट्रीय एजेडे मे रखवा कर पृथक् राज्य के गठन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। झारखण्ड राज्य के गठन के लिए 'बिहार पुनर्गठन विधेयक–2000' को लोक सभा ने 2 अगस्त, 2000 को व राज्य सभा ने 11 अगस्त, 2000 को पारित किया। राष्ट्रपति ने इसे 28 अगस्त, 2000 को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। 15 नवम्बर, 2000 को देश का 28वॉ राज्य झारखण्ड अस्तित्व मे आ गया (चित्र 5.5)।

5.2.7 विदर्भ राज्य की मॉग

राज्य पुनर्गठन आयोग ने यह सिफारिश की थी कि मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों को अलग करके एक पृथक विदर्भ राज्य का गठन किया जा सकता है। सरकार ने अपनी परिस्थितियों को ध्यान मे रखते हुए राज्य पुनर्गठन आयोग की इस मॉग को स्वीकार नहीं किया था। परन्तु आयोग द्वारा सिफारिश को आधार बनाकर विदर्भ राज्य के गठन पर जोर दिया जाने लगा। प्रारम्भ मे केन्द्रीय सरकार ने इस मॉग को स्पष्ट रूप में अस्वीकार कर दिया, परन्तु आन्ध्र प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों के गठन के उपरान्त विदर्भ राज्य के गठन की मॉग को अस्वीकार कर दिये जाने का कोई तार्किक आधार और सैद्धान्तिक औचित्य नहीं था। विदर्भ राज्य के गठन की मॉग को लेकर नाग–विदर्भ आन्दोलन समिति ने अपनी मॉग को हिंसक रूप मे व्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया। इसके प्रत्युत्तर में सरकार ने अधिक प्रतिनिधित्व देने तथा विकास कार्यक्रमो के लिये अधिक धन देने की पेशकश की। कुछ समय तक आन्दोलन चलता रहा परन्तु सरकार ने इस विषय मे दृढता से काम लिया। आन्दोलन को प्राप्त जन समर्थन में कमी आने लगी शनै शनै विदर्भ राज्य के गठन की मॉग का स्वर धीमा होता गया।

N
झारखण्ड
प्रशासकीय इकाइयाँ
बि हा र
साहिबगंज
गोड्डा
पाकुड
दुमका
देवघर
कोडरमा
गिरिडीह
गढवा
पलामू
चतरा
हजारीबाग
जामताडा
धनबाद
बोकारो
लातेहार
लोहरदगा
प श्चि म
बं गा ल
गुमला
राँची
छ त्ती स ग ढ़
सराय्यकेला
सिमडेगा
पूर्वी सिंहभूमि
पश्चिमी सिंहभूमि
20 0 20 40 60
किलोमीटर
प्रान्तीय सीमा
जनपद सीमा
प्रान्तीय मुख्यालय
जनपद मुख्यालय
उ ड़ी सा
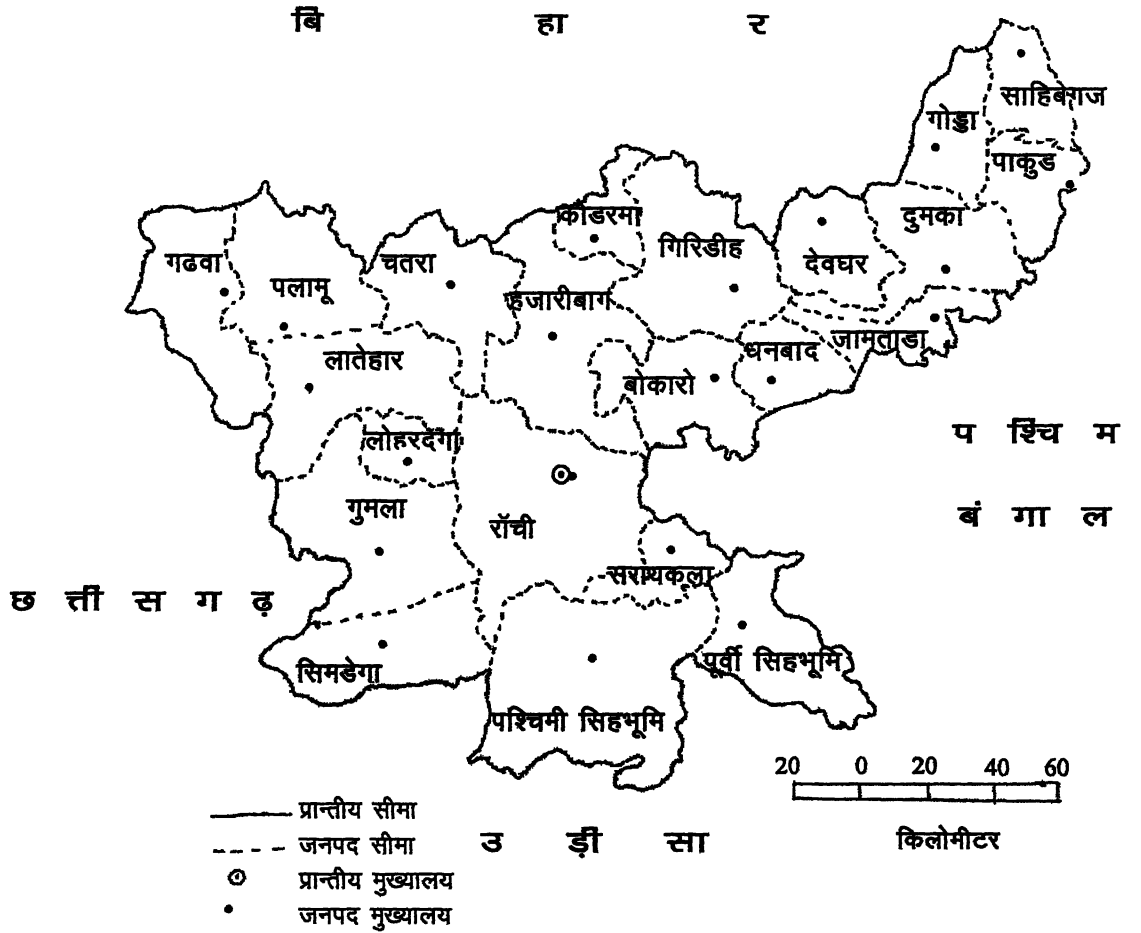
चित्र 5.5

5.2.8 तेलंगाना राज्य की माँग

तेलगाना क्षेत्र के लोगो ने तेलगाना राज्य के गठन की मॉग प्रस्तुत करते हुए यह तर्क दिया था कि आन्ध्र प्रदेश के गठन के समय आन्ध्र प्रदेश के नेताओ ने जो शर्तें स्वीकार की थी, उनका पालन नही किया गया। आन्ध्र प्रदेश के नेताओ द्वारा ये शर्तें स्वीकार की गयी थी– प्रथम राज्य की विधान सभा मे तेलगाना के सदस्यो की एक क्षेत्रीय समिति होगी, जो तेलगाना के विषय मे निर्णय लिया करेगी, द्वितीय, तेलगाना से प्राप्त राजस्व मे से अधिकाश धन तेलगाना के विकास मे लगाया जायेगा, तृतीय तेलगाना मे 15 वर्ष से अधिक समय तक निवास करने वालो को इस क्षेत्र के पदो पर नियुक्त किया जायेगा। चतुर्थ, मुख्यमन्त्री अथवा उप मुख्यमन्त्री मे से कोई एक तेलगाना क्षेत्र का प्रतिनिधि होगा। इन प्रावधानो को पूरा न किये जाने के कारण तेलगाना क्षेत्र की जनता ने तेलगाना राज्य के गठन के लिये आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया। यह आन्दोलन जब तेज तथा हिसक हुआ तो आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमन्त्री ने पूर्व प्रावधानो को लागू करने की इच्छा व्यक्त की। फलस्वरूप तेलगाना क्षेत्र के निवासियों के लिये सुरक्षित पदो पर आन्ध्र प्रदेश के अधिकारियो को हटा दिया गया और तेलंगाना क्षेत्र के लोगों की नियुक्ति की जाने लगी। इस कारण आन्दोलन वापस ले लिया गया। इस निर्णय के विरूद्ध आन्ध्र प्रदेश के छात्रो ने प्रति–आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। फलत तेलंगाना मे पुन आन्दोलन शुरू हो गया। आन्दोलन और प्रति आन्दोलन की तीव्रता को देखते हुए सरकार ने सैनिक सहायता से विधि और व्यवस्था बनाये रखने का प्रयास किया। कई महीनो तक आगजनी, लूट, गोलीकाण्ड और धन–जन की हानि से राज्य की स्थिति बिगड़ने लगी। सन् 1970 ई० मे लोक सभा चुनाव के समय प्रधानमन्त्री ने सन् 1977 ई० के उपरान्त तेलगाना राज्य के गठन का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसको अस्वीकार कर दिया गया और क्षेत्रीय कार्यक्रम को आधार बना कर तेलगाना नेताओं ने चुनाव लडा। चुनाव के बाद प्रधानमन्त्री तथा तेलगाना प्रजा समिति के नेता डॉ० चेन्ना रेड्डी के बीच वार्ता के उपरान्त समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार तेलगाना प्रजा समिति का काग्रेस (एन) मे विलय हो गया। तेलगाना की क्षेत्रीय समिति को वैधानिक मान्यता दी गयी और तेलगाना क्षेत्र के लिये पृथक् पंचवर्षीय योजना का प्रावधान किया गया। यह भी तय किया गया कि मुख्यमन्त्री पद पर तेलगाना क्षेत्र का व्यक्ति ही आसीन होगा। इन व्यवस्थाओ के सन्दर्भ में

प्रधानमन्त्री को यह अधिकार दिया गया कि वे तीन वर्ष के उपरान्त स्थिति की समीक्षा करके यह बताये कि पृथक् तेलगाना राज्य का गठन किया जाये अथवा नही। तेलगाना प्रजा समिति के कुछ नेताओ ने यह समझौता स्वीकार नही किया और वे तुरन्त ही पृथक् राज्य के गठन की मॉग करने लगे।

तेलगाना क्षेत्र मे सन् 1918 ई० मे मुल्की नियम लागू था, जिसके अनुसार छोटी नौकरियो और स्कूल–कालेजो मे दाखिले के सम्बन्ध मे स्थानीय जनता को बाहर से आये लोगो की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती थी। तेलगाना के आन्ध्र प्रदेश मे मिल जाने के बावजूद मुल्की नियम लागू रहा, जिससे आन्ध्र प्रदेश के अन्य निवासियो मे असन्तोष था। सन् 1972 ई० मे जब यह मामला उच्चतम न्यायालय के समक्ष पहुँचा तो उसने यह निर्णय दिया कि वे नियम बहुत अर्से से चले आ रहे हैं और उसमे ससद ही कोई परिवर्तन कर सकती है। इसी बीच तेलगाना मे पृथक्तावादी आन्दोलन शुरू हो गया, जिसे मुस्लिम समुदाय के एक बडे वर्ग का समर्थन प्राप्त था। यह वह वर्ग था जो भूतपूर्व हैदराबाद रियासत मे विशेष अधिकारो का उपयोग कर रहा था। सन् 1967 ई० मे कार्यवाही प्रारम्भ की गई और सन् 1973 ई० मे 5 सूत्रीय फार्मूला घोषित किया गया– प्रथम, मुल्की नियमों को क्रमबद्ध ढग से सन् 1980 ई० तक हटा लिया जायेगा, द्वितीय, तेलगाना क्षेत्रीय समिति को समाप्त कर दिया जाये, तृतीय, अराजपत्रित पदो पर सीधी भर्ती के लिए स्थानीय उम्मीदवारो को प्राथमिकता दी जायेगी, चतुर्थ पिछडे क्षेत्रो की समस्याओ से निपटने के लिए राज्य स्तर पर एक बोर्ड की स्थापना की जायेगी, पचम, हैदराबाद मे एक नये केन्द्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की जायेगी। सन् 1974 ई० में 33वा सवैधानिक सशोधन किया गया जिसने इस समस्या को सुलझाया और तेलगाना आन्दोलन की समाप्ति का कारण बना (श्रीवास्तव, 1996, पृ० 343)।

5.2.9 गोरखालैण्ड की माँग

पर्वतीय नेताओ द्वारा चलाये गये इस आन्दोलन का इतिहास सन् 1907 ई० से शुरू होता है, जब अग्रेज सरकार को दार्जिलिंग जिले के 4 उप–विभागों–सिलीगुडी, कुर्सियांग, कलिम्पोंग और दार्जिलिंग को मिलाकर एक नयी प्रशासकीय इकाई बनाने के लिए ज्ञापन दिया गया। इसका उद्देश्य अल्पसख्को एव पिछडे वर्ग के पर्वतीय लोगो का सामाजिक,

क्षेत्रीय परिषद् मे भेजा। इस क्षेत्र मे रहने वाले नेपालियो की राजनीतिक मॉग पहले 'उत्तराखण्ड' और उसके पश्चात् गोरखास्थान के रूप मे सामने आयी जिसे कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन प्राप्त था (सिह, 1999, पृ० 363)।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दार्जिलिग जिले को असम का हिस्सा बनाने की मॉग की गई। सन् 1955 ई० मे राज्यो के पुनर्गठन के समय दार्जिलिग के लिए एक अलग प्रशासन बनाने की मॉग उठी। सन् 1973 ई० मे पश्चिम बगाल मे सिद्धार्थ शकर राय के नेतृत्व मे काग्रेसी सरकार के समय गोरखा लीग ने एक नयी शक्ति स्थापित करने की गुप्त योजना बनायी। परिणामस्वरूप सन् 1974–75 ई० मे दार्जिलिग के विकास हेतु एक पर्वतीय विकास सलाहकार समिति का गठन किया गया। अप्रैल, 1980 ई० में सुभाष घीसिग के नेतृत्व मे गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा का गठन हुआ। मार्च, 1986 ई० मे पृथक् गोरखालैण्ड की मॉग का आन्दोलन काफी हिसक हो गया क्योकि उनके सामने पंजाब, असम व मिजोरम में हुए इसी प्रकार के समझौतो के उदाहरण थे। गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा ने मार्च, 1986 ई० में अपना 11 सूत्रीय मॉग पत्र प्रस्तुत किया। 25 जुलाई, 1986 ई० को गोरखा समस्या के समाधान के लिए सुभाष घीसिग, पश्चिम बगाल सरकार तथा केन्द्र सरकार के मध्य दार्जिलिग पर्वतीय परिषद के गठन हेतु सहमति हो गयी। लेकिन अक्टूबर, 1987 ई० मे सुभाष घीसिग ने कहा कि इसका नाम गोरखालैण्ड परिषद होना चाहिए। साथ ही उन्होंने तत्कालीन गृहमन्त्री बूटा सिह को यह भी सुझाव दिया कि परिषद के सीमायी अधिकार क्षेत्र मे कुर्सियाग, कलिम्पोग और दार्जिलिग के क्षेत्र भी शामिल होंगे, के स्थान पर परिषद के सीमायी अधिकार क्षेत्र मे दार्जिलिग का सिलीगुडी और जलपाईगुडी का दोआब उप–क्षेत्र भी शामिल किया जाये। परन्तु पश्चिम बंगाल के तत्कालीन मुख्यमन्त्री ज्योति बसु ने इसे अस्वीकार कर दिया (सिह, 1999, पृ० 364)।

सितम्बर, 1988 ई० में पश्चिम बगाल विधान सभा मे दार्जिलिंग पर्वतीय परिषद के गठन का प्रावधान किया गया। सितम्बर, 1988 ई० मे ही पश्चिम बगाल विधान सभा में दार्जिलिग गोरखा पर्वतीय परिषद विधेयक मजूर हो गया। दिसम्बर, 1988 ई० मे सम्पन्न परिषद चुनावो में गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा ने भारी बहुमत से विजय हासिल की तथा परिषद ने कार्य प्रारम्भ कर दिया। वर्षों के संघर्ष के बाद पश्चिम बंगाल के पर्वतीय क्षेत्र

कुर्सियाग और दार्जिलिग के क्षेत्र को जब गोरखा क्षेत्रीय विकास परिषद बनाकर सुभाष घीसिग को शान्त किया गया, तभी यह आशका व्यक्त की गयी थी कि यह समस्या बहुत दिन तक सुलझी नही रहेगी, बल्कि अपने एक नये अन्दाज मे सामने आयेगी। सुभाष घीसिग ने एक नया नारा दिया कि दार्जिलिग का अवैध तरीके से भारत में विलय हुआ है। स्वायत्त विकास परिषद के गठन से सुभाष घीसिग का राजनीतिक कद चाहे जितना बढ गया हो, लेकिन वहाँ के निवासियो के जीवन स्तर मे न तो कोई सुधार हुआ है और न ही दार्जिलिग क्षेत्र का विकास हुआ है। हालाकि इस दार्जिलिग गोरखा पर्वतीय परिषद के गठन से पश्चिम बगाल के इस पर्वतीय क्षेत्र की शान्ति लौट आयी, लेकिन यह समस्या का स्थायी समाधान न होकर तात्कालिक समाधान है। दिसम्बर, 2000 ई० को सुभाष घीसिग ने कहा कि यदि छत्तीसगढ, उत्तराचल तथा झारखण्ड राज्य का गठन किया जा सकता है तो पृथक गोरखालैण्ड को भी राज्य बनाना ही होगा। पश्चिम बगाल मे सत्ता पक्ष तथा विपक्ष सभी ने सुभाष घीसिग की पृथक् गोरखालैण्ड राज्य की मॉग का तीव्र विरोध करते हुए स्पष्ट कर दिया कि उन्हे पश्चिम बगाल के एक हिस्से को अलग करना कदापि मजूर नही है (सिह, 1999, पृ० 365)।

5.2.10 बोडोलैण्ड की माँग

सन् 1907 ई० में कालीचरण ब्रह्मचारी के नेतृत्व मे ब्रह्मा आन्दोलन अस्तित्व मे आया। ब्रह्मा आन्दोलन ने बोडो जनजातीय लोगो मे शिक्षा, समाज सुधार व बचत के प्रति जागरूकता उत्पन्न की। इसके प्रभाव से वे लोग बोडो जनजातीय भाषा के संरक्षण तथा नौकरियों मे आरक्षण की मॉग करने लगे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् बोडो साहित्य सभा की स्थापना की गयी, जिसने बोडो भाषा को अपनी शिक्षा का माध्यम बनाने की आवाज बुलन्द की जिसे सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया। फिर बोडो भाषा की रोमन लिपि को मान्यता दिलाने सम्बन्धी मॉग भी सरकार ने स्वीकार कर ली। बोडोलैण्ड की मॉग को 20वीं शताब्दी के साठ के दशक के भाषायी आन्दोलन मे ढूँढा जा सकता है, जब तत्कालीन बृहत्तर असम मे असमी भाषा को एकमात्र सरकारी भाषा घोषित किये जाने का प्रस्ताव किया गया। बोडो, कारबी आदिवासियो एव बगालियो ने इसके विरुद्ध आन्दोलन चलाया जिसके कारण असमी राजभाषा नही बन पायी (सिंह, 1999, पृ० 368)।

बोडो आन्दोलन मुख्य रूप से असम की जनजातियो का आन्दोलन है। अत इस आन्दोलन की जडे जनजातीय क्षेत्रो की स्वायत्तता की मॉग से जुडी हुई हैं। सन् 1967 ई० मे असम मैदानी जनजाति परिषद ने असम के जनजातीय क्षेत्रो की स्वायत्तता की मॉग करते हुए भूटान और अरूणाचल प्रदेश के तराई वाले क्षेत्र को मिलाकर उदयाचल राज्य की मॉग की थी किन्तु अब आन्दोलन उदयाचल नही बोडो हदोत अर्थात् बोडो लैण्ड है।

बोडो नेताओं ने बोडोलैण्ड का जो मानचित्र प्रस्तुत किया है उसमे मात्र 25,478 1 वर्ग किमी० का क्षेत्र है। एक स्वायत्तशासी राज्य के रूप मे एनसी हिल्स एव कर्बी एगलाग के लिए 15, 222 वर्ग किमी० और भूमि की मॉग की गयी। इस प्रकार बोडोलैण्ड का कुल क्षेत्रफल असम के कुल क्षेत्रफल (78,523 वर्ग किमी०) के आधे से अधिक है। इसमे कोकराझार, धुब्री, ग्वालपाडा, बारपेटा, नलबारी, कामरूप, दराग, शान्तिपुर, लखीमपुर, मजुली और सदिया के क्षेत्र सम्मिलित हो जाते हैं।

बोडोलैण्ड के समर्थन में बोडो नेता पूर्वोत्तर भारत के पॉच राज्यों– मेघालय, मणिपुर, मिजोराम, नागालैण्ड और त्रिपुरा के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इन राज्यो का क्षेत्रफल प्रस्तावित बोडो राज्य के क्षेत्रफल से भी कम है। उनका तर्क है जब ये राज्य बन सकते हैं तो इनसे अधिक क्षेत्रफल वाला बोडो राज्य भी अलग क्यों नही हो सकता?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात बहुत अधिक सख्या मे अप्रवासी आने लगे और अचल सम्पत्तियॉ खरीदनी शुरू कर दी। अपने पडोसी राज्यो मेघालय, मिजोरम व नागालैण्ड के जनजातियो की प्रगति देखकर बोडो जनजातियो ने भी अपनी संस्कृति की रक्षा हेतु राजनीतिक सत्ता प्राप्ति के लिये आन्दोलन शुरू कर दिये। सन् 1987 ई० मे पुनः बोडोलैण्ड की मॉग पर आन्दोलन शुरू हो गया। इसके पश्चात् असम गण परिषद तथा अखिल असम छात्र यूनियन द्वारा विदेशी घुसपैठियों के विरुद्ध किये जाने वाले आन्दोलन मे बोडो समुदाय ने इनका साथ दिया, परन्तु इस सहयोग से बोडो समुदाय को निराशा मिली, तत्पश्चात् 2 मार्च, 1987 ई० का बोडो पीपुल्स एक्शन कमेटी तथा अखिल बोडो छात्र परिषद ने भारतीय सविधान मे एक पृथक् राज्य का गठन करके अपनी समस्याओ के समाधान के उद्देश्य से बोडो आन्दोलन शुरू किया। 28 अगस्त, 1987 ई० को एक त्रिपक्षीय वार्ता केन्द्र सरकार,

राज्य सरकार एव बोडो प्रतिनिधियो के मध्य हुई। परन्तु यह वार्ता असफल रही (श्रीवास्तव, 1996, पृ० 341)।

प्रारम्भ मे बोडो आन्दोलन ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट पर यूनियन के गढ समझे जाने वाले दराग जिले के ऊदलगुडी उपखण्ड तक ही सीमित रहा। सन् 1989 ई० मे आन्दोलन ने हिसक रूप धारण कर लिया। बोडो आन्दोलनकारियो की मॉगो मे प्रथम, ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तटीय श्रीरामपुर से सादिया तक के क्षेत्र को बोडोलैण्ड नामक पृथक् केन्द्र शासित क्षेत्र बनाना व द्वितीय, सविधान की अनुसूची के अन्तर्गत ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तट पर मैदानी जनजातीय क्षेत्रो के लिये जिला परिषद की स्थापना प्रमुख थी। केन्द्र सरकार द्वारा देश के विखण्डन और पृथक् राज्य की मॉग से स्पष्ट इनकार के कारण आन्दोलनकारियो से बातचीत के विभिन्न दौर असफल रहे। अक्टूबर, 1989 ई० मे केन्द्र राज्य व बोडो छात्र सघ के अध्यक्ष के बीच त्रिपक्षीय वार्ता प्रारम्भ हुई। 13 दिसम्बर, 1990 ई० को आठवें दौर की बातचीत के समय ब्रह्मपुत्र के उत्तर मे बोडो और अन्य आदिवासी क्षेत्रों का निर्धारण करने व उनके विधायी प्रशासनिक एव तकनीकी अधिकारो और स्वायत्तता के सम्बन्ध मे सिफारिश हेतु तीन सदस्यो की विशेषज्ञ समिति के गठन पर सहमति हुई। बोडो आन्दोलनकारियों, केन्द्र सरकार एव असम सरकार के मध्य 20 फरवरी, 1993 ई० को हुए एक त्रिपक्षीय समझौते के साथ ही पिछले एक दशक से चला आ रहा हिंसक आन्दोलन अस्थाई रूप से रुक गया है।

यद्यपि इस समझौते के बाद हिसक आन्दोलन की समाप्ति की आशा की जा रही थी, लेकिन हाल मे आतकवादी गतिविधियों मे निरन्तर बढोत्तरी से यह भ्रम टूटता दिखायी पडता है। इससे स्पष्ट है कि बोडो आन्दोलनकारियो, केन्द्र सरकार एव असम सरकार के मध्य हुआ त्रिपक्षीय बोडो समझौता बोडो लोगो और असम घाटी मे शान्ति स्थापित करने मे सफल नहीं हो सका है।

5.2.11 बुन्देलखण्ड की माँग

बुन्देलखण्ड (चित्र 5.6) की मॉग विगत पॉच दशकों से की जा रही है। इस माँग के पीछे बुन्देली भाषा को कसौटी बनाया जा रहा है। पृथक् बुन्देलखण्ड राज्य के वर्तमान समर्थकों में पत्रकार एव बुन्देलखण्ड राज्य संघर्ष समिति के अध्यक्ष महेन्द्र कुमार मानव प्रमुख

बुन्देलखण्ड
प्रशासकीय इकाइयाँ
N
भिण्ड
उत्तर प्रदेश
उरई
ग्वालियर
मुरैना
दतिया
झाँसी
हमीरपुर
बाँदा
शिवपुरी
राजस्थान
टीकमगढ़
रीवा
छतरपुर
सतना
गुना
ललितपुर
पन्ना
विदिशा
सागर
दमोह
जबलपुर
मध्य प्रदेश
रायसेन
नरसिंहपुर
छत्तीसगढ़
होशगाबाद
छिंदवाड़ा
बैतूल
40 0 40 80 120
महाराष्ट्र
किलोमीटर
प्रान्तीय सीमा
जनपद सीमा
जनपद मुख्यालय
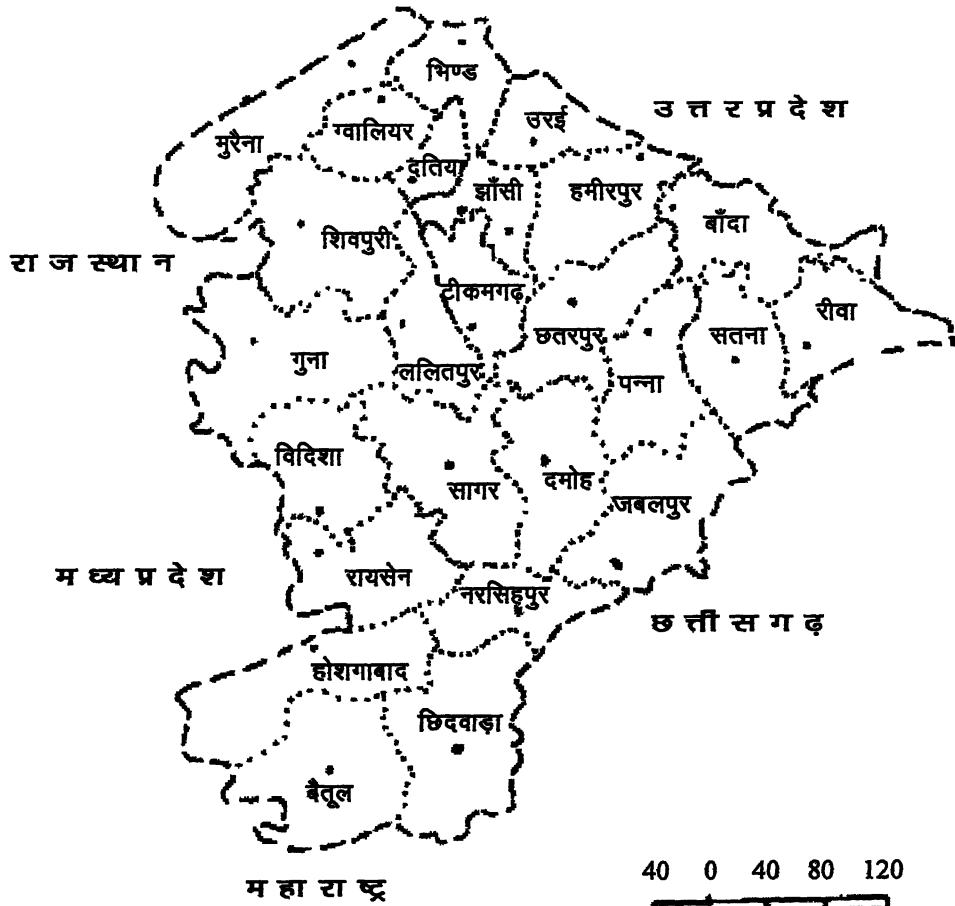
चित्र 5.6

हैं। पृथक् बुन्देलखण्ड की मॉग सर्वप्रथम टीकमगढ के पूर्व नरेश वीरेन्द्र सिह जूदेव एव पडित बनारसी दास चतुर्वेदी ने पॉच दशक पूर्व चलाई थी। सन् 1949–50 ई० मे तत्कालीन पन्ना महाराज एव बाद मे रविशकर शुक्ल तथा द्वारका प्रसाद मिश्र ने भी इस मॉग को उठाया। कुछ समय बाद महाराष्ट्र राज्य निर्माण के अनुरूप ही बुन्देलखण्ड समर्थको ने भी सघर्ष समिति गठित की। बुन्देलखण्ड समर्थको के अनुसार इस क्षेत्र की ऐतिहासिक, भौगोलिक, सास्कृतिक एव भाषाई सस्कृति एक है लेकिन वह दो राज्यो मे बॅटी हुई है तथा इससे क्षेत्र की विकास योजनाओ मे समन्वय नही हो पाता है। दोनो राज्यो के हित इन समस्याओ के समाधान खोजने मे बाधक बने हुए हैं। बुन्देलखण्ड राज्य मे मध्य प्रदेश के 23 जिले यथा सागर, दमोह, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ, सतना, जबलपुर, रीवा, नरसिहपुर, छिदवाडा, सिवानी, माण्डला, बालाघाट, होशगाबाद, रायसेन, विदिशा, बैतूल, ग्वालियर, शिवपुरी, गुना, दतिया, भिण्ड तथा मुरैना, और उत्तर प्रदेश के 5 जिले यथा झासी, जालौन, बादा, हमीरपुर एव ललितपुर सम्मिलित करने की मॉग की जाती रही है।

5.2.12 विभिन्न अन्य राज्यों के लिए माँगें

उपरोक्त राज्यों के अतिरिक्त क्षेत्रीय दलो तथा विविध राज्यो के असन्तुष्ट लोगों द्वारा पृथक् राज्य के गठन की मॉगो के अलावा कुछ अन्य क्षेत्रो ने भी ऐसी ही मॉगे प्रस्तुत की हैं। इस प्रकरण मे प्रमुखत वे रियासते थीं जो किसी समय स्थानीय राजाओ के अधिकार मे थी। कर्नाटक मे पृथक मैसूर राज्य की स्थापना की मॉग की गयी। कर्नाटक के कोडागू क्षेत्र के कोडागू राज्य मुक्ति मोर्चा ने कुर्ग क्षेत्र मे एक पृथक कोडागू राज्य की स्थापना की मॉग की है। मोर्चे के अनुसार देश के कुल काफी उत्पादन के 40 प्रतिशत भाग का उत्पादन करने वाले कोडागू क्षेत्र की कर्नाटक सरकार ने निरन्तर उपेक्षा की है। उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के कुछ क्षेत्रो को मिलाकर बृज राज्य की मॉग की जा रही है। इसी प्रकार रूहेलखण्ड, भोजपुर, हरित प्रदेश आदि राज्यो के गठन की मॉग प्राय सुनायी देती है। मध्य प्रदेश मे मालवाचल राज्य की मॉग की जा रही है। जिसमे इन्दौर, धार देवास, उज्जैन, रतलाम, मदसौर, झाबुआ, खण्डवा, खरगोन, रायगढ तथा भोपाल सम्मिलित हैं। असम मे हाल ही मे गठित नये राजनीतिक दल बरक गण परिषद ने कछार, करीमगंज तथा हैलाकाडी को शामिल करते हुए एक पृथक बरकलैण्ड की स्थापना की मॉग की है। बरक गण परिषद् के

अध्यक्ष रति रजन राय के अनुसार असम की सरकारो ने निरन्तर बरक घाटी के विकास की उपेक्षा की है जिससे यह क्षेत्र सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड गया है।

5.3 अन्तर्राज्यीय विवाद

प्रादेशिकवाद की अन्य अभिव्यक्ति अन्तर्राज्यीय विवादो के रूप मे भी हुई है। सीमा निर्धारण, नदी–जल बॅटवारे तथा अतिरिक्त भूमि क्षेत्रो की मॉग आदि से सम्बन्धित विवादो ने राज्यो के बीच कटुता को बढाया है। इस विषय मे कतिपय विवाद इस प्रकार हैं–

5.3.1 चण्डीगढ़ का प्रश्न

पजाब के विभाजन के फलस्वरूप जिन अन्य विवादों का जन्म हुआ, उनमे चण्डीगढ का विवाद विशेष महत्वपूर्ण है। इसके लिए पजाब तथा हरियाणा परस्पर प्रतिद्विन्दिता मे सलग्न हैं। दोनो ही राज्यो में इसको अधिकार मे लेने के लिए अनेक आन्दोलन हुए हैं। इस विवाद को हल करने के लिए केन्द्र सरकार ने यह निर्णय लिया था कि जिस राज्य को यह नगर दिया जायेगा, उसे इसके बदले मे अपने कुछ निर्धारित भू–भाग दूसरे राज्य को देना होगा। वस्तुत केन्द्र सरकार ने सभी परिस्थितियों को ध्यान मे रखते हुए यह निर्णय किया कि चण्डीगढ पजाब को दिया जायेगा और इसके बदले वह फाजिल्का तहसील के 114 हिन्दी भाषी गॉव तथा फाजिल्का, अबोहर नगर हरियाणा को देगा। यह भी तय किय गया कि हरियाणा को अपनी राजधानी चण्डीगढ में 5 वर्ष तक रखने का अधिकार होगा। परन्तु इन प्रस्तावो को दोनो राज्यो ने नहीं माना। कई आयोगो का गठन हुआ और निश्चित तिथि को चण्डीगढ को पजाब को दिये जाने की घोषणा भी हुई, परन्तु स्थिति यथावत बनी है।

5.3.2 मैसूर–महाराष्ट्र सीमा विवाद

मैसूर के बीजापुर, बेलगाँव, उत्तरी कनारा तथा धारवाड क्षेत्र मराठी भाषी क्षेत्र हैं। यहॉ पर भी प्रादेशिकवाद देखने में आया। महाराष्ट्र सरकार ने केन्द्र सरकार से इस क्षेत्र के विवाद को सुलझाने का अनुरोध किया तो केन्द्र सरकार ने मामले की जॉच करने के लिए भूतपूर्व न्यायमूर्ति मेहरचन्द्र महाजन की अध्यक्षता मे एक आयोग का गठन किया। परन्तु इससे पूर्व कि आयोग अपनी सिफारिशे दे महाराष्ट्र तथा कर्नाटक राज्य में आन्दोलन शुरू हो

गये। आन्दोलन और प्रति आन्दोलनो के बावजूद महाजन आयोग की सिफारिशे सामने आयी तो सम्पूर्ण महाराष्ट्र समिति ने आयोग की सिफारिशे अस्वीकार कर दी। मैसूर ने इसे स्वीकार कर लिया। इस गतिरोध को दूर करने के लिये ससद मे विचार किया गया। मैसूर ने इसका विरोध किया फलस्वरूप वहॉ हिसक घटनाये होने लगी। मैसूर विधान सभा ने इस आशय का प्रस्ताव पारित किया कि महाजन आयोग की सिफारिशो को लागू करने के सम्बन्ध मे यथाशीघ्र वैधानिक कार्यवाही की जाये। इससे केन्द्र सरकार असमजस मे पड गयी। किसी प्रकार स्थिति को नियन्त्रण मे रखा गया, परन्तु सन् 1973 ई० मे मराठी जनता और पुलिस के बीच सघर्ष होने से यह मामला पुन जीवित हो गया। कोल्हापुर, पुणे, मुम्बई, आदि मे हिसक आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। अन्त मे सन् 1975 ई० मे इस मामले को निपटा दिया गया।

5.3.3 नदी–जल बँटवारा सम्बन्धी विवाद

नदी जल बॅटवारे से सम्बन्धित विवादो मे भी प्रादेशिकवाद की प्रमुख अभिव्यक्ति की। कृष्णा नदी के जल बॅटवारे के विषय में महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उडीसा तथा आन्ध्र प्रदेश के बीच विवाद उत्पन्न हुआ। इसको सुलझाने के लिए राजस्थान उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायधीश डी० एम० भण्डारी की अध्यक्षता में सन् 1969 ई० मे एक आयोग का गठन किया गया। इसकी सिफारिशों के आधार पर जल–बॅटवारे का मामला तय किया गया। पजाब, कश्मीर और हिमाचल प्रदेश के बीच रावी नदी के जल विभाजन को लेकर विवाद हुआ जिसे केन्द्रीय सरकार के हस्तक्षेप द्वारा तय किया गया। रावी और व्यास नदी के जल विभाजन के मामले पर पजाब, हरियाणा और राजस्थान के मध्य विवाद हुआ जिसे सन् 1981 ई० मे इन्दिरा गॉधी के हस्तक्षेप द्वारा सुलझाया गया। इसी प्रकार कावेरी जल बॅटवारे को लेकर कर्नाटक, तमिलनाडु, पाण्डिचेरी तथा केरल के मध्य विवाद हुआ जिसे आज तक नही सुलझाया जा सका है। कावेरी जल विवाद की विष बेल तब पल्लवित हुई जब तत्कालीन मैसूर राज्य ने कावेरी नदी के जल के उपयोग के लिए सन् 1889 ई० मे बॉध बनाना चाहा। सन् 1892 ई० मे मैसूर राज्य तथा मद्रास प्रेसीडेसी के मध्य कावेरी नदी के जल के बॅटवारे को लेकर काफी विवाद हुआ। विवाद की गम्भीरता को देखते हुए मैसूर राज्य ने इस मामले को भारत सरकार को सुपुर्द कर दिया। भारत सरकार ने न्यायाधीश श्री एच० डी० ग्रिफिन

की अध्यक्षता मे एक सदस्यीय आयोग का गठन किया, जिसने अपना निर्णय 12 मई, 1914 ई० को दिया। मद्रास प्रेसीडेन्सी ने इस निर्णय को मानने से इनकार कर दिया।

इस जल विवाद को सुलझाने का दूसरा गम्भीर प्रयास सन् 1920 ई० मे प्रारम्भ हुआ, जब भारत सरकार की मध्यस्थता मे मैसूर राज्य एव मद्रास प्रेसीडेसी के मध्य वार्ता प्रारम्भ हुई। इस वार्ता के परिणामस्वरूप 18 फरवरी, 1924 ई० को दोनो राज्यो के मध्य जल बॅटवारे को लेकर एक समझौता हो गया। इस समझौते की अवधि 50 वर्ष थी, जोकि सन् 1974 ई० मे समाप्त होने वाली थी। इस बीच दोनो राज्यो ने समझौते का व्यापक उल्लघन किया। दोनो राज्यो ने समझौते के विपरीत मनमाने ढग से पानी का प्रयोग किया। तमिलनाडु द्वारा अधिक भूभाग की सिचाई करने के कारण कावेरी घाटी से सलग्न राज्यो के मध्य मतभेद उत्पन्न हुए, इसका परिणाम यह हुआ कि कावेरी नदी पर निर्माणाधीन परियोजनाओ का विरोध होने लगा।

सन् 1974 ई० मे जब समझौते की अवधि समाप्त हो गयी तब समाधान के पुनर्प्रयास में तत्कालीन केन्द्रीय सिंचाई मन्त्री बाबू जगजीवन राम की अध्यक्षता मे तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल के मुख्यमंत्रियो की 26, नवम्बर, 1974 ई० को दिल्ली में एक बैठक हुई। इस विवाद के निपटारे के लिए इस बैठक में "कावेरी घाट प्राधिकरण" के गठन पर सहमति भी हो गयी। परन्तु राज्यो के आपसी मतभेद के कारण यह योजना सफल नहीं हो सकी।

4 मई, 1990 ई० को सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्र सरकार को कावेरी नदी के जल बॅटवारे को सुनिश्चित करने के लिए एक न्यायाधिकरण गठित करने का आदेश दिया। सर्वोच्च न्यायालय के आदेशानुसार केन्द्र सरकार ने 2 जून, 1990 ई० को मुम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश चित्ततोष मुकर्जी की अध्यक्षता मे तीन सदस्यीय न्यायाधिकरण का गठन किया। इस न्यायाधिकरण के दो अन्य सदस्य थे · इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश एस० डी० अग्रवाल तथा पटना उच्च न्यायालय के न्यायाधीश एन० एस० राव। इस न्यायाधिकरण ने कावेरी जल विवाद के सम्पूर्ण पहलुओ पर व्यापक सर्वेक्षण किया। पहलुओ पर व्यापक सर्वेक्षण करने के उपरान्त कर्नाटक सरकार को यह आदेश दिया कि 1

जुलाई, 1991 ई० से तमिलनाडु को 205 टी० एम० सी० फुट पानी छोडने का तथा कावेरी बेसिन मे अपने सिचाई क्षेत्र को 11 2 लाख एकड तक सीमित रखने का निर्देश दिया।

कुछ समय पश्चात् कर्नाटक ने न्यायाधिकरण के अन्तरिम निर्णय को मानने से इनकार कर दिया। न्यायाधिकरण के निर्णय को न मानने के सन्दर्भ मे कर्नाटक ने ये तर्क दिये–

(1) यदि किसी वर्ष जल 205 टी एम सी फुट से अधिक हो तो उस वर्ष जल तमिलनाडु को दिया जा सकता है। परन्तु यदि किसी कारण वश जल कम हुआ तो कर्नाटक अपने राज्य की सिचाई मे कटौती कर जल देने के लिए बाध्य नही होगा।

(ii) कर्नाटक ने यह तर्क दिया कि तमिलनाडु को 205 टी एम सी फुट पानी की आवश्यकता नहीं है, वह मात्र 176 टी एम सी फुट पानी से अपना कार्य सुचारू रूप से चला सकता है।

(iii) तमिलनाडु के पास भूमिगत जल लगभग 230 टी एम सी फुट है, जिसका उपयोग वह कर सकता है परन्तु द्वेषवश वह ऐसा नहीं कर रहा है।

(iv) तमिलनाडु मे मैटूर बॉध से ग्रैंड अरकाट तक 204 किमी क्षेत्र में तीन बडी नदियॉ–भवाई, नोइल व पन्नीर हैं, जिन पर तमिलनाडु बॉध बना सकता है और सिचाई कर सकता हैं।

कावेरी जल विवाद का अब पूरी तरह राजनीतिकरण हो चुका है। तमिलनाडु को यह विश्वास है कि कर्नाटक कावेरी का पानी रोककर तमिलनाडु को जानबूझ कर शुष्क बना देने की कुचेष्टा कर रहा है जबकि कर्नाटक का पक्ष है कि कावेरी का जल उसका है और यदि वह जल तमिलनाडु का देता है तो उसकी अपनी भूमि शुष्क और बजर हो जायेगी।

वर्तमान समय में यह मुद्दा तब प्रकाश मे आया जब 3 सितम्बर, 2002 के अपने फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने कर्नाटक को तमिलनाडु के लिए प्रतिदिन 1.25 टी एम सी

फुट पानी छोडने का निर्देश दिया, न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि यह अन्तरिम आदेश कावेरी नदी प्राधिकरण के निर्णय के बाद स्वत समाप्त हो जायेगा।

प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता मे कावेरी नदी प्राधिकरण ने कर्नाटक को 08 टी एम सी फुट जल प्रतिदिन छोडना शुरू कर दिया। परन्तु काबिनी जलाशय मे एक किसान द्वारा कूदकर आत्महत्या कर लेने के पश्चात् कर्नाटक ने तमिलनाडु को पानी देना तत्काल बन्द कर दिया। इस मामले मे प्रधानमन्त्री ने हस्तक्षेप करते हुए कर्नाटक को पुन पानी जारी करने का आदेश दिया परन्तु कर्नाटक ने अपने किसानो का हित देखते हुए जलाशय मे पानी की कमी को दिखाकर पानी देने से मना कर दिया। उधर तमिलनाडु की मुख्यमन्त्री जयललिता ने इस मामले की सर्वोच्च न्यायालय मे न्यायालय की अवमानना की याचिका दाखिल कर दी। इस अवमानना की रिट को न्यायालय ने स्वीकार करते हुए कर्नाटक के मुख्यमन्त्री एम० एम० कृष्णा सहित चार अन्य को नोटिस देते हुए पूछा कि अदालत की अवमानना करने और कावेरी नदी प्राधिकरण के निर्देशो का पालन नही करने के लिए क्यों न उनके खिलाफ कार्यवाही की जाये? हाल मे न्यायालय की अवमानना से बचने के लिए कर्नाटक ने तमिलनाडु को कावेरी का जल देने की सहमति दी है।

कावेरी जल विवाद विगत कई वर्षों से दक्षिण भारत की राजनीति को प्रभावित करता चला आ रहा है, यह जल विवाद अब जल विवाद न होकर एक राजनीतिक विवाद हो गया है। एक तरफ जहाँ कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच जल बॅटवारे को लेकर दोनों राज्यों के शीर्ष राजनीतिक नेतृत्व एक दूसरे पर तलवारें खींचे हुए हैं वहीं उनकी जनता सडको पर उतर आयी है। राष्ट्रीय हितो को तिलाजलि देकर ये नेता जनता की भावनाओ को भडकाकर अपनी राजनीतिक रोटियॉ सेक रहे हैं। सौ साल से अधिक चले आ रहे इस विवाद को हल करने का कभी भी पूरी ईमानदारी से प्रयास नही किया गया। यह विवाद कभी दोनों राज्यो के समझौते के पाले मे, कभी केन्द्र सरकार के पाले में, कभी न्यायिक प्राधिकरण के पाले में और कभी न्यायालय के पाले मे झूलता रहा, परिणामत स्थायी समाधान की मंजिल तक पहुँच ही नहीं पाया। इस पर एक विवेकपूर्ण ढंग से विचार कर राष्ट्रीय जलनीति तैयार करने की आवश्कता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

अख्तर, शकील, 2000 **स्वायत्तता का विवाद**, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली।

भारती, चन्द्रमधु, 1998, **उत्तराचल**, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

चन्द्र, विपिन, 2002 **आजादी के बाद का भारत**, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय , दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

चौहान, पी० आर०, 1995 **राजनीतिक भूगोल**, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।

खन्ना, वी० एन० एव अरोडा, लिपाक्षी, 1997 **भारत की विदेश नीति**, विकास पब्लिशिग हाउस, प्रा० लि०, नई दिल्ली।

खाती, सजय, 2000 **कश्मीर फिर स्वायत्तता की पुकार**, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली।

कौशिक, रेखा, 2000 · **भारत मे सरकार और राजनीति**, पीयूष पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

Rao, P.V.R., 2000 : **Defence without Drift,** Prentice - Hall of India Private Limited, New Delhi.

शर्मा, जे० के०, 1999 **तथ्यों के आइने मे कश्मीर**, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली।

सक्सेना, हरिमोहन, 1997 **राजनीतिक भूगोल**, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।

श्रीवास्तव, ओमप्रिया, 1996 **भारतीय संविधान, शासन और राजनीति**, सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी।

श्रीवास्तव, जे० एम०, 2000 . **भारत की सुरक्षा**, चन्द्र प्रकाश एण्ड ब्रादर्स, हापुड।

वैद्य, माधव गोविन्द, 2002 . **जम्मू–कश्मीर पुनर्गठन क्यों?** विश्व संवाद केन्द्र, लखनऊ।

✽✽✽✽✽

अध्याय –6

प्रादेशिकवाद बनाम राष्ट्रवाद

प्रत्येक मानव को अपनी जन्म भूमि से लगाव होता है। परन्तु यह लगाव देश या राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व से नियत्रित रहता है। परन्तु जब किन्ही कारणोवश राष्ट्र के हितो के विपरीत क्षेत्रीय हितो को अधिक महत्व दिया जाने लगता तो इससे टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्रादेशिकवाद जब राष्ट्रीय हितो से टकराता है तो देश की एकता और अखण्डता के लिए गम्भीर खतरा पैदा हो जाता है। भारत मे समय–समय पर प्रादेशिकवाद की भावना उठती रही है। प्रत्येक क्षेत्र मे लोग दूसरो पर अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित करने का प्रयत्न करते रहे हैं जिससे विभिन्न क्षेत्रो के बीच आर्थिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक सघर्ष और तनाव प्रतिदिन बढता जा रहा है। इससे केन्द्र तथा राज्य सरकारो के बीच सम्बन्धो मे विकृति आती जा रही है तथा स्वार्थी नेतृत्व व सगठन विकसित हो रहे हैं। भाषा की समस्या और अधिक जटिल होती जा रही है। इससे आन्दोलनात्मक राजनीति को बढ़ावा मिला है। प्रादेशिकवाद के आन्दोलनकारियों ने अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए धर्म, भाषा, जाति जैसे विघटनकारी तत्वों का सहारा लिया है, जिससे भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग मे नवीन बाधाये पैदा हो रही हैं। इसके साथ–साथ यदि देखा जाये तो आज भारतीय राजनीति मे क्षेत्रीय दलो का बढता प्रभाव प्रादेशिकवाद के लिए उत्तरदायी है, जैसे तमिलनाडु मे द्रविड मुनेत्र कडगम एव अन्ना द्रविड मुनेत्र कडगम, महाराष्ट्र मे शिव सेना, असम मे असम गण परिषद, पजाब मे अकाली दल, आन्ध्र प्रदेश मे तेलगुदेशम तथा जम्मू-कश्मीर में नेशनल कान्फ्रेस आदि प्रमुख हैं जो अपने क्षेत्र विशेष के हितो का प्रतिनिधित्व करते हैं। भावातिरेकता में वे ऐसी मॉगें कर बैठते हैं या ऐसे आन्दोलनों को समर्थन दे बैठते हैं जिससे राष्ट्रीय हितो को नुकसान पहुँचता है एव देश की एकता एव प्रभुसत्ता को खतरा बढ जाता है। वर्तमान अध्याय में प्रादेशिकवाद एवं राष्ट्रवाद के इन्ही परस्पर विरोधी पक्षों के विवेचन का प्रयास किया गया है।

6.1 राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ

राष्ट्र एक अखण्ड व्यवस्था नही है। राष्ट्र का निर्माण अनेक परिवारो, समूहो, समितियो, सस्थाओ, समुदायो, यहॉ तक कि विभिन्न भूखण्डो, जिनमे कि समाज के सदस्य निवास करते हैं, को लेकर होता है। उसी राष्ट्र मे अनेक लोग भी निवास करते हैं और यह भी हो सकता है कि उस राष्ट्र के उन सदस्यो मे प्रजाति, धर्म, भाषा, रीतिरिवाज, आचार-विचार आदि आधारो पर अनेक भिन्नताये हो। इन विभिन्नताओ के बीच भी उस राष्ट्र के सदस्यो मे किन्ही समानताओ के आधार, जैसा कि इसी आधार पर कि वे सब एक ही राष्ट्र के सदस्य हैं, एक प्रकार की एकात्मकता हो सकती है और उनके पारस्परिक व सम्मिलित क्रियाकलापो मे उसे वास्तव मे देखा भी जा सकता है। इस प्रकार विभिन्नताओ के बीच भी राष्ट्रीय एकता रखने एव विभिन्न प्रजातीय, धार्मिक, भाषा-भाषी व भौगोलिक समूहो को एक सूत्र मे बॅधे रहने की स्थिति को ही राष्ट्रीय एकीकरण कहते हैं। इस अर्थ मे राष्ट्रीय एकीकरण विभिन्नताओ के बीच भी राष्ट्र के लोगो मे एक होने की दृढ भावना की अभिव्यक्ति है, ताकि उनमें राष्ट्रीयता की भावना पनप सके और वे अपने को एक सामान्य सामाजिक, सास्कृतिक व राजनीतिक जीवन के सक्रिय हिस्सेदार समझ सकें। राष्ट्रीय एकीकरण विभिन्नताओ के बीच एकता के सूत्र को ढूॅढने और उसी सूत्र मे जन–जीवन को पिरोने की प्रक्रिया है (मुकर्जी, 2001, पृ० 429)।

राष्ट्रीय एकीकरण वह आधारभूत धारणा है जिसके अन्तर्गत किसी देश की विभिन्नताओ को एकसूत्र मे बॉधकर एकीकरण की स्थापना की जाती है। राष्ट्रीय एकीकरण शब्द का प्रयोग वस्तुत उन देशो मे ही अधिकतर किया जाता है, जहॉ भौगोलिक सरचना और वातावरण मे विविधता हो, सास्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि विषयो मे भिन्नता हो तथा धार्मिक विश्वासो, जातियो, भाषाओं आदि की बहुसंख्यकता हो। ऐसे भी देश हो सकते हैं, जिनमे उपरोक्त में से एक से अधिक ऐसे प्रकरण हो, जो अनेकता उत्पन्न करते हों। किसी भी देश में अनेकता उत्पन्न करने वाले प्रकरणो मे एकता स्थापित करना राष्ट्रीय एकीकरण कहलाता है।

विभिन्न विद्वानो ने अपने दृष्टिकोणो के अनुसार राष्ट्रीय एकीकरण को परिभाषित किया है। डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार, "राष्ट्रीय एकीकरण ऐसा घर नही है जो ईंट और गारे से बनाया जा सके यह कोई औद्योगिक नियोजन भी नही है जिसके विषय मे विशेषज्ञ विचार–विमर्श करके, उसे क्रियान्वित कर दे। इसके विपरीत, एकीकरण एक ऐसा विचार है जो लोगो के मस्तिष्क मे होना चाहिए। यह मानव की वह जागरुकता है जो उसे जागृतावस्था मे रखती है।" मिरौन वीनर महोदय ने राष्ट्रीय एकीकरण को समाज द्वारा अराजक स्वार्थों पर जनहित के नियन्त्रक का माध्यम कहा है। यह विभिन्नताओ मे एकता स्थापित करता है। राष्ट्रीय एकीकरण को ऐसी सामाजिक–मनोवैज्ञानिक और शैक्षणिक प्रक्रिया बताया गया है, जिसके द्वारा लोगो के मन–मस्तिष्क में एकता, सगठनात्मकता और सयुक्तता उत्पन्न होती है। इसके द्वारा नागरिकों मे समानता और राष्ट्र के प्रति निष्ठा उत्पन्न होती है। राष्ट्रीय एकीकरण द्वारा नागरिको मे देशभक्ति, देश के लिए रचनात्मकता का दृष्टिकोण और देश के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का दृढीकरण होता है। राष्ट्रीय एकीकरण की भावना से अभिभूत देशवासी अपने व्यक्तित्व को राष्ट्र मे समाहित कर देता है। वह स्वय को राष्ट्र का सरक्षक और राष्ट्र को अपना संरक्षक समझने लगता है। राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ मात्र यह नही है कि हम सब एक हों। वस्तुत इसका अर्थ यह भी है कि हमारा राष्ट्र एक है और हम इसके भागीदार हैं। सहभागिता की भावना राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यक शर्त है।

राष्ट्रीय एकीकरण एक बहु–आयामी अवधारणा है जिसके राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक इत्यादि अनेक पक्ष हो सकते हैं। फिर भी अपने मूल रूप मे यह ऐसी राष्ट्रीयता की भावना है जो विविध समुदायो को एकता के सूत्र में पिरोती है ताकि सस्कृतियो, जातियो, भाषाओं व धर्मों के अन्तर को भावनात्मक दृष्टि से सम्पूर्ण इकाई के रूप मे ग्रहण किया जा सके और उस इकाई के समस्त निवासी चाहे वे किसी धर्म, जाति या भाषा से सम्बन्धित हो अपने देश से प्रेम करें और उसकी उन्नति चाहें। महात्मा गॉधी ने इस भावना की अभिव्यक्ति इन शब्दो मे की कि राष्ट्रीय एकता सामान्य उद्देश्य, सामान्य ध्येय और सामान्य दुखों की अनुभूति है। इसकी प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग परस्पर सहिष्णुता और सहानुभूति के साथ एक–दूसरे के दुखो को बॉटते हुए सामन्य ध्येय की प्राप्ति मे सहयोग करना है। दूसरे शब्दो मे, राष्ट्रीय एकीकरण का उद्देश्य समाज मे ऐसी भावना का विकास करना है जिससे

स्थानीयता, जातीयता, धार्मिक और भाषाई आस्थाओ से ऊपर उठकर व्यक्ति राष्ट्रीय सन्दर्भ मे सोचने लगे और सामुदायिकता का विकास हो सके। जय प्रकाश नारायण के अनुसार, "एक राष्ट्र के पास राज्य और निश्चित भू-सीमा होते हुए भी राष्ट्रीयता के सारतत्व का अभाव हो सकता है। यह सारतत्व ही राष्ट्रीय चेतना है। अत हमारे देश मे जब भी हम राष्ट्रीय एकता की बात करते हैं तो मूलत हमारा अर्थ इसी राष्ट्रीयता की चेतना का विकास करने से होता है। परन्तु इस चेतना का विकास अत्यन्त कठिन है और प्रत्येक समाज मे इसके लिए एक भिन्न प्रकार की ऐतिहासिक परिस्थितियॉ उत्तरदायी होती हैं" (यादव एव शर्मा, 1997, पृ० 48–49)।

राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ यह नही है कि विविधताओ का अन्त करके पूरे देश मे एक धर्म या एक भाषा लागू कर दी जाये। एकीकरण से तात्पर्य विलय नही है, वरन् विभिन्नताओं को इस तरह से बनाये रखना है कि उससे देश का अस्तित्व खतरे मे न पडने पाये। समस्या यह है कि विविध हितो का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक समूहो को किस तरह एकता के सूत्र मे बॉधा जाये? ऐसा कौन सा तरीका अपनाया जाये जिससे प्रत्येक वर्ग या समूह स्वतन्त्र और न्यायपूर्ण ढँग से अपने हितों को सुरक्षित और विकसित कर सके, लेकिन इस तरह से कि दूसरे समूहों के हितों का अपहरण भी न हो। दूसरी ओर यह भी देखना है कि कोई भी व्यक्ति या समूह अपने हित के लिए राष्ट्रीय हितो की उपेक्षा न करने पाये। एकीकरण की अवधारणा इस बात पर आधारित है कि राष्ट्र का हित व्यक्ति, समूह अथवा क्षेत्रीय हितो से ऊपर है। राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ है व्यक्तिगत हितो और राष्ट्रीय हितों के बीच सामन्जस्य स्थापित करना और ऐसे वातावरण का सृजन करना जिसमे कोई व्यक्ति या समूह केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय हितो की उपेक्षा न करने पाये तथा किसी अन्य वर्ग या समूह का शोषण न करे (सईद, 1996, पृ० 366)।

समाज का निर्माण अनेक समूहो तथा सस्थाओ से होता है। इन सभी समूहों के विचार, व्यवहार, विश्वास, धर्म, भाषा और क्षेत्रीय हित एक समान नहीं होते बल्कि इनमें कुछ भिन्नता आवश्यक रूप से पायी जाती है। सक्षेप में, ऐसी सभी भिन्नताओ को भावात्मक एकता मे बदलने की प्रक्रिया का नाम ही राष्ट्रीय एकीकरण है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय एकीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा विभिन्न समूहों की प्रजातीय, धार्मिक, भाषायी

और क्षेत्रीय विभिन्नताओ के बाद भी उन्हें भावात्मक रूप से एकता के सूत्र मे बॉधकर यह चेतना उत्पन्न की जाती है कि सब एक राष्ट्र के सदस्य हैं।

भावात्मक एकता समिति के अनुसार, "राष्ट्रीय एकता का तात्पर्य ऐसे मानसिक दृष्टिकोण का निर्माण करना है जो सभी व्यक्तियो को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे समूहो की अपेक्षा अपने देश के प्रति अधिक निष्ठा रखे तथा दलीय स्वार्थों की अपेक्षा देश के कल्याण को सर्वोच्च महत्व दे।" इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि विस्तृत अर्थों मे राष्ट्रीय एकता का तात्पर्य सम्पूर्ण समाज के एकीकरण से ही है। बिनोवा भावे ने राष्ट्रीय एकीकरण के लिए कहा था कि यह भावात्मक एकता, भाई–चारे और राष्ट्र–प्रेम की वह दृढ भावना है जो एक देश के सभी निवासियो को अपनी व्यक्तिगत, क्षेत्रीय, धार्मिक और भाषायी भिन्नताओ को भुलाने मे सहायता देती है। डॉ० आहूजा का कहना है कि राष्ट्रीय एकता वह प्रक्रिया है जिसमे समानता की चेतना का समावेश होता है तथा जिसमे एक देश के विभिन्न समूह तथा उप–समूह अपने रचनात्मक प्रयासो द्वारा एक सामान्य लक्ष्य को पाने एव एकता तादात्मीकरण और सहयोग में अधिकतम वृद्धि करने का प्रयत्न करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि एक देश के विभिन्न समूहो के बीच भावात्मक एकता के साथ सामान्य लक्ष्यो के लिए प्रयत्न करना भी राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है। राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया का अन्तिम उद्देश्य वर्तमान विघटित समुदाय के स्थान पर भावात्मक रूप से एकीकृत नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना है। जवाहर लाल नेहरू भी इसी भावात्मक एकता को महत्व देते हुए यह कामना रखते थे कि भारतीय जनता का भावात्मक एकीकरण हो ताकि हम अपनी अद्भुत विविधता को बनाये रखते हुए भी एक मजबूत राष्ट्रीय इकाई से बॅधे हो। इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए राष्ट्रीय एकता सम्मेलन (1961) ने राष्ट्रीय एकता की परिभाषा इस प्रकार दी है – "राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सभी लोगो के दिलों में एकता की भावना, समान नागरिकता का अनुभव और राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना को विकसित किया जाता है।" स्पष्ट है कि राष्ट्रीय एकता का सम्बन्ध हृदय से है जिसके साथ अनुभूति और निष्ठा के प्रश्न जुडे हैं। अत यदि देश में एकता लानी है तो हृदय परिवर्तन अनिवार्य है जिससे भावनाओं में भी परिवर्तन लाया जा सके और संकुचित व प्रान्तीय निष्ठाओं के स्थान पर बृहद् राष्ट्र के प्रति निष्ठा को सर्वोपरि बनाया जा सके। यह

कार्य सभाओ और भाषणो मात्र से ही सम्पन्न नहीं हो सकता बल्कि इसके लिए राष्ट्रोपयोगी सस्कारो को विकसित करने की आवश्यकता है (यादव एव शर्मा, 1997, पृ० 50)।

6.2 राष्ट्रीय एकीकरण की समस्यायें

राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या विश्वव्यापी है और प्रत्येक विविधतायुक्त राष्ट्र इस समस्या का अपने–अपने तरीके से सामना कर रहा है। भारत जैसे देश के लिए यह समस्या और भी अधिक गहन है (Bondurant, 1958, p 1) और राष्ट्रवाद के विकास का ही एक अभिन्न भाग है। यहॉ राष्ट्रवाद का विकास दो भिन्न अवस्थाओ मे हुआ है। प्रथम, साम्राज्यवाद विरोधी सघर्ष की अवस्था मे जहॉ राष्ट्रवाद का एकमात्र उद्देश्य एक स्वतन्त्र सम्प्रभु राज्य की स्थापना करना होता है और द्वितीय, समाज की राष्ट्र के रूप मे एकीकरण की अवस्था जहॉ उस नव–स्वतन्त्र राज्य के निवासियो को एक राष्ट्र के नागरिक के रूप मे परिवर्तित करना होता है। यही राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया है जो राष्ट्रवाद की द्वितीय अवस्था है और नव–स्वतन्त्र राष्ट्रों के लिए अत्यन्त जटिल भी है क्योकि उन्हे इस राष्ट्र–निर्माण के साथ–साथ एक ही समय पर आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय, राजनीतिक विकास, लोकतन्त्रीकरण और आधुनिकीकरण की दिशा मे भी प्रयत्न करने पडते हैं। इस अद्‌भुत बहु–आयामी विकास की प्रक्रिया कभी–कभी अत्यन्त गहन एवं जटिल अन्त· क्रिया को जन्म देती है जो एकीकरण के स्थान पर असन्तोष और अलगाव को इतना बढा देती है कि राजनीतिक समुदाय का अस्तित्व ही सकट मे पड़ जाता है (यादव एव शर्मा, 1997, पृ० 50)।

भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण का प्रश्न और भी जटिल है क्योंकि धर्म, भाषा और सस्कृति के साथ जातियों की विविधता भी भारतीय समाज की पारम्परिक विशिष्टता है (भट्‌ट, 1981, पृ० 47–70) और भारतीय समाज के एकीकरण के मार्ग मे बाधक है। विदेशी शासन और उनकी फूट डालने वाली नीतियों ने एकीकरण के मार्ग को और भी अधिक दुर्गम बना दिया है (तरूण, 1991, पृ० 122–159)। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने इस कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जो जवाहर लाल नेहरू के सन् 1952 ई० के इस कथन मे स्पष्ट है, "हमें भारत में एकता की भावना के विकास के कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए क्योंकि यह कठिन समय है। ऐसा कोई भी निर्णय जो इस

एकता के मार्ग मे रूकावट डाले, तब तक के लिए स्थगित कर देना चाहिए जब तक कि राष्ट्रीय एकता की मजबूत नींव न रखी जा चुकी हो" (यादव एव शर्मा, 1997, पृ० 51)।

भारत मे स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय पूरे देश मे एकता का जो वातावरण उत्पन्न हुआ, वह इससे पहले कभी देखने मे नही आया। एक सामान्य लक्ष्य—स्वतन्त्रता की प्राप्ति, के लिए सभी धर्म, जाति और क्षेत्र के लोग सुसगठित होकर अपने पारस्परिक मतभेदो तथा विभिन्नताओ को भूलकर बलिदान के लिए तैयार हो गये। स्वतन्त्रता के बाद जिस राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना की गई, उसकी प्रमुख विशेषता राजनीतिक तन्त्र मे जनसाधारण का सक्रिय रूप से भागीदार होना है। जनतन्त्रीय व्यवस्था ने स्वतन्त्रता और समानता के आदर्श को स्थापित करने का प्रयास किया। राजनीति के द्वार सभी के लिए, चाहे वे किसी भी धर्म या जाति के हो, खुल गये। इस प्रतियोगी राजनीति ने व्यक्तिगत स्वार्थ को बढावा दिया, समूह—चेतना को विकसित किया, नई जातियॉ और नये समूह सगठित रूप मे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने तथा अपने हितो को बढ़ावा देने के लिए सघर्षरत हो गये। राजनीतिक आधुनिकीकरण के फलस्वरूप एक ओर धर्म निरपेक्ष राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हुई और दूसरी ओर धार्मिक और जातीय जागरूकता को प्रोत्साहन मिला। परिणाम यह हुआ कि विभिन्न धार्मिक भाषायी, जातीय और क्षेत्रीय समूहों के बीच हित टकराव प्रारम्भ हो गया और इसने एक गम्भीर राष्ट्रीय समस्या का रूप धारण कर लिया। यह समस्या इतने उग्र रूप मे सामने आयी कि देश की एकता और अखण्डता को बनाये रखने का प्रश्न उठ खडा हुआ (सईद, 1996, पृ० 366) भारत में राष्ट्रीय एकता की समस्या प्रमुख रूप से तीन श्रेणी में देखने को मिलती है –

6.2.1 अल्पसंख्यक समूहों के बीच एकता

समाज के अल्पसख्यक समूह वे होते हैं जिनका देश की कुल जनसख्या मे बहुत कम प्रतिनिधित्व होता है। भारतीय समाज में हिन्दुओ का स्थान सदैव से ही एक बहुसंख्यक समूह के रूप मे रहा है। जबकि हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों, ईसाइयों, सिखों, बौद्धों, जैनियो और अन्य समूहों की सदस्य संख्या काफी कम रही है। सन् 2001 ई० की जनगणना के अनुसार भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या में हिन्दुओं का प्रतिशत 82 से भी अधिक है जबकि

शेष सभी समूहो की सख्या देश की कुल जनसख्या का 18 प्रतिशत से भी कम है (चित्र 6 1)। इनमे कुछ समूह तो इतने छोटे हैं कि उनकी सदस्य सख्या कुछ लाख मे ही है। भारत मे यद्यपि एक लम्बे समय तक बौद्ध शासको का साम्राज्य रहा, लेकिन बौद्धों की वर्तमान सख्या कुल जनसंख्या का केवल 0-77 प्रतिशत है। यह सत्य है कि भारत की जनसख्या मे ईसाई तथा मुसलमानो का प्रतिशत हिन्दुओ से काफी कम है लेकिन भारत के स्वतन्त्र होने से पूर्व तक यहाँ पहले मुसलमानो और बाद मे ईसाईयो का शासन चलता रहा। ऐसी स्थिति मे अल्पसख्यक समूहों की ओर से न तो किसी प्रकार के राजकीय सरक्षण की बात उठायी गयी और न ही इसकी कोई आवश्यकता थी। भारत जब स्वतन्त्र हुआ तो शासन का सम्बन्ध किसी समूह विशेष से नही रह गया। चुनाव मे कोई भी व्यक्ति निर्वाचित होकर जनता का प्रतिनिधित्व कर सकता था। यहीं से सख्या की शक्ति का सबसे पहले उन समूहो को आभास हुआ जो अल्पमत मे थे। इसके फलस्वरूप अल्पसंख्यक समूहो मे तरह–तरह के सन्देह और असुरक्षा के भाव उत्पन्न होना आरम्भ हो गये। अनेक ऐंग्लो–इण्डियन समूहो ने यूरोप जाकर बसना अच्छा समझा जबकि शेष समूहो ने सरकार से अपने लिए सामाजिक सुरक्षा की मॉग करना आरभ कर दिया। इसी स्थिति ने भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के सामने एक गम्भीर समस्या उत्पन्न कर दी।

किसी समाज में कोई समूह बडा हो या छोटा राष्ट्रीय एकता के लिए सभी के बीच भावात्मक एकता का होना अतीव आवश्यक है। प्रजातन्त्रीय समाज मे सभी को संरक्षण और विकास के समान अवसर प्रदान करना राज्य का सर्वप्रमुख दायित्व होता है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि ऐसी परिस्थितियाँ पैदा की जायें कि बहुसख्यक और अल्पसंख्यक सभी समूह राष्ट्र की मूल धारा के साथ चले और बिना किसी भेदभाव के राष्ट्रीय एकता के लिए योगदान करे। भारत की स्वतन्त्रता के बाद यद्यपि सरकार ने सवैधानिक और व्यावहारिक रूप से अल्पसंख्यक समूहो को विकास के सभी सम्भव अवसर प्रदान किये हैं लेकिन इस दशा मे कुछ और प्रयास करने से राष्ट्रीय एकीकरण का मार्ग अधिक प्रशस्त हो सकता है –

1. सर्वप्रथम, यह आवश्यक है कि अल्पसख्यक समूहों की संस्कृति को सुरक्षित रखने के व्यापक प्रयास किये जाये। सख्या मे कम होने के कारण उनके पास स्वय उन साधनों का अभाव है जिनके द्वारा सांस्कृतिक विशेषताओं को सुरक्षित रखा जा सकता है।
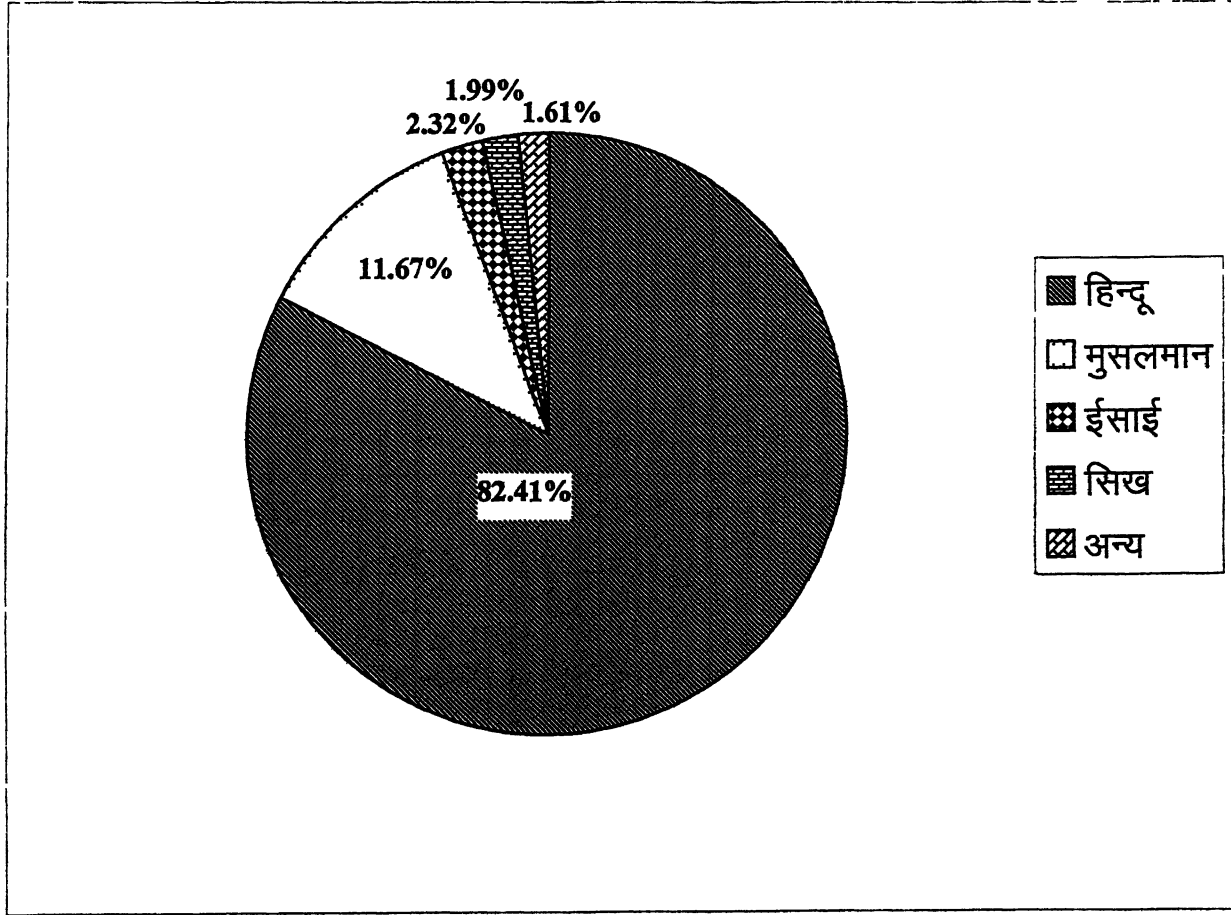
चित्र 6.1

2 जो समूह अल्पसख्यक होने के साथ पिछडे हुए भी हैं, जैसे अनेक जनजातीय समूह और कबीले आदि, उनको सरकारी नौकरियो और प्रतिष्ठानो मे उचित प्रतिनिधित्व देने की प्रभावपूर्ण व्यवस्था की जानी चाहिए।

3 अल्पसख्यक समूहो की सख्या जिन स्थानो पर अधिक है वहॉ उनके लिए पृथक् सस्थाओ का होना आवश्यक है। यद्यपि इनमे सभी समूहो के सदस्यो को प्रवेश दिया जा सकता है, लेकिन अल्पसख्यक समूहो को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

4 प्रचार के साधनो द्वारा अल्पसख्यक समूहो मे यह भावना उत्पन्न करना आवश्यक है कि वे सबसे पहले भारत राष्ट्र के अग हैं और राष्ट्र के हित मे ही उनके व्यक्तिगत हित सुरक्षित हैं।

5. शिक्षा सस्थाओ मे सभी समूहो की संस्कृति और सामाजिक विशेषताओ से विद्यार्थियो को परिचित कराना बहुत लाभदायक हो सकता है। इससे एक ओर तो बहुसंख्यक समूह अल्पसंख्यक समूहों की संस्कृति से परिचित होंगे और दूसरी ओर स्वयं अल्पसख्यक समूहो में भी अलगाववादी विचारो को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा।

इन सभी प्रयत्नों से भारत में अल्पसंख्यक समूह के सन्देहो को समाप्त करके उन्हे राष्ट्रीय धारा की ओर मोडा जा सकता है। इसके पश्चात् भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि समानता और स्वतन्त्रता के वर्तमान युग में बहुसख्यक और अल्पसंख्यक समूहों की धारणा ही एक भ्रान्ति है। ससार के सभी समाजों मे कुछ समूह अल्पसंख्यक जरूर होते हैं लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्हे बहुसख्यक लोगो की अपेक्षा अधिकार और सुविधायें भी अल्प मात्रा मे ही मिलें। इस प्रकार वास्तविकता को समझ लेने के बाद अल्पसंख्यक की धारणा राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग मे कभी बाधक नही बन सकेगी।

6.2.2 धार्मिक एकता की समस्या

भारत विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायो का प्रदेश है। किसी एक समाज मे इतने अधिक धर्मो का प्रचलन सम्भवत: संसार के किसी दूसरे देश में देखने को नहीं मिलता। एक ओर यहॉ हिन्दू, ईसाई, सिख, बौद्ध, जैन और पारसी जैसे मुख्य धर्मों में लोग विश्वास करते हैं तो

दूसरी ओर एक धर्म भी एक से अधिक शाखाओ एव सम्प्रदायो मे विभक्त है। इनमे से प्रत्येक शाखा और सम्प्रदाय भी अपने को दूसरे से भिन्न धर्म पर आधारित होने का दावा करते हैं। उदाहरणार्थ हिन्दू धर्म ही प्रमुख रूप से वैष्णव, शैव, शाक्त, रूद्र, सनक, ब्रह्म समाज एव आर्य समाज जैसे अनेक शाखाओ मे विभाजित है। इनमे से वैष्णव शाखा के अन्तर्गत ही लगभग 25 सम्प्रदायो का विकास हुआ है और प्रत्येक सम्प्रदाय को मानने वाले व्यक्ति दूसरो से ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे उनका सम्प्रदाय एक–दूसरे से पूर्णतया भिन्न हो। भारत मे इस्लाम धर्म के प्रभाव के बढने से पूर्व शैव और वैष्णव धर्मों के अनुयायियो के बीच उग्र सघर्ष होने के अनेक उदाहरण हैं। इससे भी पहले, ईसा से दो सौ वर्ष पहले हिन्दू और बौद्ध शासको में धर्म के आधार पर व्यापक युद्ध होते रहे थे। वास्तव मे बौद्ध और जैन धर्मों का विकास ही भारत मे हिन्दू धर्म के रूढिवादी प्रभाव को कम करने के लिए हुआ था। इन सभी संघर्षों एव युद्धो के फलस्वरूप भारत सदैव छोटे–छोटे धर्म–पालन राज्यो मे विभक्त रहा और धार्मिक रूप से इसे एकता के सूत्र मे नही बॉधा जा सका। भारत मे ब्रिटिश शासन काल मे अग्रेजों की नीति सबसे अधिक दुर्भावनापूर्ण रही। उन्होने फूट के द्वारा शासन की नीति को क्रियान्वित करने के लिए सदैव मुसलमानो को हिन्दुओं के विरुद्ध प्रेरित किया। हिन्दू बहुसख्यक थे, जबकि मुसलमानों को शासन का आशीर्वाद प्राप्त था। फलस्वरूप देश के अनेक स्थानों पर व्यापक साम्प्रदायिक संघर्ष होते रहे। इसमें मानव जीवन और सम्पत्ति की जो भारी क्षति हुई उसका सरलता से अनुमान भी नही लगाया जा सकता। इन सभी संघर्षों से विभिन्न धर्मों के अनुयायियो के बीच वैमनस्य, घृणा और द्वेष की जो कटुभावना उत्पन्न हुई, वह भारत के राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सबसे बडा खतरा बन गयी।

इस सन्दर्भ में सबसे बडा प्रश्न यह उठता है कि विभिन्न धार्मिक समूहो के बीच पृथकतावादी धारणा क्यो उत्पन्न होती है? इस प्रश्न का उत्तर स्वय राष्ट्रीय एकीकरण की स्थापना मे अत्यधिक सहायक है। वास्तव मे प्रत्येक धर्म में धीरे–धीरे कुछ पूर्वाग्रहों और पक्षपातपूर्ण भावनाओ का विकास हो जाता है। उस धर्म के अनुयायी यह समझने लगते हैं कि प्रत्येक धर्म की सस्कृति, व्यवहार, प्रतिमान और विश्वास एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। कालान्तर मे प्रत्येक धार्मिक समूह एक अन्तर्विवादी समूह के रूप मे बदल जाता है और दूसरे धर्मो के अनुयायियों से उनका सामाजिक सम्पर्क भी टूट जाता है। समाज से अधिक सुरक्षा

पाने और अपने विश्वासो का प्रसार करने के लिए सभी धर्मों के अनुयायी अपने धर्म मानने वालो का पक्ष लेना आरम्भ कर देते हैं और दूसरे धर्मों के अनुयायियों को नीची दृष्टि से देखने लगते हैं। धीरे–धीरे यह पूर्वाग्रह और पक्षपातपूर्ण विचार एक पीढी से दूसरी पीढी को सास्कृतिक विरासत के रूप मे प्राप्त होने लगते हैं। इस प्रकार धार्मिक पृथक्तावाद एक अमरबेल की तरह है जिसकी जड नही होती, यद्यपि यह खूब फलती–फूलती है और शीघ्र ही यदि इसे काट न दिया जाये तो यह आस–पास के पेड-पौधो को भी नष्ट कर देती है।

अतीत मे भारतीय समाज के सामने धार्मिक एकीकरण भले ही एक बडी समस्या रही हो लेकिन स्वतन्त्र भारत मे हमारे देश को एक धर्मनिरपेक्ष समाज के रूप मे मान्यता देकर सभी धार्मिक समूहो के सन्देहो को सदैव के लिए समाप्त कर दिया गया है। आज हमारे समाज मे धर्मों और सम्प्रदायो के अनुयायी एक–दूसरे के सम्पर्क मे आये हैं और सभी धर्मों की विशेषताओ को समझने और उनको अपने में आत्मसात करने का प्रयत्न किया है। वास्तव मे विभिन्न धर्मों के अनुयायी आज भारतीय सस्कृति से कुछ इस प्रकार घुल-मिल गये हैं कि आज सभी धर्मों के अनुयायी, सत्य, पवित्रता, भक्ति और मोक्ष को अपने धार्मिक जीवन का अभिन्न अग मानते हैं। कोई भी धार्मिक समूह आज भारत मे देखने को नहीं मिलता जो स्वर्ग, नर्क, कर्म, भाग्य , पुनर्जन्म और आत्मा की अनश्वरता में विश्वास न करता हो। हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक और द्वारिका से लेकर जगन्नाथपुरी तक हिन्दुओ, मुसलमानो, ईसाइयो, सिखो, बौद्धों और जैनों के धार्मिक स्थान इस एकता को और अधिक दृढ बना रहे हैं। होली, दीपावली, दशहरा, ईद और गुरू पर्व किसी एक धर्म के अनुयायियो के ही नहीं बल्कि सभी भारतीयों के त्यौहार हैं। इस प्रकार आधुनिक भारतीय समाज मे धार्मिक एकीकरण को स्वय ही काफी प्रोत्साहन मिला है। यह सत्य है कि कुछ कट्टरपंथी पुरोहित, मुल्ला-मौलवी और पादरी अपने निहित स्वार्थों के कारण धार्मिक एकीकरण के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं, लेकिन जैसे–जैसे विभिन्न धर्मों के अनुयायियो मे राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना उत्पन्न होती जा रही है, इन कट्टरपथियों का प्रभाव भी अपने आप कम होता जा रहा है।

इसके उपरान्त भी भारत मे धार्मिक एकीकरण को अभी और प्रभावपूर्ण बनाने की आवश्यकता है। यद्यपि इसके लिए अनेक सुझाव दिये जाते हैं, लेकिन सबसे अधिक

आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षण सस्थाओ के माध्यम से सभी धर्मों की मौलिक एकता की ओर देशवासियो का ध्यान आकर्षित कराया जाये। वास्तव मे सभी धर्म मौलिक रूप से मानवीय कर्तव्यों और ईश्वरीय महानता की धारणा से ही सम्बद्ध हैं। यदि सभी धर्मों के मूलभूत, सिद्धान्तो पर ध्यान दिया जाये तो एक ऐसे मानव धर्म की खोज की जा सकेगी, जो सभी के लिए मान्य होगा। इससे धार्मिक सघर्ष स्वय ही समाप्त हो जायेगे।

6.2.3 उत्तर तथा दक्षिण भारत की एकता

भारत मे एक लम्बे समय से उत्तर और दक्षिण के प्रश्न को लेकर तरह–तरह के विवादो और सघर्षों को प्रोत्साहन मिलता रहा है। इन सघर्षों का आरम्भ सबसे पहले प्रजातीय आधार पर हुआ। बहुत समय से इतिहासकार और मानवशास्त्री इस मत का प्रतिपादन करते रहे हैं कि उत्तर भारत प्रमुख रूप से आर्यों का निवास स्थान रहा है, जबकि दक्षिण भारत मे द्रविड प्रजाति की प्रधानता रही है। आर्यों और द्रविडो के ऐतिहासिक सघर्षों के कारण भी इस भावना को प्रोत्साहन मिलता रहा है कि उत्तर तथा दक्षिण एक–दूसरे से भिन्न संस्कृति वाले दो पृथक् प्रदेश हैं। यह सर्वविदित है कि आज से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व आर्यों ने सबसे पहले उत्तर भारत मे अपने साम्राज्य का विस्तार किया और यहॉ की जनसख्या मे आर्य विशेषताओं का प्रसार हुआ। आर्य लोग अपने को उच्च और विशुद्ध रक्त का मानने की भ्रान्ति में थे। इसलिए उन्होने द्रविडों के साथ दासो जैसा व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप अधिकाश द्रविड या तो दक्षिण भारत मे जाकर बस गये अथवा आर्यों का दासत्व स्वीकार कर लिया। उत्तर वैदिक एव महाकाव्य काल में आर्य एवं अनार्य के बीच की खाई कम हुई एवं एक मिले-जुले सास्कृतिक तत्र का विकास हुआ। परिणामस्वरूप धर्म, भाषा, संस्कृति और रीति–रिवाजो के क्षेत्र मे धीरे–धीरे उत्तर और दक्षिण भारत के बीच का अन्तर उत्तरोत्तर कम होता गया। प्रादेशिकवाद की धारणा को ब्रिटिश शासनकाल मे काफी प्रोत्साहन मिला। इसके फलस्वरूप दक्षिण भारत के बहुत से व्यक्तियो की यह धारणा बन गयी कि उत्तर भारत की सस्कृति दक्षिण भारत से पूर्णतया भिन्न है और उत्तर भारत के लोगो के विरुद्ध अपने को संगठित किये बिना दक्षिण के लोगो के हितों को सुरक्षित नही रखा जा सकता। उत्तर भारत के लोगों का भारत की राजनीतिक और संस्कृति पर अधिक समय से प्रभुत्व था, इस कारण उनमे किसी ऐसी विरोध भावना को प्रोत्साहन नहीं

मिला। जबकि दक्षिण भारत के विभिन्न प्रदेशो ने बहुत व्यापक रूप से उत्तर भारत मे प्रचलित भाषाओ, धार्मिक विश्वासो, राजनीतिक योगदान तथा सास्कृतिक प्रतिमानो का विरोध करना आरम्भ कर दिया। दक्षिण भारत मे अनेक राजनीतिक दलो ने भी अपनी सस्ती लोकप्रियता के लिए ऐसे विरोध को और अधिक प्रोत्साहन दिया है। आज दक्षिण भारत मे हिन्दी का विरोध होना, उत्तर भारत के रीति–रिवाजो का अनादर करना, रामलीला मे रावण–दहन को द्रविडो का अपमान समझना आदि इसी मनोवृत्ति के परिचायक हैं। यह सभी परिस्थितियॉ भारतीय समाज के राष्ट्रीय और भावनात्मक एकीकरण के सामने एक गम्भीर खतरा उत्पन्न कर रही है।

उत्तर तथा दक्षिण के विवाद का सम्बन्ध केवल कुछ भ्रान्तियो से है, वास्तविकताओ से नही। इन भ्रान्तियो को बढावा देने मे पश्चिमी इतिहासकारों एव राजनीतिज्ञो का योगदान सबसे अधिक रहा है। वर्तमान भारतीय समाज एक धर्म-निरपेक्ष और कल्याणकारी समाज है। इसमे सभी धर्मों, जातियो और प्रदेशो का समान महत्व है। इसके अतिरिक्त प्रजाति, भाषा, धर्म और राजनीति के आधार पर जिन विवादो को प्रोत्साहन दिया जाता है, उनके पीछे भी कोई वास्तविकता नही है –

1 सर्वप्रथम, कोई व्यक्ति आज यह दावा नही कर सकता कि उत्तर भारत के निवासियो की प्रजातीय विशेषताये दक्षिण भारत के निवासियो से पूर्णतया भिन्न हैं। भारत मे सुदूर अतीत से ही जनसख्या के प्रजातीय तत्वो मे इतना अधिक मिश्रण हुआ है कि आज सभी क्षेत्रो के लोगो मे एक से अधिक प्रजातियो की शारीरिक विशेषताओ का समावेश हुआ है। इस प्रकार दक्षिण भारत को द्रविडो का स्थान और उत्तर भारत को आर्यों का निवास स्थान मानना एक भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नही है।

2 उत्तर और दक्षिण भारत मे भाषा की भिन्नता का प्रश्न भी केवल एक भ्रान्ति है। वास्तव मे उत्तर और दक्षिण भारत की अधिकाश भाषाओ पर सस्कृत भाषा का सबसे अधिक प्रभाव पडा और इस प्रकार सभी का उद्गम स्रोत एक ही है। भाषा की भिन्नता के आधार पर विभिन्न राज्यो का निर्माण होना उनकी पृथक् सस्कृति को स्पष्ट नही करता बल्कि ऐसा

केवल प्रशासनिक सुविधा को दृष्टि मे रखकर किया गया था। भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन है, इसमे किसी प्रकार की श्रेष्ठता अथवा निम्नता का प्रश्न नही उठता।

3 भारत मे सभी स्थानो मे धार्मिक विश्वास एक जैसे हैं। उनमे उत्तर अथवा दक्षिण के विभेद का प्रश्न ही नही उठता। उत्तर भारत के लाखो हिन्दू दक्षिण भारत के मन्दिरो को उतनी ही पवित्रता और श्रद्धा से देखते हैं जितना कि उत्तर भारत के मन्दिरो को। द.क्षिण भारत से भी मथुरा, काशी, अयोध्या, हरिद्वार, बद्रीनाथ इत्यादि के दर्शनो के लिए हजारो यात्री प्रतिदिन आते रहते है। यह स्थिति सभी भारतीयो की धार्मिक एकता को स्पष्ट करती है, धार्मिक विभिन्नता को नही।

4 भारत की राजनीति सभी प्रदेशो के लोगो को राजनीति मे भाग लेने मे अपनी प्रतिभा को दिखाने का अवसर प्रदान करती है। केन्द्र सरकार मे राज्यो का अपनी जनसख्या के अनुपात मे न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व है। फिर किसी विशेष क्षेत्र का राजनीतिक प्रभुत्व होने का दावा किस प्रकार किया जा सकता है।

5. आज भारतीय समाज में सभी व्यक्तियो को उद्योग और रोजगार मे अपनी प्रतिभा और कार्यकुशलता को प्रदर्शित करने का समान अवसर मिला हुआ है। सरकारी नौकरियो मे नियुक्तियॉ योग्यता के आधार पर होती हैं, प्रादेशिकवाद के आधार पर नही।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उत्तर और दक्षिण के विवाद मे किसी प्रकार की वास्तविकता नही है। यह विवाद केवल कुछ स्वार्थ–समूहो की सकुचित मनोवृत्ति का परिचायक है। वास्तव मे भारत एक इकाई है। सभी राज्य एव क्षेत्र इस अखण्ड इकाई के समान अग है। चीन और पाकिस्तान से हुए पिछले युद्धो मे भारत के सभी क्षेत्रो के निवासियो ने जिस एकता का परिचय दिया, वही एकता भारतीय राष्ट्र की मूल आत्मा है। इसी एकता को और अधिक मजबूत बनाकर भारत राष्ट्र का वास्तविक अर्थो मे एकीकरण किया जा सकता है।

6.3 राष्ट्रीयता के तत्व

राष्ट्रीयता का उपयोग कभी–कभी राष्ट्रिक जाति की एक ऐसी अत्युक्तिपूर्ण भावना के लिए किया जाता है जो आक्रामक–सी होती है। यह दूषित भावना जो अपने राष्ट्र मे और अपने राष्ट्र के कार्य मे अच्छाई के अलावा और कुछ नही देखती, सच्ची राष्ट्रीयता नही है। राष्ट्रवाद वह ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा राष्ट्रिक-जातियॉ राजनीतिक इकाइयो मे बदल जाती है। सच्ची राष्ट्रीयता एक स्पष्ट एव सुदृढ राष्ट्रिक–जाति के लोगो को धरती पर अपना स्थान प्राप्त करने के उचित अधिकार का समर्थन करती है (आशीर्वादम् एव मिश्र, 1992, पृ० 702)।

भारतीय समाज मे इतनी अधिक विभिन्नताओ के होते हुए भी एक मूलभूत एकता के दर्शन होते हैं। भारतीय सस्कृति की मूलभूत एकता का वर्णन करते हुए सी० ई० एम० जोड ने कहा कि जो भी कारण हो, विचारो तथा जातियो के अनेक तत्वों मे समन्वय अनेकता में एकता उत्पन्न करने की भारतीयो की योग्यता एव तत्परता ही मानव जाति के लिए भारत की विशिष्ट देन रही है। इसी प्रकार प० जवाहर लाल नेहरू ने कहा, "भारत का विहंगावलोकन करने वाले भारत की अनेकता और विभिन्नता से बहुत अधिक प्रभावित हो जाते हैं। वे भारत की एकता को साधारणतया नहीं देख पाते, यद्यपि युगो–युगो से भारत की मौलिक एकता ही उसका महान एव मौलिक तत्व रहा है। पांच हजार वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी सभ्यता उत्तर भारत मे पुष्पित–पल्लवित हुई और कदाचित दक्षिण भारत तक फैल गयी। इतिहास के उस प्रभाव से अनगिनत जातियॉ, विजेता, तीर्थ–यात्री एव छात्र एशिया की ऊॅची–ऊॅची भूमि से भारत के मैदानो मे सैर के लिए आये, उन्होने भारतीय जीवन, सस्कृति और कला को प्रभावित किया, किन्तु वे इसी देश मे विलीन हो गये। इन सम्पर्कों से भारत मे परिवर्तन हुआ किन्तु उसकी आत्मा मौलिक रूप से यथावत बनी रही। यह तभी सम्भव हुआ होगा जब भारत मे मौलिक एकता की भावनाओ की जडे गहराई तक गयी हैं, जब उन्हें नवागन्तुको ने भी स्वीकार किया हो।" हबर्ट रिजले ने भी भारत की अनेकता मे एकता के दर्शन करते हुए कहा कि भौतिक और सामाजिक प्रकार भाषा, प्रथा और धर्म की अत्यन्त विविधता जो भारत मे आने वाले किसी भी अवलोकनकर्त्ता को दिखायी पडती है, उसके मूल मे हिमालय से कन्याकुमारी

अन्तरीप तक जीवन की कुछ न कुछ आन्तरिक एकरूपता के दर्शन फिर भी किये जा सकते है (सईद, 1996, पृ० 380)। यही एकता वह दृढ आधार है जिसकी सहायता से यहाँ एक सगठित राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है। हमारे राष्ट्रगान की पक्तिया इस विविधता मे भी एकता का सुन्दरतम् प्रतिनिधित्व करती हैं। भारत के सन्दर्भ मे राष्ट्रवाद के तत्व इस प्रकार से है –

6.3.1 धार्मिक एकता

हमारे समाज मे विभिन्न धर्मो और सम्प्रदायो का आधिक्य होने के पश्चात भी सभी धार्मिक सम्प्रदाय साथ-साथ रहने के कारण एक दूसरे के समीप आये हैं और उन्होने धार्मिक सघर्षो की अपेक्षा एक–दूसरे के धर्मों की विशेषताओ को समझने तथा उन्हे अपने मे आत्मसात करने का प्रयत्न किया है। हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक और कश्मीर से लेकर जगन्नाथपुरी तक फैले हुए धार्मिक स्थान इस एकता को और अधिक दृढ बनाते हैं। राम और कृष्ण को सस्कृत एव हिन्दी मे जितनी अधिक लोकप्रियता है, तमिल, तेलगु, कन्नड और मलयालम मे भी उन्हें उतने ही उत्साह से सुना जाता है। धार्मिक कर्मकाण्ड सभी धर्मो मे विद्यमान हैं और इसलिए किसी धर्म का भी दूसरे से विरोध नही है। गीता एव उपनिषदो को सभी धर्मों के व्यक्ति ज्ञान का स्रोत मानते हैं और भारतीय शास्त्रो के अध्ययन ने इन विभिन्नताओ को एकता के सूत्र में बॉधने मे और अधिक योगदान दिया है।

6.3.2 भाषाई एकता

राष्ट्रीयता का सबसे अधिक स्पष्ट तत्व भाषा है। राष्ट्र के निर्माण मे जाति की अपेक्षा भाषा का महत्व अधिक है। सामान्य भाषा लोगो के विचारो और भावो मे समानता लाती है, नैतिकता आचार और न्याय के सामान्य मानदण्ड स्थिर करती है, सामान्य ऐतिहासिक परम्पराओ को कायम रखती है और एक सामान्य राष्ट्रीय मनोवृत्ति को पैदा करती है। भारत को भाषा के आधार पर विभिन्नता से युक्त नही कहा जा सकता। यहॉ की अधिकाश भाषाओं का मूल सस्कृत भाषा है और बाहर से आकर बसने वाले समूहों की भाषाओ पर भी इसका व्यापक प्रभाव पडा है। वास्तविकता यह है कि ईसा के 400 वर्ष पूर्व तक भारत मे सस्कृत भाषा ही लेखन और व्यवहार की भाषा रही। इसके पश्चात् सस्कृत भाषा के स्थान पर प्राकृत

भाषा प्रचलित हुई जो सस्कृत का ही एक सरल रूप थी। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व मे सस्कृत भाषा से ही पाली का विकास हुआ, जिसमे अधिकाश जैन और बौद्ध साहित्य की रचना हुई। सम्राट अशोक ने भी पाली भाषा को सम्पूर्ण देश मे व्यापक रूप से प्रोत्साहन दिया। इसी प्रकार हिन्दी, बाग्ला, गुजराती, मराठी, पजाबी, असमिया एव उडिया भाषाये भी सस्कृत भाषा का ही सरल रूपान्तरण है, जिनका विकास स्थानीय आवश्यकताओ के अनुसार होता रहा। इन भाषाओ की लिपि मे भी इतनी समानता है कि इनको पृथक्–पृथक् भाषाये न कहकर केवल एक ही सस्कृत भाषा के विभिन्न सस्करण कहना उचित होगा तमिल, तेलगु और कन्नड भाषाओ पर भी सस्कृत का प्रभाव कम नही है और वास्तविकता तो यह है उर्दू भाषा भी कोई पृथक् भाषा न होकर पारसी और सस्कृत का ही एक समन्वय है। इस प्रकार भाषा के आधार पर हमारे समाज की सस्कृति को किसी प्रकार भी विभाजित अथवा विविधतायुक्त नहीं कहा जा सकता है।

6.3.3 सामाजिक एकता

भारतीय समाज के मूल मे एकता विद्यमान है। युगो–युगो तक यहॉके समूह की सामाजिक विशेषताओं का दूसरे ने अनुसरण किया है। इसका परिणाम यह है कि एक समूह की सामाजिक प्रगति अथवा समस्याओ का सम्बन्ध केवल उसी समूह से न होकर बल्कि सम्पूर्ण भारतीय समाज से है। हमारे समाज मे परिवार व्यवस्था, स्तरीकरण की व्यवस्था, सम्बन्धो का स्वरूप, सामाजिक प्रथाये और शिष्टाचार के तरीको मे कोई भी मौलिक भेद नही है। जाति व्यवस्था न केवल हिन्दुओ मे विद्यमान है बल्कि इसका मुसलमानो व ईसाईयो पर भी उतना ही प्रभाव है। रक्त की विशुद्धता की भावना सभी व्यक्तियो को प्रभावित करती है। विवाह से सम्बन्धित प्रथाओ ने एक–दूसरे समूहो को इतना अधिक प्रभावित किया है कि आज सभी समूह एक ही दिशा की ओर बढ रहे प्रतीत होते हैं। उत्सवो और आयोजनो मे प्रत्येक धर्म, जाति और प्रदेश के व्यक्ति साथ–साथ भाग लेते हैं। बडो के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने और शिष्टाचार के तरीको मे इतनी अधिक समानता है कि इसके आधार पर किसी समूह को एक दूसरे से पृथक् नही किया जा सकता। यही कारण है कि भारत मे एक भारतीय समाज के दर्शन होते हैं।

6.3.4 सांस्कृतिक एकता

यदि राष्ट्रीयता मूलरूप मे सास्कृतिक धारणा है तो विचारो और आदर्शों की एकता अवश्य ही उसका एक मुख्य तत्व है। सस्कृति की एकता मे सामान्य रीतियॉ और व्यवहार, सामान्य परम्पराये और साहित्य, सामान्य लोककथा, काव्य और कला भी शामिल है। सस्कृति की एकता जीवन को एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रदान करती है, जिसमे जीवन के मानदण्ड, कर्त्तव्य और निषेध मौजूद होते है। विचारो और आदर्शो की सामान्य एकता लोगो को परस्पर समीप खीच लाती है और उनमे सहयोग की एक ऐसी भावना पैदा कर देती है जो आसानी से नष्ट नही की जा सकती। राष्ट्रीय साहित्य, शिक्षा, सस्कृति और कला, राष्ट्रीयता के कारण और परिणाम दोनो ही हो सकते हैं। यद्यपि राष्ट्रीय साहित्य स्वय राष्ट्रीयता का निर्माण नहीं करता फिर भी वह राष्ट्रीयता की भावना को मजबूत अवश्य ही बना सकता है। जीवन के दृष्टिकोण मे समानता लाने तथा एक ही मानदण्ड कायम करने में राष्ट्रीय शिक्षा महत्वपूर्ण भाग ले सकती है। यदि राष्ट्रीय शिक्षा का सही उपयोग किया जाये तो वह नैतिक एकता, सत्–असत् का सामान्य विवेक तथा अधिकाश विषयो मे विचारों की एकता उत्पन्न कर सकती है। राष्ट्रीय सस्कृति के निर्माण में राष्ट्रीय इतिहास और परम्पराये महत्वपूर्ण तत्व हैं (आशीर्वादम् एव मिश्र, 1992, पृ० 707)।

भारत मे आज किसी भी धार्मिक अथवा क्षेत्रीय समूह की अपनी कोई पृथक् सस्कृति नही है। बल्कि सस्कृति के क्षेत्र मे सभी के बीच स्पष्ट समानता है। हमारे समाज मे वेश-भूषा की भिन्नता उसी प्रकार की है, जिस प्रकार एक ही परिवार के व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि के अनुसार वस्त्र पहनते है और बहुधा एक-दूसरे के वस्त्रो को लेकर रुचि परिवर्तन करते रहते हैं। सम्पूर्ण भारत मे खान–पान के क्षेत्र मे भी अभूतपूर्व मिश्रण हुआ है। एक प्रदेश के खान–पान दूसरे प्रदेशो मे अपनाया गया और एक धर्म के विश्वासो को दूसरे धर्म ने मान्यता दी है। मस्जिदो मे मन्दिरो की शिल्प कला का आधिक्य है। गिरिजाघरों ने हिन्दू-मूर्तिकला को अपनाया है तो हिन्दुओ ने उनके धार्मिक प्रवचनो को। मुसलमानो मे एक विवाह के प्रति आकर्षण बढ रहा है जबकि हिन्दुओ मे अद्वैतवाद की प्रवृत्ति का विकास हो रहा है। इस प्रकार सभी धर्मों, सभी जातियो और सभी भाषा–भाषी समूहो के बीच सस्कृति के समान तल विकसित हो रहे हैं।

6.3.5 प्रजातीय एकता

राष्ट्रीयता का निर्माण करने और उसको मजबूत बनाने मे प्रजातीय एकता का बहु
महत्व है। प्रजातीय एकता से राष्ट्रीयता सुदृढ तो होती है, पर अनिवार्य नही है। राष्ट्रीयत
की प्रारम्भिक अवस्था मे प्रजातीय एकता अधिक महत्वपूर्ण है, बाद की अवस्था मे कम। को
भी राष्ट्र अधिक समय तक नही टिक सकता यदि उसके प्रजातीय वर्गों मे तीव्र विभेद ह
(आशीर्वादम् एव मिश्र, 1992, पृ० 705–706)।

प्रजातीय आधार पर भारतीय समाज को विभिन्नता से युक्त मान लेना सबसे बड
भ्रान्ति होगी। हालाकि प्रागैतिहासिक काल से ही भारत प्रजातियो का एक सग्रहालय रहा है
किन्तु प्रत्येक प्रजातीय समूह का दूसरे से इतना अधिक मिश्रण हुआ है कि भारत मे आज
किसी भी विशुद्ध प्रजाति के होने की कल्पना नही की जा सकती है। यद्यपि उत्तर भारत व
निवासियो के रग तथा शारीरिक सरचना मे देश के अन्य भागो के निवासियों से कुछ भिन्नत
अवश्य है, लेकिन यह भिन्नता प्रजातीय न होकर भौगोलिक दशाओ से सम्बद्ध है। इसव
अतिरिक्त भारत के प्रत्येक भाग मे भी सभी प्रकार की शारीरिक विषमताओ वाले व्यक्ति
साथ–साथ पाये जाते हैं। लेकिन देश के विभिन्न भागों के निवासियो के रक्त मे कोई स्पष्ट
भिन्नता नहीं है।

6.3.6 राजनीतिक एकता

भारतीय समाज में निहित एकता को हम अपनी राजनीतिक एकता के आधार प
सरलतापूर्वक समझ सकते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत पर जब कभी भ
विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमण हुए हैं तब सभी भारतीयों ने मिलकर उनका सम्पूर्ण शक्ति व
साथ सामना किया। प्राचीन समय मे अश्वमेध और राजसूय यज्ञ भी इसी राजनीतिक एकत
को बनाये रखने के लिए ही किये जाते थे। 20 वीं शताब्दी में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध सभ
भारतीय एक थे। उनमें कोई भी व्यक्ति हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, बगाली, मराठी अथव
मद्रासी न होकर केवल भारतीय था। इसी राजनीतिक एकता के फलस्वरूप भारत विभिन्नत
मे भी एकता का आदर्श प्रस्तुत करके ससार में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर सका। स्वतन्त्रत
के पश्चात् भी हमारे सविधान में सभी को समान अधिकार दिये गये हैं और किसी भी व्यक्ति

को धर्म, जाति अथवा लिग के आधार पर किसी से उच्च अथवा निम्न नही समझा जाता। सभी धर्मों, सभी प्रदेशो, सभी भाषाओ और सभी जनजाति के व्यक्तियो का शासन मे समान योगदान और सभी व्यक्तियो का इस धर्म-निरपेक्ष समाजवादी राष्ट्र की उन्नति मे महत्वपूर्ण योगदान हैं।

6.4 भारत की राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्व

एक धर्मनिरपेक्ष तथा कल्याणकारी राष्ट्र के रूप मे भारत अनेकता मे एकता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। लेकिन आज भी अनेक शक्तियॉ भारत मे राष्ट्रीय एकता के सामने गम्भीर बाधा उत्पन्न कर रही हैं। इन्हीं के प्रभाव से राष्ट्रीय एकीकरण के लक्ष्य मे उतनी सफलता प्राप्त नहीं की जा सकी है जितनी स्वतन्त्रता के पश्चात की जा सकती थी। राष्ट्रीय एकता मे बाधक इन तत्वों का विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है ·

6.4.1 साम्प्रदायिकता

धर्म भारतीय जीवन का एक अभिन्न अग रहा है और उसका कार्य समाज को एक सूत्र मे पिरोने का था परन्तु आधुनिक समय मे साम्प्रदायिकता की समस्या इससे जुड गयी जो वास्तव में विदेशी शासको की 'फूट डालो ओर राज्य करो' वाली नीति का परिणाम है। धर्म का प्रयोग इस सीमा तक किया गया कि भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र बनने से पूर्व ही दो भागो मे विभक्त हो गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधीन राष्ट्रवाद की उग्र होती हुई भावना को कमजोर बनाने के लिए अंग्रेज शासकों ने देश के मुस्लिम बुद्धिजीवियो को एक शक्तिशाली अल्पसख्यक वर्ग के रूप में प्रोत्साहित किया और उनमे अलगाव की भावना को प्रोत्साहन दिया जिसकी परिणति भारत के विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण में हुई (सारस्वत, 1991, पृ० 95)। पाकिस्तानी प्रचार भी इस देश मे साम्प्रदायिकता को और अधिक कटु बनाने में मदद कर रहा है जो कि न तो स्वय उसके लिए और न ही भारत के लिये हितकर है। फिर भी जनसख्या के दृष्टिकोण से भारत में हिन्दुओं की संख्या सर्वाधिक है, अत साम्प्रदायिकता विहीन वातावरण को उत्पन्न करने और उसे बनाये रखने का उत्तरदायित्व भी उन्हीं का है, यद्यपि इस दिशा में प्रत्येक भारतवासी को क्रियाशील होना पड़ेगा। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात साम्प्रदायिक दल एक

नये रूप मे सामने आये। मुस्लिम लीग, मजलिसे–मुशाविरात, हिन्दू महासभा, विश्व हिन्दू परिषद, अकाली दल एव शिव सेना इत्यादि ऐसे दल हैं जिनकी आत्मा मे साम्प्रदायिकता है, यद्यपि ऊपर से वे राजनीतिक चोला ही पहने हुए हैं। यही कारण है कि पजाब मे भाषा की आड लेकर एक सम्प्रदाय विशेष ने एक पृथक् साम्प्रदायिक राज्य बनाने के स्वप्न देखे, उसके लिए आन्दोलन चलाया, दूसरे ने विरोध किया फलत पजाब साम्प्रदायिक तनाव का युद्ध क्षेत्र बन गया। उधर केरल मे साम्यवादी दल को पराजित करने के लिए काग्रेस ने मुस्लिम लीग मे प्राण फूके फलत मुस्लिम साम्प्रदायिकता सम्पूर्ण देश में सिर उठाने लगी। दिल्ली मे हुए मुस्लिम सम्मेलन मे यह विचार व्यक्त किया गया कि भारत में मुसलमानो का जीवन, सम्मान और सम्पत्ति सुरक्षित नही है। नौकरियो मे भर्ती के समय मुसलमानो से भेदभाव किया जाता है तथा पुलिस एव सेना के द्वार उनके लिए विशेष रूप से बन्द रहते हैं। दूसरी ओर हिन्दू राष्ट्र का नारा लगाने वाली साम्प्रदायिक सस्थाये भी अपना–अपना राग अलापती हैं। आज हिन्दू या मुसलमान प्रत्याशी चुनाव के समय हिन्दू या मुसलमान होने के आधार पर हिन्दू या मुसलमान से वोट की मॉग करता है और उसे मतदाता वोट देते भी हैं। सकीर्ण साम्प्रदायिकता के पजो मे फॅसे ये लोग अपने को भारतवासी कहलाने से पूर्व हिन्दू या मुसलमान कहलाना अधिक पसन्द करते हैं। जब लोग साम्प्रदायिकता का उल्लेख करते हैं तो उनका सकेत विशेष रूप से हिन्दू और मुस्लिम समुदायो के बीच पाये जाने वाले तनाव की ओर होता है। यद्यपि साम्प्रदायिकता केवल हिन्दू और मुसलमानो तक ही सीमित नहीं है, फिर भी इनकी सख्या अधिक होने के कारण ये ही प्रमुख रूप से सम्बन्धित माने जाते हैं (मुकर्जी, 2001, पृ० 431–432)। उत्तर–पूर्व भारत विशेषकर नागालैण्ड में ईसाइयो द्वारा बडी सख्या में हिन्दुओ को ईसाई बनाने का अभियान गत तीन दशको में बहुत तेजी पर रहा। ईसाई मिशनरियो की इस प्रकार की गतिविधियों का हिन्दुओ की ओर से घोर विरोध किया गया। पंजाब मे हिन्दुओ और सिखो के बीच जो टकराव है, उससे सिख साम्प्रदायिकता अपने उग्र रूप मे सामने आई है। उल्लेखनीय है कि सभी धर्म आन्तरिक रूप से भी विभाजित दिखायी देते हैं। उदाहरणार्थ, मुसलमान दो प्रमुख सम्प्रदायो शिया और सुन्नी के बीच विभाजित हैं और देश के कुछ भागों में उनके बीच काफी तनाव रहता है। इसी प्रकार निरकारी और अकाली सिखों के बीच हिसात्मक झगडे हुए हैं। सक्षेप मे, एकीकरण मे समस्या केवल दो धर्मों के अनुयायियों के बीच की नहीं है बल्कि एक ही धर्म के विभिन्न सम्प्रदायो

को भी एकता के सूत्र मे बॉधने की समस्या है (सईद, 1996, पृ० 367)। यही वह साम्प्रदायिकता है जो कि आज भारत के राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग मे एक मजबूत चट्टान बनी खडी है।

6.4.2 भाषा विवाद

भारत मे आज भाषा के प्रश्न को लेकर भी एक विवादपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गयी है। इसके फलस्वरूप उत्तर प्रदेश और बिहार मे उर्दू को राज्य भाषा का रूप देने के लिए आन्दोलन हुए, महाराष्ट्र मे शिवसेना द्वारा मराठी का प्रयोग न करने वालो के विरुद्ध हिसक प्रदर्शन हुए, तमिलनाडु मे हिन्दी के विरुद्ध आन्दोलनकारी प्रवृत्ति अपनायी गयी, नागालैण्ड मे अग्रेजी को राज्य भाषा घोषित किया गया तथा पजाब, असम और बगाल मे समय–समय पर अनेक उपद्रव हुए। भाषा के प्रश्न पर लोग यह भूल जाते हैं कि वे सब एक ही राष्ट्र के नागरिक हैं। ऐसे व्यक्ति भाषा को ही अपने अस्तित्व का आधार समझ बैठते हैं। वास्तविकता यह है कि भाषा केवल विचारो को अभिव्यक्त करने का एक साधन है और इससे व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति पर कोई भी प्रतिकूल या अनुकूल प्रभाव नहीं पडता। भाषा–विवाद अभी भी समाप्त नही हुआ है। इस सम्बन्ध में मुख्य प्रश्न राष्ट्रभाषा का है। सविधान के अनुसार सन् 1965 ई० तक हिन्दी भारतीय राष्ट्रभाषा व शासकीय भाषा हो जानी चाहिये थी, परन्तु जैसे–जैसे समय निकट आता गया अहिन्दी-भाषी लोग तथा अग्रेजी भाषा के शुभचिन्तक हिन्दी का विरोध करने लगे क्योकि उन्होने अपने मन मे यह गलत धारणा बना ली कि हो सकता है कि हिन्दी–भाषी उन पर शासन करने लगे। इसी कारण हिन्दी का विरोध हुआ। परन्तु हिन्दी प्रेमियो ने भी आन्दोलन शुरू कर दिया। इन्हीं आन्दोलनो व मॉगो की छत्रछाया मे उत्तर और दक्षिण का प्रश्न आया। कहने का तात्पर्य यह है कि भाषावाद ने भी राष्ट्रीय एकीकरण के लिये विरोधी परिस्थितियों को उत्पन्न किया और उन्हें बनाये रखा (मुकर्जी, 2001, पृ० 432)।

6.4.3 जातिवाद

भारत की राष्ट्रीय एकता की विरोधी शक्तियों मे जातिवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रथा समाज को विभिन्न खण्डों में विभक्त कर देती है। फलत ऐसे समाज में सामुदायिक

भावना सीमित होती है और समग्र समाज के प्रति न होकर एक जाति के सदस्यो का पहले अपनी जाति के प्रति नैतिक वफादारी होती है। स्पष्ट है कि यह स्थिति राष्ट्रीय एकता को पनपाने मे बाधक सिद्ध होती है। जातिवाद विभिन्न जातियो के मध्य पाई जाने वाली खाई को और भी चौडा करता है तथा एक–दूसरे के प्रति घृणा, द्वेष या प्रतिस्पर्द्धा आदि के रूप मे अभिव्यक्त होता है। अपनी ही जाति के स्वार्थों को सर्वोपरि समझना जातिवाद का सबसे मौलिक रूप है। जाति के आधार पर किसी के लिए कोई विशेषाधिकार नही होना चाहिए। जाति के आधार पर कर्त्तव्यविहीन विशेषाधिकार एक बुरी चीज है, पर उससे भी बुरी स्थिति जाति के आधार अधिकार विहीन कर्त्तत्यो का बोझ जिसके शिकार निम्न जातियो के लोग हैं। यह स्थिति निश्चय ही राष्ट्रीय एकत्ता के लिये बाधक हैं क्योंकि इससे लोगो मे कटुता, निराशा व द्वेष की भावना पनप जाती है। उदाहरणार्थ, ब्रिटिश काल मे उच्च जातियो के सदस्यो को शिक्षा सम्बन्धी सुविधाये प्राप्त होने के कारण व्यापार, नौकरी आदि मे भी वे आगे रहे। फलत निम्न जातियों को समस्त सुविधाओ से वचित रहकर अपनी दयनीय दशा मे ही निवास करना पडा। इसके कारण उनमे एक विद्रोह की भावना स्पष्ट रूप मे जागृत हुई और उन्हे भी अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये एक आन्दोलन का सहारा लेना पडा और उन्हे विशेष सुरक्षा सरकार को प्रदान करनी पडी। इस प्रकार अधिकार के लिये छीना–झपटी के बीच एकता का वातावरण उत्पन्न नहीं हो सकता (मुकर्जी, 2001, पृ० 431)।

6.4.4 प्रादेशिकवाद

प्रादेशिकवाद एक भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले लोगों के मनोभावों को व्यक्त करता है जिसके अनुसार उस क्षेत्र के लोग यह सोचते हैं कि उनकी भाषा, संस्कृति, इतिहास तथा सामाजिक परम्पराये अन्य क्षेत्रो से श्रेष्ठ हैं और इसलिए उन्हे अपना सर्वांगीण विकास करने का अधिकार है और उसके लिए किसी भी मूल्य पर उन्हें सब तरह की सुविधायें मिलनी चाहिये। इसके लिए वे राष्ट्र हित की तिलांजलि देने मे भी संकोच नहीं करते। प्रादेशिकवाद का यह सकीर्ण रूप स्वतन्त्र भारत मे भी देखने को मिलता है। उत्तर और दक्षिण भारत के बीच जो मतभेद बहुधा प्रकट होते रहते हैं वे प्रादेशिकवाद के ही उदाहरण हैं। प्रत्येक क्षेत्र का निवासी अपने क्षेत्र को आर्थिक रूप से अधिक विकसित देखना चाहता है और इसलिए एक क्षेत्र उस दूसरे क्षेत्र की ओर उँगली उठाता रहता है जिससे कि विकास कार्यक्रम के

लिए केन्द्रीय सरकार से अधिक आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। इससे विभिन्न राज्यो के बीच कटु ईर्ष्या व प्रतिद्वन्दिता की भावना पनप जाती है जो कि अन्तिम रूप से राष्ट्रीय एकता की स्थापना मे बाधक सिद्ध होती है (मुकर्जी, 2001, पृ० 432–433)।

6.4.5 आर्थिक विषमतायें

राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग मे एक बहुत बडी बाधा आर्थिक विषमता है। मूलरूप से भारत एक समाजवादी देश है लेकिन अनेक दशाओ के सयुक्त प्रभाव से आज भी आर्थिक विषमता अपनी चरम सीमा पर है। एक ओर जहॉ करोडो लोग रोजगार पाने मे असमर्थ हैं तो वही दूसरी ओर ऐसे व्यक्तियो की भी कमी नहीं है जो प्रतिदिन लाखो रुपये अर्जित करते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्थिक असमानता कम होने के स्थान पर और बढ गयी। यह आर्थिक विषमता समाज को अनेक आर्थिक वर्गों मे विभाजित कर देती है और प्रत्येक वर्ग दूसरे को सन्देह तथा घृणा की दृष्टि से देखने लगता है। इससे कभी हिसा को प्रोत्साहन मिलता है तो कभी अपराधों की संख्या मे वृद्धि होती. है। स्वाभाविक है कि जहॉ समाज धनी-निर्धन, जमीदार-भूमिहीन कृषक, मालिक-मजदूर जैसे वर्गों में विभाजित हो जाता है तो वहॉ इन सभी वर्गों को एकता के सूत्र मे बॉधना बहुत कठिन हो जाता है।

6.4.6 दूषित राजनीति

किसी भी समाज मे राजनीतिक दलों का कार्य स्वस्थ जनमत का निर्माण करके व्यक्तियों को एकता के सूत्र मे बॉधना होता है। दुर्भाग्य से भारत में अधिकांश राजनीतिक दल सत्ता प्राप्त करना ही अपना एकमात्र कर्त्तव्य समझते हैं, इससे चाहे राष्ट्र को लाभ हो अथवा हानि। राजनीतिक दलों के अपने स्वार्थों के कारण अक्सर पारस्परिक द्वेष, हिंसा, साम्प्रदायिकता, आन्दोलनो, जातिवाद तथा प्रादेशिकवाद को भी प्रोत्साहन मिलता है।यह सभी परिस्थितियॉ राष्ट्रीय एकता के कार्य को बहुत कठिन बना देती हैं।

भारत अनेक राज्य–स्तरीय राजनीतिक पार्टियों का एक असमतल अखाडा है जहॉ वे आपस मे ही अपनी–अपनी लोकप्रियता को बढाने तथा राजनीतिक सत्ता को हथियाने में ऐसे मस्त हैं कि उन्हे एक सूत्र मे बॉधना असम्भव हो गया है। इनमें से अधिकाश राजनीतिक

पार्टियॉ धर्म, प्रान्त, भाषा, जाति आदि के आधार पर अपनी लोकप्रियता को बनाये रखने मे सफल हो रही हैं। हिन्दू महासभा, द्रविड मुनेत्र कडगम, बहुजन समाज पार्टी, समाजवादी पार्टी आदि दल बृहत्तर राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अपनाने मे आज भी पूर्णतया सफल नही हुई हैं। अत इनके द्वारा जो प्रचार कार्य होते हैं वे बहुधा राष्ट्रीय एकता के अनुकूल नही हो सकते हैं। पर इससे भी अधिक क्षति राजनीतिक सेनाओ के द्वारा की जाती है। शिवसेना, राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ एव नक्सल आदि का उद्देश्य कितना ही ऊँचा क्यो न हो, फिर भी उनके क्रियाकलापो के प्रति पूर्ण विश्वास सभी भारतवासियो को आज भी नही है। इससे एकता का वातावरण पनपने मे बाधा उत्पन्न होती है (मुकर्जी, 2001, पृ० 433)।

6.4.7 दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली

शिक्षा किसी भी समाज के सगठन और पुनर्निर्माण का आधार होती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के इतने वर्ष बाद भी हम उस शिक्षा प्रणाली को त्याग नही पाये हैं जो कि अग्रेज शासको द्वारा हम पर थोपी गयी थी। आज भी हम सम्पूर्ण देश के लिए भारतीय पृष्ठभूमि व सस्कृति पर आधारित एक सामान्य शिक्षा व्यवस्था को विकसित नहीं कर पाये हैं, आज भी पाश्चात्य साहित्य व संस्कृति का अध्ययन हमारे लिये गौरव का विषय बना हुआ है। ऐसी अवस्था मे शिक्षित लोगों की संख्या तो बढती जा रही है किन्तु शिक्षित भारतवासियो की सख्या घटती जा रही है। वर्तमान शिक्षा ने लोगों को घोर स्वार्थी बना दिया है। ऐसी स्थिति मे राष्ट्रीय एकता कैसे सम्भव हो सकती है जबकि स्वय हमारी शिक्षा व्यवस्था मे हमे भारतीय समाज व सस्कृति की समान बातो और एकता के सूत्रो से परिचित होने का अवसर नही मिलता है (मुकर्जी, 2001, पृ० 434)।

6.4.8 विदेशी कूटनीति

आज अधिकाश विदेशी शक्तियॉ इस प्रयत्न में लगी हुई हैं कि भारत की आर्थिक और राजनीतिक प्रगति को किसी भी प्रकार बढ़ने से रोक दिया जाये। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कूटनीतिक रूप से देश में विघटनकारी परिस्थितियॉ उत्पन्न की जा रही हैं। अनेक गुप्त संगठनो द्वारा जगह–जगह आन्दोलनो और हिंसा के लिए आर्थिक सहायता देना भी इन

सगठनो का एक प्रमुख कार्य है। ऐसे सभी कूटनीतिक प्रयास हमारी राष्ट्रीय एकता को खतरे मे डाल देते हैं।

6.4.9 युवा पीढ़ी में निराशा

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत मे शिक्षा का अत्यधिक विस्तार हुआ है जिसके फलस्वरूप प्रति वर्ष लाखो की सख्या मे शिक्षित युवक–युवतियॉ कालेजो से निकल रहे हैं नौकरी पाने का असीम आग्रह लेकर। पर व्यावहारिक क्षेत्र मे उन्हे घोर निराशा का सामना करना पड रहा है क्योकि नौकरी की सुविधाओ का विकास आज भी इस देश मे अत्यन्त अपर्याप्त है। फलत देश की युवा पीढी बेरोजगारी के कुचक्र मे फॅसकर निराशा का शिकार बनती जा रही है। जब अपनी ही समस्या को सुलझाने मे वह अपने को असमर्थ पाते हैं तो वे राष्ट्र के हित की चिन्ता कैसे कर सकते हैं? उनमे निराशा के साथ-साथ अविश्वास की भावना भी पनपती है और वे समाज मे जिस वातावरण की सृष्टि करते हैं वह केवल उनके ही जीवन को नहीं अपितु अन्य विद्यार्थियो के जीवन को भी धुधला बना देता है और उनमे अनुशासनहीनता, समाज विरोधी क्रियाकलाप एव राष्ट्र विरोधी विचारो को पनपाता है। उदाहरणार्थ, कश्मीर में भारतीय मूल के आतकवादियो एवं बंगाल के नक्सलवादियो का एक बडा अग बेरोजगार शिक्षित युवकगण ही हैं जो कि सम्पूर्ण वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था को घृणा की दृष्टि से देखता है और उसी घृणा–भाव को सम्पूर्ण समाज में फैलाकर वर्तमान व्यवस्था को पूर्णतया पलट देना चाहता है। यह स्थिति राष्ट्रीय एकता मे बाधा उत्पन्न करती है (मुकर्जी, 2001, पृ०433–434)।

6.5 राष्ट्रीय एकीकरण के उपाय

राष्ट्रीय एकीकरण मूलत एक सामाजिक समस्या है जिसे राजनीतिक रग दे दिया गया है और इसने नारेबाजी का रूप धारण कर लिया है। धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के आधार पर विभाजित समाज के विभिन्न वर्गों के बीच एकता की स्थापना बलपूर्वक नहीं की जा सकती। कानून सामाजिक परिवर्तन का एक प्रभावी साधन तो है, लेकिन इसे एक मात्र साधन के रूप मे नहीं अपनाया जा सकता। सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए मानसिक परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। नागरिकों मे आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था और उसकी

मान्यताओ के प्रति अटूट आस्था उत्पन्न करनी होगी, बिना विश्वास के आचरण मात्र दिखावा रह जाता है। एकीकरण का सार है अपनत्व की भावना, यह विश्वास कि विभिन्न धर्म और जाति से सम्बन्ध रखने के बाद भी हम मनुष्य होने और एक ही देश के वासी होने के कारण एक हैं। अत विभिन्नताओ का ध्यान दिये बिना हमे देश और राष्ट्र के हितो को प्राथमिकता देनी चाहिए। एकीकरण के लिए आवश्यकता है बलिदान की भावना की, मानवतावादी भावना की, सहिष्णुता की और राष्ट्र के प्रति दृढ निष्ठा की। मनुष्य में इन गुणो का विकास मानसिक परिवर्तन के द्वारा ही लाया जा सकता है। इस प्रकार की मानसिक स्थिति को हम भावात्मक एकीकरण की सज्ञा देते हैं (सईद, 1996, पृ० 370–371)।

6.5.1 विद्वेषपूर्ण प्रचार पर नियन्त्रण

शासन द्वारा ऐसे सभी राजनीतिक दलो तथा संगठनो की कार्यविधियो पर अकुश रखना जरूरी है जो विभिन्न क्षेत्रो, धर्मों, जातियो और वर्गों के व्यक्तियो के बीच पारस्परिक घृणा तथा विद्वेष का प्रचार करते हैं तथा उनको एक दूसरे के विरुद्ध भडकाते हैं। सभी प्रकार के साम्प्रदायिक तथा जातिवाद की भावना से परिपूर्ण प्रचार पर भी नियन्त्रण लगाना आवश्यक है।

जनमत–निर्माण मे प्रेस की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। दुर्भाग्यवश भारत में प्रेस निष्पक्ष नही रहा है और उसने साम्प्रदायिकता को बढावा दिया है। प्राय यह देखने मे आता है कि देश के किसी भाग में हुई एक साम्प्रदायिक घटना को समाचार–पत्र बढा–चढा कर प्रकाशित करते हैं। परिणाम यह होता है कि समाज के सम्बन्धित वर्ग उत्तेजित हो उठते हैं और साम्प्रदायिक तनाव देश के दूसरे भागो तक फैल जाता है। यदि साम्प्रदायिक दगों के कारणों का विश्लेषण किया जाये तो उसमे प्रेस की सक्रिय भूमिका दिखायी देगी। कुछ हिन्दी समाचार-पत्र हिन्दू साम्प्रदायिकता का और उर्दू समाचार-पत्र मुस्लिम साम्प्रदायिकता का खुलकर प्रचार करते हैं। अग्रेजी समाचार-पत्रों पर भी साम्प्रदायिक दृष्टिकोण अपनाने का बराबर आरोप लगाया जाता रहा है। इसी प्रकार कुछ समाचार–पत्र सत्तारूढ़ दल का ऑख मूँद कर समर्थन करते हैं और कुछ समाचार पत्र कठोरता के साथ सरकार–विरोधी दृष्टिकोण रखते हैं। इससे स्वस्थ जनमत का निर्माण नहीं होता है एवं समाज के विभिन्न वर्गों के बीच

दूरी बढ जाती है। ऐसे विद्वेषपूर्ण प्रचार करने वाले समाचार–पत्रो पर नियन्त्रण लगाया जाना चाहिए (सईद, 1996, पृ० 372)।

6.5.2 शिक्षा में सुधार

भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण के लिये शिक्षा के स्वरूप को राष्ट्रीय परिवेश मे ढालने की विशेष आवश्यकता है। शिक्षा को ऐसे माध्यम का रूप दिया जाना चाहिए, जिससे सभी क्षेत्रो मे शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी राष्ट्र की समस्याओ को समझ सके तथा विभिन्न क्षेत्रो की सस्कृति और सामाजिक विशेषताओ से परिचित हो सके। राष्ट्रीय एकीकरण के लिए जनता को इस आदर्श के प्रति वचनबद्ध होने के लिए शिक्षित करना आवश्यक है। वस्तुस्थिति यह है कि उच्च शिक्षा ग्रहण किये हुए लोग भी साम्प्रदायिकता और प्रादेशिकवाद जैसे विघटनकारी तत्वो को बढावा देने मे सक्रिय भाग ले रहे हैं जिससे ऐसा लगता है कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था दिलो को जोडने मे असफल हो रही है। आवश्यकता इस प्रकार की शिक्षा की है जो वास्तव मे व्यक्ति के दिल व दिमाग को इस प्रकार बदल दे कि वे सकीर्णता से ऊपर उठकर एक सार्वभौमिक समाज का निर्माण कर सके (सईद, 1996, पृ० 371)।

6.5.3 राष्ट्रीय भाषा

भारत के एकीकरण के लिए यह आवश्यक है कि देश के सभी लोग अपने विचारो की अभिव्यक्ति सामान्य भाषा के माध्यम से करें। क्षेत्रीय भाषाओ का विकास आवश्यक है परन्तु सम्पूर्ण देश के प्रशासन का सचालन करने और एकरूपता स्थापित करने के लिये सम्पूर्ण देश मे एक भाषा का प्रचलन आवश्यक है। इससे एकीकरण की अनेक समस्याये स्वत हल हो जायेगी।

6.5.4 अल्पसंख्यकों का संरक्षण

अल्पसख्यक वर्ग मनोवैज्ञानिक कारणो से कुछ ज्यादा संवेदनशील होता है, उसकी अपनी कुछ समस्याये होती हैं। समाज के अल्पसंख्यक समूहो मे सुरक्षा की भावना उत्पन्न करने और राष्ट्र के प्रति उनकी निष्ठा मे वृद्धि करने के लिए आवश्यक है कि उन पर बहुसख्यको के दबाव को कम किया जाये। यद्यपि वर्तमान शासन इस कार्य को करने के

लिये पहले से ही काफी जागरूक है तथापि ऐसे समूहो की सस्कृति तथा सस्थागत विशेषताओ को सुरक्षित रखने के लिए यदि विशेष केन्द्रो की स्थापना की जाये तो राष्ट्रीय एकीकरण को और अधिक बल मिल सकता है।

6.5.5 साम्प्रदायिक संगठनों पर नियन्त्रण

वर्तमान सन्दर्भों मे भारत मे कार्यरत ऐसे सभी सगठनो पर नियन्त्रण लगाये जाने की आवश्यकता है जो किसी विशेष धर्म, जाति अथवा क्षेत्रीय भावना को प्रोत्साहन देने के लिए सगठित हैं। भारत मे आज भी शिक्षा, समाज सुधार तथा जनजातीय जीवन मे ऐसे सगठन दूषित वातावरण उत्पन्न कर रहे हैं, जिन पर अतिशीघ्र ही नियन्त्रण लगाया जाना आवश्यक है।

6.5.6 आर्थिक न्याय की स्थापना

देश के विभिन्न भागो मे पाया जाने वाला आर्थिक असन्तुलन और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच बढती हुई आर्थिक विषमता राष्ट्रीय एकीकरण मे अत्यधिक बाधक है। आवश्यकता इस बात की है कि आर्थिक शोषण का अन्त हो, रोजगार के उचित अवसर उपलब्ध हो और समाज का प्रत्येक वर्ग एव व्यक्ति इस स्थिति मे हो कि कम से कम उसकी दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके। आर्थिक विषमता पारस्परिक वैमनस्य और ईर्ष्या को जन्म देती है जो राष्ट्रीय एकीकरण के लिए बाधक है (सईद, 1996, पृ० 372)।

6.5.7 नैतिक शिक्षा को प्रोत्साहन

भारत धर्म-निरपेक्षता के सिद्धान्त और व्यवहार मे विश्वास रखता है, परन्तु यह धर्म विरोधी राज्य नहीं है। भारत के सभी धर्म मूल रूप से मानवीय गुणो के विकास पर जोर देते हैं। समय की मॉग के अनुसार आज समाज में जिन मानवीय गुणो के विकास की आवश्यकता है, वे ही वर्तमान समाज की नैतिकता भी हैं। इस प्रकार की नैतिक शिक्षा द्वारा अनुशासन मे भी वृद्धि होगी और इससे राष्ट्रीय एकीकरण को प्रोत्साहन मिलेगा।

उपर्युक्त प्रयासो के अतिरिक्त समाज मे वर्ग सघर्ष की भावना को कम करना, सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र की सभी सेवाओ मे सभी जातियो और सभी क्षेत्रो के लोगो को समान अवसर प्रदान करना, सामाजिक रूढिवादिता को कम करना और आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य समाज के अनुपयोगी व्यवहारो को निरुत्साहित करना भी राष्ट्रीय एकता की दिशा मे महत्वपूर्ण प्रयत्न सिद्ध होगे।

भारत मे आज जो भी विविधताये परिलक्षित होती हैं वे केवल वाह्य हैं। आन्तरिक रूप से इन विविधताओ के बीच वह मूल एकता विद्यमान है, जिसके फलस्वरूप एक राष्ट्र के रूप मे भारत युग–युगान्तरो से अपने अस्तित्व को बनाये हुए है। जो विद्वान भारतीय सस्कृति को विभिन्नता बताकर इसकी निर्बलता की ओर सकेत करते हैं वे यह भूल जाते हैं कि यही वह देश है, जिससे शिक्षा लेने के लिए शक, हूण, कुषाण, मगोल, तुर्क, मुगल, अग्रेज तथा अनेक मानव समूह यहॉ आये और भारतीय सस्कृति के रग मे रंग गये। भारत मे विभिन्न धर्मों का आगमन अवश्य हुआ किन्तु इन धर्मों के अनुयायी भारतीय ही रहे। आज जो भी व्यक्ति धर्म के आधार पर हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन एव पारसी इत्यादि के बीच पृथक्तावाद और साम्प्रदायिकता फैलाते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि इन धर्मों के अनुयायी मूल रूप मे हिन्दू या विस्तृत अर्थ मे भारतीय ही हैं। ये भारतीय समाज से पृथक् होने की बात नहीं सोचते। वास्तविकता यह है कि संस्कृति कोई मूर्त वस्तु नहीं है। इसका सम्बन्ध विचारो, विश्वासो, सामाजिक मूल्यो, भावनाओ और परम्पराओ से होता है। सस्कृति की अभिव्यक्ति कला, धर्म, नैतिकता और व्यवहार से होती है। भारतीय सस्कृति में एक अविरल निरन्तरता है जिसमे समयानुकूल की शक्ति भी है। यही वह शक्ति है जो भारत की विविधता को एकता मे सजोये हुए है और यही भारत के राष्ट्रीय एकीकरण का वास्तविक आधार है।

6.6 राष्ट्रीय एकीकरण के लिये किये गये प्रयास

भारत के राष्ट्रीय एकीकरण की परम् आवश्यकता को देखते हुए, सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर पर विभिन्न समयान्तरो पर व्यापक, ठोस तथा प्रभावी प्रयास किये गये। सावैधानिक प्रावधानो की भावना को ध्यान में रखते हुए भारतीय संसद ने विभिन्न धार्मिक, नस्लगत और भाषाई समुदायो के बीच वैमनस्य उत्पन्न करने के प्रयासों को दण्डनीय अपराध

घोषित करते दृढ़ कानून बनाये हैं और ऐसे दण्ड भोगी को मतदान अथवा चुनाव के लिए अयोग्य ठहराने का प्रावधान किया है। सन् 1961 ई० मे एक राष्ट्रीय समिति की स्थापना की गयी, जिसमे यह प्रस्तावित किया गया कि शिक्षा व्यवस्था मे सुधार, साम्प्रदायिक एकता के लिए प्रयास तथा अल्पसख्यको के हितो की सुरक्षा करके ही भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इसी वर्ष राष्ट्रीय एकता की स्थापना के प्रयास की दिशा मे प्रयत्नशील होते हुए ससद में दो विधि प्रस्तावो को प्रस्तुत किया गया। विधि के प्रारूपो मे यह बात कही गयी कि साम्प्रदायिकता का प्रचार करने वाले माध्यमो पर कडी रोक लगाने की व्यवस्था की जाये। पहले विधि प्रस्ताव मे यह प्रावधान प्रस्तुत किया गया कि विभिन्न धर्मों के बीच घृणा एव विद्वेष फैलाने, जाति, भाषा और विभिन्न वर्गों के बीच उत्तेजना फैलाने वाले कार्य को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया जाये और ऐसे अपराधियो को तीन वर्ष तक की सजा दी जाये। विधि के दूसरे प्रारूप मे यह प्रस्तावित किया गया कि चुनाव प्रचार करते समय धर्मों, जातियो, सम्प्रदायों, विभिन्न भाषा–भाषियों आदि को धर्म, भाषा, जातिवाद, क्षेत्रवाद आदि के आधार पर मतदान करने का प्रोत्साहन देने वाले प्रत्याशियो को अयोग्य ठहरा दिया जाये। ऐसे लोगो को मताधिकार से वंचित करने तथा उनको संसदीय अथवा विधान सभाई सदस्यता से निलम्बित कर देने का दण्ड दिया जाये। इन प्रयासो के फलस्वरूप राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा मे निश्चय ही पर्याप्त प्रगति हुई। राष्ट्रीय एकीकरण के लिये किये गये अन्य उपायो का क्रमानुसार वर्णन निम्नलिखित है –

6.6.1 राष्ट्रीय एकीकरण महासम्मेलन

सन् 1961 ई० में भारत सरकार ने नई दिल्ली मे राष्ट्रीय एकीकरण का आयोजन किया। इसका प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय एकता की स्थापना मे आने वाली बाधाओ को व्यक्त करके उनके हल के लिए सुझावों का प्रस्तुतीकरण करना था। इसमे प्रधानमन्त्री सहित केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य, सभी राज्यों के मुख्यमन्त्री, विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओ, प्रमुख शिक्षाविदों, पत्रकारो तथा वैज्ञानिकों आदि ने भाग लिया। इस प्रकार सम्मेलन का सगठन व्यापक था और इसमे देश के प्रत्येक महत्वपूर्ण वर्ग को प्रतिनिधित्व प्राप्त था। सम्मेलन के आयोजन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए तत्कालीन प्रधानमन्त्री प० जवाहर लाल नेहरू ने कहा कि इस सम्मेलन का आयोजन किसी राष्ट्रीय सकट की घडी में अथवा ऐसी

सम्भावना मे कि भारत बिखर रहा है, नही किया गया है। अपितु अपने इतिहास की इस घडी मे हम यह प्रयास करना चाहते हैं कि भारत पूरी तरह एक हो और लोगो के मन–मस्तिष्क मे एकीकरण की भावना को जागृत करे। सम्मेलन मे एकीकरण के तत्वो का निर्धारण करते हुए यह कहा गया कि भारत की राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने और उसे सुदृढ करने मे राजनीतिक प्रयासो की विशेष महत्वपूर्ण भूमिका है। इस दिशा मे अभी तक राजनीतिक दलो की भूमिका सर्वाधिक निराशाजनक रही है। सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद एव भाषावाद इत्यादि को प्रोत्साहन देकर राजनीतिक दलो ने राजनीति के साथ–साथ सामाजिक, सास्कृतिक और आर्थिक जीवन को दूषित कर दिया है। इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए, सम्मेलन मे यह निश्चय किया गया कि राजनीतिक दलो की आचार सहिता निर्धारित करते हुए निम्नलिखित प्रावधानो की व्यवस्था की जानी चाहिए –

1. किसी भी राजनीतिक दल को विभिन्न सम्प्रदायो, धर्मानुयायियो, भाषाई वर्गों आदि के साथ ऐसी गतिविधियो मे सम्मिलित नही होना चाहिए जिनसे उत्तेजना, सकीर्ण भावात्मकता और धार्मिक मतभेद उभरता हो।

2. राजनीतिक दल विभिन्न सम्प्रदायों, भाषावादियो और क्षेत्रवादियों राजनीतिक दलो की मॉगों को पूरा कराने के लिए आन्दोलनात्मक तरीको का प्रयोग न करे।

3. एक राजनीतिक दल दूसरे राजनीतिक दल की सभाओ, आयोजनो तथा रैली आदि मे गडबडी और बाधा उत्पन्न करने का प्रयास न करे।

4 दलीय स्वार्थ की पूर्ति के लिये राजनीतिक सत्ता का प्रयोग न किया जाये।

5. शासन और सरकार राजनीतिक दलो के लोकतान्त्रिक व्यवहार पर अनावश्यक निषेध आदि न लगाये।

इस सम्मेलन में राष्ट्रीय एकीकरण की सम्पूर्णता के लिये शिक्षा के प्रचार–प्रसार को विशेष महत्वपूर्ण बताया गया। इस बात पर बल दिया गया कि राष्ट्र की शिक्षा नीति सभी राज्यो के सन्दर्भ मे समान हो तथा शिक्षा के विषय को समवर्ती सूची मे सम्मिलित किया जाये।

6.6.2 राष्ट्रीय एकता समिति का गठन

राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन 1961 की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि इसके द्वारा राष्ट्रीय एकता समिति का गठन किया जाना था। इस समिति को प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता मे गठित किया गया, इसके अन्य सदस्यो मे केन्द्रीय गृहमन्त्री, सभी राज्यो के मुख्यमन्त्री, सात प्रमुख राजनीतिक दलो के नेता, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष, दो शिक्षाविद्, अनुसूचित जाति एव अनुसूचित जनजाति आयोग के अध्यक्ष तथा प्रधानमन्त्री द्वारा मनोनीत सात सदस्य सम्मिलित थे। राष्ट्रीय एकता समिति के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये—

1 समिति अपने प्रयासों द्वारा विभिन्नता मे एकता, धार्मिक स्वतन्त्रता, धर्मनिरपेक्षता, समानता, न्याय तथा भ्रातृत्व की स्थापना का प्रयत्न करेगी।

2. समिति का यह निश्चित विश्वास था कि भारत की सामान्य जनता आपसी भाई—चारे और सहयोग मे विश्वास रखती है। उसे हिसा और अव्यवस्था से अरुचि है। साम्प्रदायिकता समाज में कुछ लोगों द्वारा फैलायी जाती है। सामान्य जनता के सहयोग से साम्प्रदायिक तत्वो पर अकुश रखा जा सकता है।

3. समिति ने सभी राजनीतिक दलों, ऐच्छिक संगठनों, समाचार—पत्रो, राजनीतिक नेताओ और विशिष्ट चारित्रिक योग्यतायुक्त व्यक्तियो से यह आग्रह किया कि वे साम्प्रदायिक द्वेष और प्रादेशिकवाद फैलाने वाली भावना को निरुत्साहित करे, सहिष्णुता, सहनशीलता और आपसी सहयोग के व्यवहार का प्रचार करे, समाज की रचनात्मक शक्तियों को सगठित करके उनका उपयोग राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा मे करे।

4. राष्ट्रीय एकता समिति ने यह स्पष्ट किया कि राष्ट्रीय एकीकरण की स्थापना केवल सरकार के प्रयासो द्वारा नही की जा सकती है। इसे स्थापित करने मे सम्पूर्ण समाज और राजनीतिक नेताओ का उत्तरदायित्व है।

5 समिति ने सभी भाषा—भाषियो, जातियो तथा सास्कृतिक सगठनो से आग्रह किया कि वे एकजुट होकर राष्ट्रीय एकीकरण की प्राप्ति में सहयोग करे।

6.6.3 राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन 1968

प्रथम राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन के क्रियाकलाप निश्चय ही उपयोगी, दूरदर्शी और सुनियोजित थे, परन्तु साम्प्रदायिक, अलगाववादी आदि तत्वो ने उस सम्मेलन की योजनाओ को सफल नही होने दिया। परिणामस्वरूप जून, 1968 ई० मे श्रीनगर मे दो दिवसीय राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन आयोजित किया गया। इसके सदस्यो की सख्या पहले सम्मेलन के सदस्यो की सख्या 39 से बढकर 55 सदस्य हो गयी। इसमे श्रम और व्यापारिक सघो को भी प्रतिनिधित्व दिया गया। इस सम्मेलन द्वारा तीन समितियो का गठन किया गया। प्रत्येक समिति को एक–एक समस्या दी गयी– क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकतावाद और भाषावाद। इन समितियों ने विचार–विमर्श द्वारा यह प्रस्तावित किया कि देश मे निगरानी और सर्तकता की व्यवस्था को चौकस किया जाये जिससे कि विभिन्न सम्प्रदायो, भाषा–भाषियो और क्षेत्रवादियो के बीच तनाव पैदा करने वाले तत्वो पर निषेधात्मक रोक लगायी जा सके। राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन में भारतीय दण्ड सहिता मे उन व्यापक सुधारो का प्रस्ताव किया गया, जिनसे अलगाव, तनाव, आतकवाद और पृथक्तावाद फैलाने वाले तत्वो को दण्डित किया जा सके। राष्ट्रीय एकता की स्थापना के विषय में कार्य करने और उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिये कई अन्य समितियो का भी गठन किया गया। इसने लेखको, फिल्म निर्माताओं, कलाकारों आदि से साहित्य, नाटक और फिल्मो द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण का प्रचार–प्रसार करने का अनुरोध किया।

6.6.4 राष्ट्रीय एकीकरण के लिए गठित और आयोजित अन्य संगठन एवं आयोजन

दोनो राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलनो के उद्देश्य मे सिद्धान्त और व्यवहार के गुण थे, परन्तु एकीकरण की प्रक्रिया दृढ नही हो पा रही थी। राजकीय स्तर के अतिरिक्त गैर–राजकीय स्तर पर भी इस दिशा मे व्यापक प्रयास किये जा रहे थे। इस श्रृंखला मे साम्प्रदायिकता विरोधी राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन सर्वोदय नेता जय प्रकाश नारायण की अध्यक्षता मे किया गया। इसमे साम्प्रदायिकता फैलाने के लिए राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ को दोषी ठहराया गया। सन् 1970 ई० मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने साम्प्रदायिकता के

विस्तार के विषय मे निषेधात्मक कार्यवाही करने पर विचार किया। इसके द्वारा साम्प्रदायिक सगठनो पर रोक लगाये जाने के अतिरिक्त साम्प्रदायिकता से प्रभावित क्षेत्रो मे राजकीय पुलिस और प्रशासन के अधिकारियो को उत्तरदायी बनाये जाने का अनुरोध किया गया। चूँकि यह समस्या की दलगत और आशिक समझ मात्र थी, अत न तो साम्प्रदायिक दगे कम हुए और न ही वास्तविक धर्मनिरपेक्षता की स्थापना हो सकी। सन् 1970 ई० मे खान अब्दुल गफ्फार खान (सीमान्त गॉधी) के भारत आगमन के अवसर पर इन्सानी बिरादरी नामक गैर सरकारी सगठन का गठन किया गया परन्तु इसको अपने प्रयोजन मे कोई सफलता नही मिली। सम्प्रदायवाद विरोधी इसानी बिरादरी को कुछ लोगो द्वारा साम्प्रदायिक सगठन बताया गया। खुदाई खिदमतगार नामक गैर–सरकारी सगठन द्वारा 'साम्प्रदायिकता विरोधी कमेटी' का गठन सन् 1970 ई० मे किया गया, जिसने राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा मे प्रयास किया। परन्तु रचनात्मक प्रयासो के प्रत्युत्तर में विभिन्नीकरण की प्रवृत्तियॉ भी अपना क्षेत्र विस्तार का रही थीं। शिव सेना, आनन्द मार्ग, राष्ट्रीय स्वयं सेवक सघ एव जमायते इस्लामी इत्यादि साम्प्रदायिक संगठनों की सख्या दिन–प्रतिदिन बढती जा रही थी। सन् 1974 ई० मे श्रीमती सुभद्रा जोशी द्वारा नई दिल्ली मे अखिल भारतीय साम्प्रदायिकता विरोधी समिति का गठन किया गया, जिसने साम्प्रदायिक और जाति पर आधारित राजनीतिक दलो पर प्रतिबन्ध लगाने की मॉग की।

सन् 1980 ई० मे श्रीमती इदिरा गाधी के नेतृत्व में पुन राष्ट्रीय एकता परिषद का पुनर्गठन किया गया और हमेशा की तरह इस परिषद ने भी राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सुझाव दिये। सन् 1991 ई० में पी० वी० नरसिम्हाराव की सरकार ने राष्ट्रीय एकता परिषद को और विस्तृत किया।

देश मे बढती हुई साम्प्रदायिकता तथा हिसात्मक घटनायें और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच बढता हुआ तनाव इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि सरकार के द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण के लिए औपचारिक रूप से जो भी प्रयास किये गये, वह पूरी तरह से सफल नही रहे। इसके कई कारण बताये जा सकते हैं – प्रथम, एकीकरण के लिए बनायी गई योजनायें कम व्यावहारिक और अधिक आदर्शात्मक थीं, उनके बनाने और कार्यान्वित करने में कोई यथार्थ निष्ठा नहीं रही। द्वितीय, एकीकरण के प्रयास राजनीतिक और दलीय आधार पर हुए,

इसलिए जो भी योजनाये बनी, चूँकि वह काग्रेस दल की पहल पर बनायी गईं थी, इसलिए उनके कार्यान्वयन मे विपक्षी दलो का वास्तविक सहयोग नही मिला। यही कारण था कि सन् 1980 ई० मे गठित की गई राष्ट्रीय एकता परिषद मे चरण सिह और उनके दल—लोकदल ने सम्मिलित होने से इनकार कर दिया। विपक्षी दलो का यह आरोप रहा है कि एकीकरण की बात केवल एक राजनीतिक नारा और अल्पसख्यको को अपनी ओर आकर्षित करने का एक साधन है (सईद, 1996, पृ० 374)।

वास्तव मे राष्ट्रीय एकता भारत के सामने इतना महत्वपूर्ण और गम्भीर प्रश्न बन चुकी है कि केवल सैद्धान्तिक प्रयासो और सम्मेलनो के द्वारा ही इसका समाधान नही किया जा सकता है। राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सर्वप्रथम देशवासियो मे अनुशासन लाने की आवश्यकता है। अनुशासन में वृद्धि होने से अपने आप एक राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण और विकास होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

आशीर्वादम्, ए० डी० एव मिश्र, कृष्णकान्त, 1992 **राजनीति विज्ञान,** एस० चन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड, दिल्ली।

भट्ट, भरतराम, 1981 **एकता के चार अध्याय,** इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली।

Bondurant, Joan V, 1958 , **Regionalism Versus Provincilism - A Study in problems of India national unity,** University of California, p 1

मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ, 2001 **भारतीय समाज व संस्कृति,** विवेक प्रकाशन, दिल्ली।

सारस्वत, आनन्द प्रकाश, 1991 **साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीय एकीकरण,** सरूप एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ० 95।

सईद, एस० एम०, 1996 **भारतीय राजनीतिक व्यवस्था,** सुलभ प्रकाशन लखनऊ।

तरूण, हरिवश, 1991 **भारत की राष्ट्रीय एकता,** ज्ञान गगा, दिल्ली।

यादव, सुषमा एव शर्मा, रामअवतार, 1997 **भारतीय राजनीति के ज्वलन्त प्रश्न,** हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

अभ्यास–7

प्रादेशिकवाद से संबद्ध अन्य समस्यायें

भारत एक ऐसा विशाल देश है जिसमे विभिन्न धर्मों, जातियो एव समाजो के लोग निवास करते हैं। यहॉ भाषा की विविधता के साथ–साथ भौगोलिक परिस्थितियो एव रहन–सहन मे भी स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है। विविधता के होते हुए भी स्वतत्रता सग्राम मे, प्रत्येक धर्म एव जाति के लोगों ने तन–मन–धन से मिलकर भाग लिया। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् हुए युद्धो मे भी सभी भारतवासी आपसी कलह, मतभेद एव वैमनस्य को भूलकर शत्रु को मुँह तोड जवाब दिये हैं। इन युद्धो के समय देश के सभी नागरिको द्वारा जो सहयोग और सहायता दी गयी, वह यह मिशाल रही है एव भारत की सही माने मे पहचान करती है। किन्तु आज स्थिति बदली हुई लगती है। देश मे इस सीमा तक पृथकतावादी एव सकीर्णतावादी शक्तियॉ जोर पकडती जा रही हैं कि न केवल देश की सुरक्षा एव अखण्डता के लिये खतरा उत्पन्न हो गया है, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी एव शैक्षिक प्रगति मे भी अनेकानेक बाधाये उत्पन्न हो रही हैं। वास्तव मे भारत ही नही वरन् विश्व के किसी भी देश ने तब तक उन्नति नही की, जब तक वहॉ के नागरिको मे राष्ट्रीय चेतना की भावना का स्वाभाविक रूप से विकास नहीं हुआ है।

भारत में आतकवाद, विलगाववादी आन्दोलन, नक्सली आन्दोलन, किसान एवं मजदूर आन्दोलन होना इसलिए स्वाभाविक है क्योकि जहॉ एक तरफ देश पर आधुनिकीकरण का प्रभाव दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है वहीं दूसरी तरफ विद्यार्थी, शिक्षक, कर्मचारी, अधिकारी एव राजनीतिक नेता आदि मे अर्न्तद्वन्द भी परिलक्षित हो रहा है। इसका मुख्य कारण स्वार्थ, मिथ्याभिमान एव स्वेच्छाचारिता आदि से जुडा है। हम न तो सयमित ही रह गये हैं और न ही अपने कर्त्तव्यो के प्रति जागरुक। हम सदैव अधिकारो की बात तो करते हैं किन्तु कर्त्तव्यो की उपेक्षा करते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि कर्त्तव्य रूपी धुरी के अभाव में अधिकार का पहिया निष्क्रिय और सामाजिक जीवन की गाडी गतिहीन हो जाती है। अपने आपको नियन्त्रित करते हुए दूसरो को नियन्त्रित करना आज अपरिहार्य है। प्रादेशिकवाद के लिए

जितना खतरा रुग्ण समाज, भ्रष्ट आर्थिक एव राजनीतिक व्यवस्था से उत्पन्न होता है, उतना ही अपराधियो, आतकवादियो, नक्सलियो, शरणार्थियो आदि से भी होता है। हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियॉ इसी दुखद स्थिति की परिचायक हैं। राष्ट्रीय अखण्डता हेतु कर्त्तव्यपरायण, आज्ञाकारिता, नवीन उत्साह, सहयोग, दृढ सकल्प, अनुशासन आदि गुणो का विकास समाज मे होना आवश्यक है, तभी हमारी राष्ट्रीय अखण्डता की जड मजबूत हो सकेगी। वर्तमान अध्याय मे प्रादेशिकवाद से सम्बद्ध इन्ही समस्याओ के विवेचन का प्रयास किया गया है।

7.1 आतंकवाद

आतकवादी क्रियाओ में बहुधा विशिष्ट मार्गों के साथ हिसा अथवा हिसा की धमकी समाविष्ट होती है। हिसा की शिकार सामान्य जनता होती है जबकि हिंसको का लक्ष्य राजनीतिक होता है। आतकवादियो की क्रियाये सामान्य रूप से इस प्रकार की जाती हैं ताकि इसे संचार माध्यम द्वारा अधिकतम प्रचार का लाभ मिल सके। आतकवादी एक सगठित समूह के सदस्य होते हैं और वे अन्य अपराधियो की अपेक्षा अपने कार्य के लिए अधिक प्रसिद्धि प्राप्त करने का प्रयास भी करते हैं। अन्त में आतकवादी क्रियाओ का लक्ष्य तत्काल भौतिक वस्तुओ के विनाश की अपेक्षा प्रभाव उत्पन्न करना होता है। आतकवादी अपनी गतिविधियो को आतकवाद का नाम नहीं देते। आतक फैलाने वाले लोग अपने आप को राष्ट्रवादी, क्रान्तिकारी या अपने दल के निष्ठावान सैनिक कहते हैं (उपेन्द्र, 2001 पृ० 393)।

आतकवाद का उद्‌देश्य निरीह, निरपराध लोगो की हत्या करके सामान्य जनता मे आतक और दहशत फैलाकर, कानूनी और सामाजिक व्यवस्था को ध्वस्त कर प्रशासन तन्त्र को असफल कर अपने राजनीतिक लक्ष्यो की सिद्धि के लिए सरकार को विवश करना है। आतकवाद की गतिविधियो को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि यह एक असामाजिक, असास्कृतिक, अनैतिक, अधार्मिक, अमानवीय, असंवैधानिक एव अवाछित कार्य पद्धति है। आतकवाद को सामूहिक हिसा भी नहीं कहा जा सकता है। आतंकवाद वस्तुत एक लघु और सीमित सगठन द्वारा संचालित होता है और इसको अपने निश्चित लम्बे कार्यक्रम एवं लक्ष्य से प्रेरणा मिलती है और उसी के लिए आतक उत्पन्न किया जाता है। सामूहिक हिसा के पीछे

कोई सगठित एव सुनियोजित कार्यक्रम नही होता है तथा इसमे बौद्धिकता का भी पूर्ण अभाव होता है। अपनी अनुचित और असवैधानिक मॉगो को मनवाने के लिए विभिन्न आतकवादी गुट विभिन्न प्रकार की हिसात्मक गतिविधियो में लिप्त हैं (उपेन्द्र, 2001, पृ० 393)।

आतकवाद को प्रसारित करने मे विकसित सचार साधनो का भी बहुत बडा हाथ है। कुछ देशो द्वारा धन, हथियार और प्रशिक्षण जैसी सुविधाओ को मुहैया कराने की नीति से भी आतकवादियो के हौसले बुलन्द हुए हैं। अपने स्वार्थ के लिए दूसरे देश के आतकवादियो को प्रश्रय एव समर्थन देने की सरकारी नीति का ही फल है कि आतकवाद की घटनायें कम होने के स्थान पर बढती जा रही हैं। आज स्थिति यह है कुछ देशो के राजनेता अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए न केवल आतकवादी सगठनो का सहारा ले रहे हैं बल्कि इस प्रकार के सगठन सरकार की छत्रछाया मे फल–फूल भी रहे हैं। इन सगठनो के कार्यकर्त्ताओ को दूसरे देशो में तोड–फोड करने तथा वहॉ की सरकार पर उनकी इच्छानुसार कार्य करने हेतु दवाब डालने के लिए भी भेजा जाता है (श्रीवास्तव, 2000, पृ० 17)।

भारत मे आतकवाद ने युवाओ को अधिक आकर्षित किया है, विशेषतया बेरोजगार, विभ्रान्त और आदर्शवादी युवाओ को। जब तक ऐसे उद्‌देश्य रहते हैं, जो तीव्र भावनाओं को उत्तेजित करते हैं तब तक आदर्शवादी युवा एक उद्‌देश्य के लिए आतकवाद के रोमाचक स्वप्नो को देखने के लिए प्रेरित होगे। जब एक राष्ट्र निहित स्थानों मे लिप्त भ्रष्ट नेतृत्व के कारण अपने उद्‌देश्य से विमुख हो जायेगा तो कुण्ठायें एव वंचन आक्रामक युवाओ को उग्र प्रवृत्तियो की ओर ले जायेगे (आहूजा, 2002, पृ० 390)। आतकवाद का हिस्सा बनाये जाने के लिए युवको को तीन तरह से फॉसा जाता है–प्रथम, धर्म और सस्कृति का जाल बिछाकर, द्वितीय राष्ट्रीयता और पहचान खो जाने का भय दिखाकर तथा तृतीय, ऐश्वर्यपूर्ण जीवन का लालच देकर। आर्थिक आतकवाद एक ऐसा आतकवाद है, जिसमे शामिल होने की ललक किसी भी बेरोजगार युवक मे पैदा की जा सकती है।

आतकवाद की सफलता काफी हद तक उसके समर्थन के आधार पर निर्भर होती है जिसमे केवल राजनीतिक एव सामाजिक समर्थन ही सम्मिलित नहीं होता अपितु धन, हथियार और प्रशिक्षण का समर्थन भी होता है। आतकवादी विभिन्न स्रोतों से धन प्राप्त करते हैं, जैसे

लोगो से दान एव कर, बैंक डकैतियो, मादक वस्तुओ की तस्करी एव क्रय से और बन्धक व्यक्तियो से फिरौती लेकर। व्यक्तियो एव सुरक्षा बलो से हथियार छीने जाते हैं या विदेशो से खरीदे जाते हैं (आहूजा, 2002, पृ० 391) भारत के अधिकतर आतकवादियो को पाकिस्तान मे प्रशिक्षण दिया जाता है। पाकिस्तान मे युवा आतकवादी तैयार करने के लिये बाकायदा मदरसे और प्रशिक्षण केन्द्र खुले हैं। गुप्तचर एजेसियो का मानना है कि प्रत्येक वर्ष 4000 से 5000 कट्टर इस्लामी युवक पाकिस्तान के इन मदरसों और बाद मे आतकवादी प्रशिक्षण केन्द्रो से पढकर निकलते हैं जो कि इस्लामिक आतकवाद के प्रशिक्षित रंगरूट होते हैं। आतकवादी सगठनो मे शामिल होने वाले युवक चार प्रकार के होते हैं। एक तो वह जिनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि धार्मिक होती है और वे खुद भी अन्धविश्वासी होते हैं। दूसरे वे जो किसी न किसी प्रकार की हीनभावना से ग्रसित होते हैं और धर्म के नाम पर बलिदान हो जाने को दैवीय नायकत्व मानते हैं। तीसरे वे युवा होते हैं जो जीवन से पूरी तरह निराश हो कर स्वप्नहीन होते हैं तथा चौथे वे होते हैं जो खुद से सोच समझ नहीं पाते हैं तथा उन्हे कोई भी बरगला लेता है। ऐसे लोग आवश्यक नहीं है कि धार्मिक आस्था रखते ही हों।

आतकवाद के चार प्रकार हैं जिनका भारत सामना कर रहा हैं, वे हैं : पजाब में खालिस्तान उन्मुखी आतकवाद, कश्मीर का अलगाववादी आतकवाद, बगाल, बिहार, आन्ध्र प्रदेश मे नक्सलवादी आतंकवाद और असम में उल्फा और बोडो आतकवाद। यद्यपि पजाब के आतकवाद को कुचल दिया गया है, फिर भी कभी–कभी वह सिर उठाता रहता है। खालिस्तानी उन्मुखी सिख आतंकवाद पृथक्तावाद द्वारा एक मजहबी राज्य के स्वप्न पर आधारित था, नागालैण्ड और मिजो आतंकवाद पहचान की संकट स्थिति पर आधारित था, मणिपुर और त्रिपुरा का आतकवाद परिवेदना (Grievance) की स्थिति पर आधारित था और बगाल, बिहार और आन्ध्र प्रदेश के आतंकवाद का आधार वर्ग विद्वेष था। यदि पजाब में सिख आतंकवाद परिवेदना की स्थिति या सिखो के पहचान की संकट–स्थिति पर आधारित होता, तो उससे राजनीतिक वार्ता और सवैधानिक साधनो से निबटा जा सकता था, परन्तु जब तक वे देश से पृथक होकर और उसके बॅटवारे से एक मजहबी राज्य के लक्ष्य पर आधारित था तो सरकार को उसके प्रति आतक युक्तियों से सामना करना पडा था (आहूजा, 2002, पृ० 391)। उत्तर हो या दक्षिण, पूर्व हो या पश्चिम, भारत के हर सीमान्त पर असंतुष्ट तत्वों ने

अपनी मॉगो की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए आतकवादी हिसा का आलम्बन किया है। इस बात के अनेक प्रमाण मिल चुके हैं कि भारत की एकता को नुकसान पहुँचाने और उसकी भौगोलिक एकता के अतिक्रमण के लिए विदेशी शक्तियॉ आतकवादियो को समर्थन दे रही हैं (पन्त एव जैन, 1993, पृ० 540)।

पजाब मे उग्रवादियो का यह अनुमान था कि यदि हिन्दू–सिख झगडे व्यापक रूप से फैला दिये जाये तो पजाब से बाहर रहने वाले सिख भागकर उस प्रदेश मे आ बसेगे और वहॉ के हिन्दुओ को अन्यत्र शरण लेने हेतु विवश किया जा सकेगा। इस प्रकार उनका खालिस्तान का सपना पूरा हो सकेगा (श्रीवास्तव, 2000, पृ० 24)। सरकार के अनथक एव कठोर कदम के कारण आज पंजाब मे आतकवाद करीब–करीब समाप्त हो गया है परन्तु जम्मू कश्मीर एव उत्तरी–पूर्वी भारत का क्षेत्र बुरी तरह सें इसकी चपेट मे है (चित्र 7 1)।

कश्मीर के आतकवादी भी अन्तत उसी घिनौनी राह पर आ गये हैं जिस पर पजाब के उग्रवादी आ चुके थे। वे उन सभी लोगो को अपना निशाना बना रहे हैं जो लोकतंत्र और धर्म–निरपेक्षता में विश्वास करते हैं। उग्रवादियों की नजर मे यह गैर–इस्लामी कार्य है। अल्पसख्यक हिन्दू और सिख तो कश्मीर से पलायन कर ही रहे हैं, आतवादी चाहते हैं कि वे लोग भी कश्मीर छोड जाये जो लोकतान्त्रिक विचारधारा मे विश्वास रखते हैं। इस समय कश्मीर घाटी मे तेरह देशों (अफगानिस्तान, बाग्लादेश, मिस्र, कजाकिस्तान, तुर्की, सऊदी अरब, पाकिस्तान, सूडान, बहरीन, यमन, लीबिया, म्यामार और ईरान) के आतकवादी सक्रिय हैं। जम्मू-कश्मीर में उग्रवादी अब राज्य के सीमा क्षेत्रों को छोड राज्य के भीतरी भागो में घुस गये हैं। इस राज्य में मुख्य रूप से गैर कश्मीरी भाडे के उग्रवादी हैं। आज तक कश्मीर में सामाजिक–आर्थिक विकास के बजाय राजनीतिक सत्ता हथियाने पर ही जोर दिया जाता रहा है। फलत तथाकथित आजाद कश्मीर की तरह से कश्मीरी स्वायत्तता की मॉग करने लगे हैं (श्रीवास्तव, 2000, पृ० 25)।

आज हमारा ध्यान सिर्फ कश्मीर मे चले रहे उग्रवाद की तरफ केन्द्रित है और हमे जो महत्व पूर्वोत्तर राज्यो को देना चाहिए वह हम नहीं दे पा रहे हैं। दरअसल, इसके लिए कोई एक सरकार जिम्मेदार नहीं है, पिछले तीन दशकों के दौरान कई बार वहॉ स्थति सुधरी

भारत
आतंकवाद प्रभावित
राज्य
N
जम्मू और कश्मीर
पा कि स्ता न
ची न
पंजाब
ने पा ल
भूटान
अरुणाचल
असम
नागालैण्ड
मेघालय
मणिपुर
त्रिपुरा
मिज़ोरम
म्यां मा र
बं गा ल की खा ड़ी
अ र ब सा ग र
अडमान और निकोबार द्वीप समूह
लक्षद्वीप
100 0 100200 300
किलोमीटर
हिं न्द म हा सा ग र
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
प्रान्तीय सीमा
राजधानी
प्रभावित क्षेत्र (वर्तमान)
प्रभावति क्षेत्र (पूर्व)
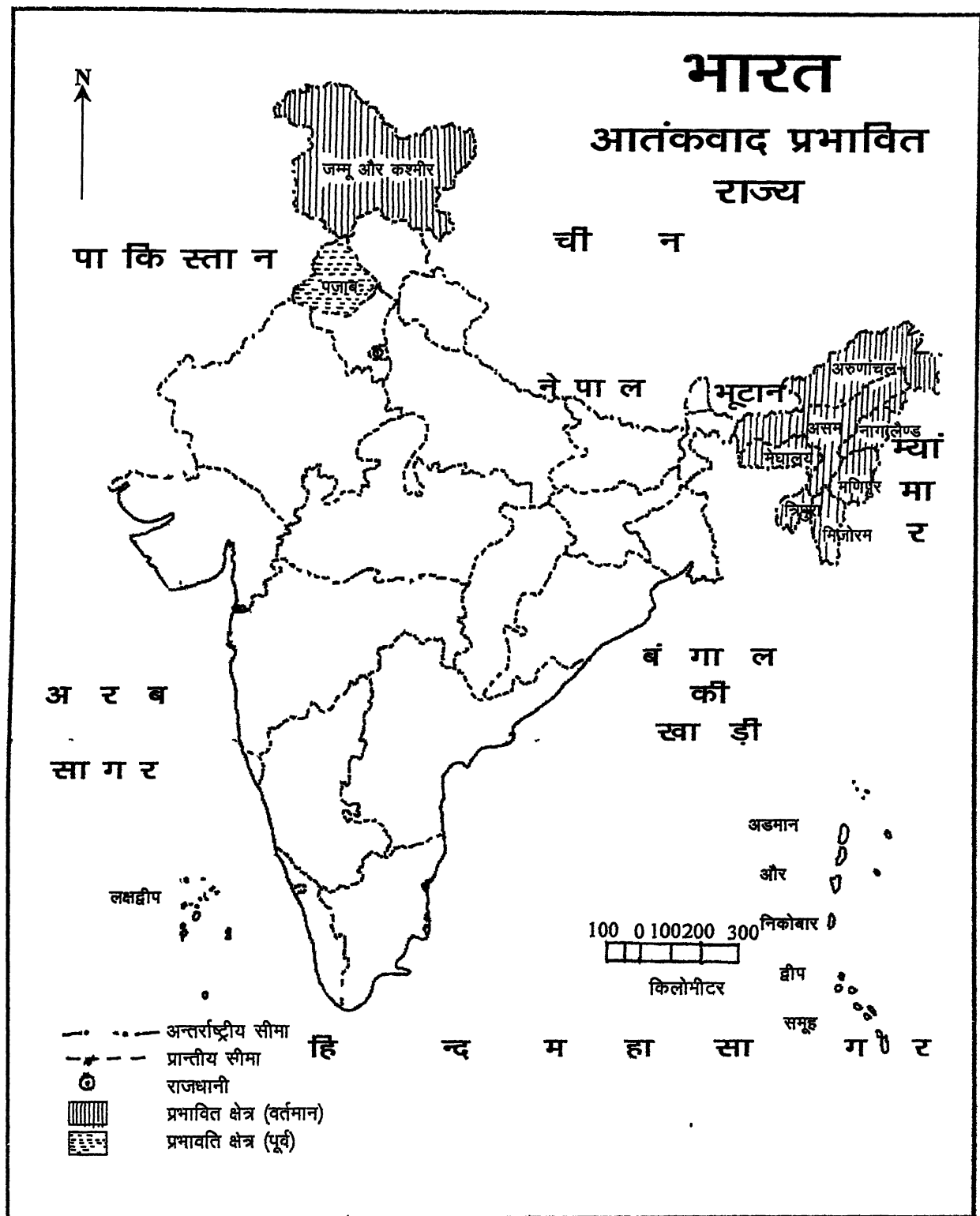
चित्र 7.1

और बिगडी तथा अन्ततोगत्वा पूर्वोत्तर के सात में से पाच राज्य लगातार आतकवाद समस्या का सामना करते रहते हैं। पिछले कई दशको से चल रही व्यवस्थाओं के कारण वहॉ के लोग अभी भी राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड नही पा रहे हैं। चूँकि पूर्वोत्तर के नागरिक शक्ल–सूरत से देश के अन्य भाग के भारतीयो से बहुत मिलते–जुलते नहीं हैं, इसलिए वे स्वय को शेष भारतीयो से अलग–थलग महसूस करते हैं। आज पूर्वोत्तर मे न तो सही सडकें हैं और न ही सचार साधन, रेल, पेयजल की व्यवस्था तथा उद्योग आदि। मणिपुर मे तो इस तरह के उग्रवादी गिरोह सक्रिय हैं जो कि प्रत्येक सरकारी कर्मचारी और अफसर से उनके वेतन मे से एक हिस्सा वसूलते हैं, यहॉ तक कि पुलिस मुख्यालय से भी धन वसूला जाता है। पूर्वोत्तर के आतकवादी सगठनो की मॉगो पर गौर से विचार किया जाये, तो यह पता चलता है कि अपने क्षेत्र एव समुदाय के विकास के लिए स्वायत्त परिषद् या पृथक् राज्य व राष्ट्र का निर्माण चाहते हैं। इन मॉगो के उठने का मुख्य कारण राजनेताओ और उनके सांसद व प्रतिनिधियों द्वारा उन राज्यों एव निवासियो की निरन्तर उपेक्षा किया जाना है।

यूनाइटेड लिबरेशन फ्रण्ट ऑफ असम (उल्फा) का गठन अप्रैल, 1979 ई० असम के ग्वालपाडा जनपद मे हुआ था। प्रारम्भ काल से यह सगठन हिंसक होने की वजह से लोकप्रियता प्राप्त नही कर सका। स्थानीय समस्याओं को उठाकर पिछली शताब्दी के नब्बे के दशक के उत्तरार्द्ध मे यह लोगो की सहानुभूति पाने में अत्यधिक सफल रहा है। उल्फा का मुख्य उद्देश्य असम मे कार्य कर रहे भारत के अन्य राज्यों से आये व्यक्तियों को असम से बाहर निकालना रहा है। पृथक् सम्प्रभु राष्ट्र असम की आकांक्षा रखे यह सगठन लोकप्रियता के साथ–साथ अपने उद्देश्यों में भी विस्तार कर रहा है। वर्तमान काल में कई जगहो पर इस सगठन की समानान्तर सरकारें चल रही हैं। इसका अपना प्रशासन, न्यायालय, न्याय प्रक्रिया एवं अपना उद्देश्य है। उल्फा का मुख्य उद्देश्य है– निर्धनता, असमानता, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार के विरुद्ध आर्थिक–सामाजिक न्याय प्रदान करना। उल्फा अत्याधुनिक अस्त्र–शस्त्र से लैस एक अत्यधिक शक्तिशाली संगठन है, जिसका कार्य भ्रष्टाचार, बलात्कार और हत्या के आरोप में फॅसे लोगो की हत्या करना है, जिससे इस संगठन की लोकप्रियता जनता मे बढ़ी है। हितेश्वर सैकिया सरकार ने जिन उल्फा उग्रवादियों को समर्पण कराया था वे समर्पणकारी भी बाद मे माफिया गिरोह बनाकर लोगों को धमकाने और लूटने का काम

करने लगे। इन्हे वहाँ सुल्फा (सरेण्डर्ड उल्फा) कहते हैं। मुस्लिम यूनाइटेड लिबरेशन फ्रट ऑफ असम (मलफा), मुस्लिम लिबरेशन टाइगर्स ऑफ असम (मल्टा), इस्लामिक सेवक सघ, इडिपेडेट लिबरेशन आर्मी आफ असम आदि आतकवादी सगठनो का उद्देश्य मुस्लिमो के अधिकारो की रक्षा करना अथवा पृथक् मुस्लिम राष्ट्र बनाना। असम मे बोडो लोगो के पृथक् बोडोलैण्ड राज्य बनवाने के लिए अनेक लोग आतकवादी गतिविधियो मे सलिप्त है।

नेशनल सोशलिस्ट काउन्सिल ऑफ नागालैण्ड (इस्साक गुट) का मुख्य उद्देश्य नागालैण्ड को एक स्वतत्र सम्प्रभु ईसाई समाजवादी जनतात्रिक गणराज्य का निर्माण करना है। पीपुल्स लिबरेशन आर्मी का उद्देश्य मणिपुर को साम्यवादी विचारधारा पर आधारित एक स्वतत्र सम्प्रभु राष्ट्र बनाना है। इसी प्रकार कुकी नेशनल आर्मी का उद्देश्य कुकी होमलैण्ड की स्थापना करना है।

पजाब, कश्मीर एवं पूर्वोत्तर राज्यो के अलावा कुछ और प्रान्तो मे भी आतकवादी गतिविधिया पायी गयी हैं। मुम्बई मे मार्च 12, 1993 को आतकवादियो ने ग्यारह व्यापारिक दृष्टि से प्रमुख भीड वाले स्थानो पर विभिन्न बम विस्फोट द्वारा भय व आतक पैदा किया था। इनमे 235 से अधिक व्यक्ति मारे गये तथा 1,214 व्यक्ति घायल हुए। सम्बन्धित व्यक्तियों की गिरफ्तारी पर बहुत से हथियार व गोला–बारूद मिले थे तथा पाकिस्तान की गुप्तचर संस्था एव इसी देश द्वारा समर्थित दुबई मे बसे मुस्लिम तस्करों का इसमें गहरा हाथ पाया गया था। इसी प्रकार का बम विस्फोट कोलकाता मे मार्च 16,1993 को हुआ था, जिसमे 86 व्यक्ति मारे गये थे (आहूजा, 2002, पृ० 396)। 13 दिसम्बर, 2001 को ससद पर हुए आतकवादी हमले मे कई सुरक्षा कर्मी एव अन्य व्यक्ति मारे गये थे। हाल ही में 24 सितम्बर, 2002 को गुजरात की राजधानी गाधीनगर के अक्षरधाम मन्दिर पर आतकवादियो ने हमला करके 35 से अधिक व्यक्तियो की हत्या कर दी तथा सैकडो व्यक्तियों को घायल कर दिया।

भारत सरकार की सूचनाओ के अनुसार (मई 16, 1994) इस बात के पक्के सबूत हैं कि पाकिस्तान अलगाववादियों और आतंकवादियो को बढावा देने के लिए काठमांडू (नेपाल), ढाका एव चटगॉव (बाग्लादेश) और कनाडा मे अड्डे बनाकर उनकी गतिविधियॉ सचालित कर रहा है। पंजाब की समस्या पर यद्यपि काबू पा लिया गया है, परन्तु कश्मीर के समान ही

उत्तर–पूर्व के नागालैण्ड, मिजोरम, मणिपुर, असम एव अरुणाचल प्रदेश की स्थिति बिगडती जा रही है। इन क्षेत्रो के आतकवादियो को बाग्लादेश सीमा के अन्दर प्रशिक्षण दिया जा रहा है' (आहूजा, 2002, पृ० 396)।

7.2 नक्सलवाद

नक्सलवाद का प्रादुर्भाव बगाल मे सन् 1967 ई० मे हुआ, जिसके अगुआ चारू मजूमदार और कानू सन्याल थे। सन् 1969 ई० मे इसे बढावा मिला, जब भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (एम०एल०) का चीन, जो कि भारत को कमजोर करना चाहता था, के उकसाने पर जन्म हुआ। नक्सलवादी विचार को सैद्धान्तिक समर्थन अप्रैल, 1969 ई० मे हुई चीन की कम्युनिष्ट पार्टी की नवी काग्रेस से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ जबकि माओ के विचारो को मार्क्सिज्म–लेनिनिज्म की चरम सीमा कहा गया। इन विचारों का उपयोग करते हुए नक्सलवादी नेता चारू मजूमदार ने घोषणा की थी कि चीन का चेयरमैन हमारा चेयरमैन है। चारु मजूमदार के वर्ग–शत्रुओं के सहार के नारे को किसान वर्ग और शिक्षित मध्यम वर्ग से अधिक समर्थन प्राप्त नही हुआ, यद्यपि कई आदर्शवादी युवा नक्सलवादी पुरुषों और स्त्रियो ने जमीदारों, साहूकारो और पुलिस अधिकारियो को जान से मारना प्रियकर समझा (आहूजा, 2002 पृ० 393)।

धीरे–धीरे यह आन्दोलन आन्ध्र प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उडीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ और महाराष्ट्र के कुछ हिस्सो में भी फैल गया। आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना के निजामाबाद क्षेत्र मे, बिहार मे आरा के भोजपुर क्षेत्र में तथा छत्तीसगढ के बस्तर क्षेत्र में, नक्सलपथी गुट निर्द्वन्द्व होकर अपहरण, हत्या एवं धन वसूली में संलग्न हैं (चित्र 7.2)। वास्तव मे इस प्रकार के आन्दोलन के पीछे आर्थिक एवं सामाजिक विषमताये ही हैं। नक्सलवादी आन्दोलन का नेतृत्व मध्य वर्ग ही करता है तथा यह आन्दोलन बुनियादी रूप से पिछडों और शोषितों के लिए माना जाता है। स्वतत्रता के इतने वर्षों बाद भी इस प्रकार की विषमताये ज्यो की त्यो विद्यमान हैं। भारत में भूमिहीन निर्धन किसानों एवं ग्रामीण बेरोजगारो की सख्या कम होने के बजाय बढी है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी गुट ने नक्सलवादी आन्दोलन को सक्रिय बनाने मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पिछड़े एवं आदिवासी क्षेत्रो में विकास

भारत
नक्सलवादी आन्दोलन
N
चीन
पाकिस्तान
नेपाल
भूटान
म्यांमार
उत्तर प्रदेश
बिहार
बांग्ला देश
झारखण्ड
पश्चिम बंगाल
मध्य प्रदेश
छत्तीसगढ़
उडीसा
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
आन्ध्र प्रदेश
अडमान और निकोबार द्वीप समूह
लक्षद्वीप
100 0 100 200 300
किलोमीटर
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
प्रान्तीय सीमा
राजधानी
नक्सल प्रभावित क्षेत्र
हिन्द महासागर
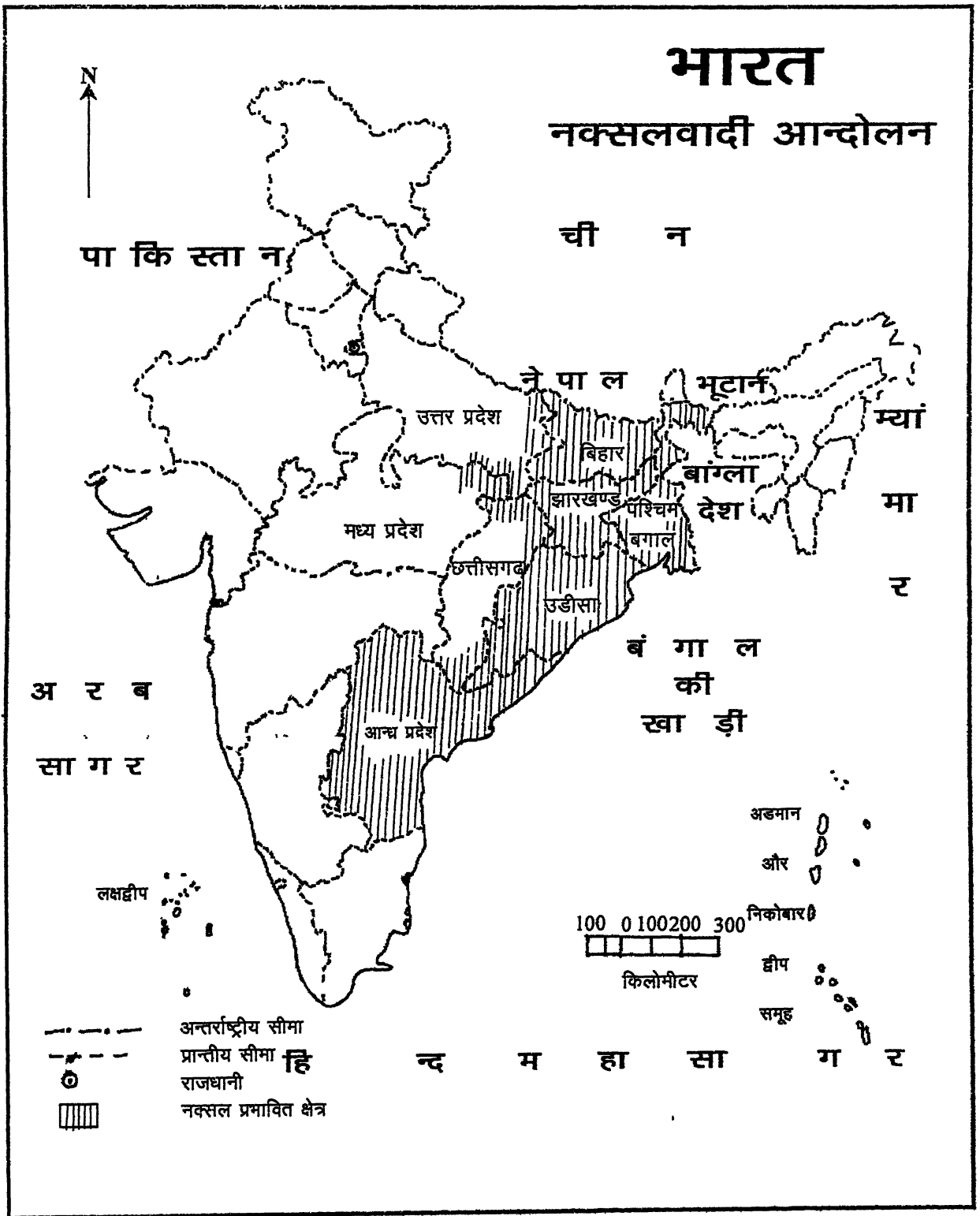
चित्र 7.2

के नाम पर अब तक कुछ भी नही किया गया। इसी कारण इस क्षेत्र के निर्धन और भूमिहीन जनता ने अब हथियार उठा लिया है तथा वह जमीदारो एव तालुक्केदारो को अपना निशाना बना रही है। ये नक्सली भूपतियो से हजारो एकड भूमि छीनकर भूमिहीनो के बीच बाट चुके हैं। अब तो यह जनता, सरकारी कर्मचारियो एव अधिकारियो का नि सकोच अपहरण कर रहे हैं तथा सरकारी सम्पत्ति को अपने हमले का निशाना बना रहे हैं (श्रीवास्तव, 2000, पृ० 165)। नक्सलवादियो का दर्शन चाहे जो भी हो, लेकिन वह असवैधानिक है और इससे अराजक तत्वो एव विघटनकारी तत्वो को बढावा मिलता है।

7.3 पृथकतावादी आन्दोलन

पृथकतावादी आन्दोलन का प्रभाव मुख्यत. भारत के परिधीय क्षेत्रो (जम्मू–कश्मीर, पजाब, उत्तर–पूर्व के राज्य) पर अधिक प्रभावशाली देखा जाता है (चित्र 7.3)। स्वतत्रता प्राप्ति के समय जब मुस्लिम लीग के नेता पाकिस्तान की मॉग कर रहे थे तभी कुछ अकाली नेताओ के मस्तिष्क मे अलग राज्य 'सिक्खिस्तान' का भाव उभरा परन्तु पाकिस्तान बन जाने के बाद हुए खूनी सघर्ष तथा शरणार्थियों की भीषण समस्या ज्वलन्त प्रश्न बनकर सामने आयी, जिसके आगे अलग राज्य की मॉग उभर नहीं पायी। सन् 1946–47 ई० के दगो मे हिन्दू–सिख एकता इतनी मजबूत हो गयी थी कि दोनो के बीच कोई फर्क नहीं रह गया (श्रीवास्तव, 1996, पृ० 332)। अकाली दल ने अक्टूबर, 1973 ई० मे आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव स्वीकार किया। इस प्रस्ताव मे चडीगढ के अलावा हरियाणा, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश के सिख आबादी वाले पजाबी भाषी क्षेत्रो को तत्काल पजाब मे मिलाने की मॉग की गयी थी। इसमें केन्द्र की भूमिका को रक्षा, विदेशी मामलो, डाक व दूरसचार, मुद्रा और रेलवे तक सीमित रखते हुए केन्द्र-राज्य सम्बन्धो मे मूलभूत परिवर्तन की मॉग की गयी थी। नवम्बर, 1982 ई० मे जारी किये गये प्रस्ताव के अधिप्रमाणित रूपान्तरण में "ऐसी प्रशासनिक इकाई के बनाने पर जोर दिया गया जहॉ सिखो और सिख धर्म के हितो को विशेष सरक्षण मिल सके" (सिह, 1999, पृ० 360)। अकाली दल का राजनीतिक लक्ष्य "खालसा की प्रमुखता" की स्थापना है। जब सिखों के पृथक् राज्य की बात नहीं मानी गयी तो वहॉ आतंकवाद का जन्म हुआ जो बडी कठिनाई से कुचला जा सका।

भारत
पृथकतावादी आन्दोलन
N
जम्मू और कश्मीर
पा कि स्ता न
ची न
पंजाब
ने पा ल
भूटान
अरुणाचल
असम
नागालैण्ड
मेघालय
म्यां
मा
र
बांग्ला
देश
त्रिपुरा
मणिपुर
मिज़ोरम
बं गा ल
की
खा ड़ी
अ र ब
सा ग र
अंडमान
और
निकोबार
द्वीप
समूह
लक्षद्वीप
तमिलनाडु
100 0 100 200 300
किलोमीटर
हिन्द महासागर
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
प्रान्तीय सीमा
राजधानी
पृथकतावादी आन्दोलन प्रभावित क्षेत्र
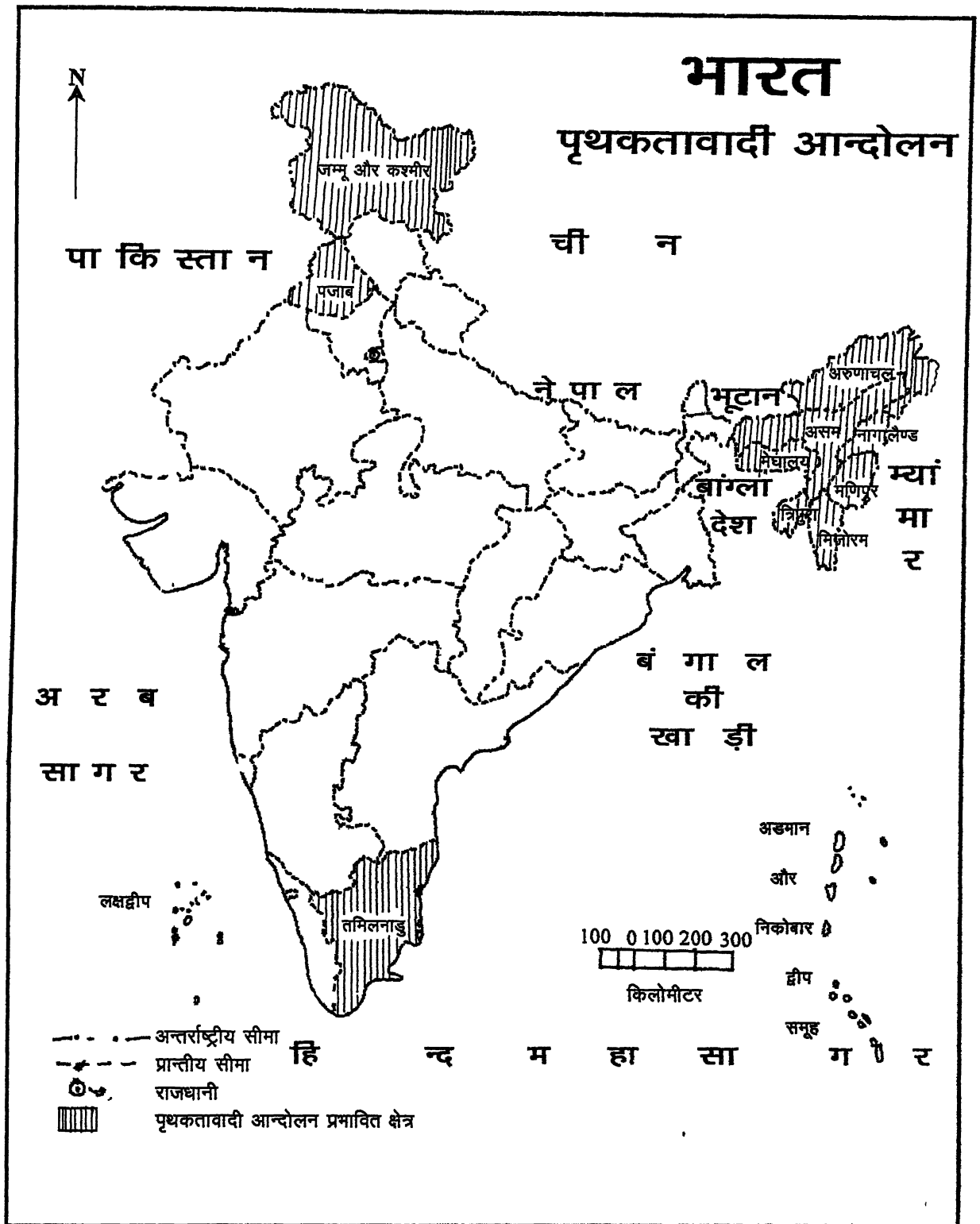
चित्र 7.3

स्वतत्र कश्मीर की मॉग बहुत समय से उग्रवादियो द्वारा अभी भी की जा रही है। कश्मीर के उग्रवादी साम्प्रदायिकता का खेल खेल रहे हैं। कश्मीर घाटी का तो इस्लामीकरण हो चुका है। वहॉ अल्पसख्यक हिन्दू एवं सिख तथा राष्ट्रवादी मुस्लिम परिवार वहॉ से जान बचाकर भाग खडे हुए। राजनीतिक अस्थिरता ने अलगाववाद की आग मे घी डालने का काम किया। बेरोजगारी, गरीबी और भ्रष्टाचार जैसी समस्याओ का निदान करने की अपेक्षा इन्हे और बढाया। परिणामस्वरूप राजनीतिक नेताओं पर आम जनता का विश्वास उठ गया तथा उग्रवादी सगठनो की पकड मजबूत होती चली गयी। आज हालत यह है कि कश्मीर घाटी मे खुलेआम मकानो पर पाकिस्तानी झण्डे देखे जा सकते हैं और भारत विरोधी नारे लगाये जाते हैं (श्रीवास्तव, 2000, पृ० 161–162)।

द्रविड मुनेत्र कड़गम मद्रास मे पिछली शताब्दी के आरम्भ में ब्राह्मण विरोधी द्रविड आन्दोलन का उत्तराधिकारी है। यह आन्दोलन शिक्षा के प्रसार, आधुनिकीकरण और विकास की प्रक्रिया का सीधा परिणाम है। आन्दोलन का प्रमुख लक्ष्य, सामाजिक जीवन मे ब्राह्मणों के प्रभुत्व को समाप्त करना था। इस तमिल राष्ट्रवाद का मुख्य आधार द्रविड सस्कृति की आर्य सस्कृति से भिन्नता और इसके द्वारा मूल द्रविड सस्कृति के विनाश का आरोप। इसने ब्राह्मणो को आर्य आक्रमण के प्रतिनिधियो के रूप मे प्रयुक्त किया। परिणामस्वरूप नवोदित तमिल राष्ट्रवाद का राजनीतिक प्रभाव तीव्रता से बढा। द्रविड मुनेत्र कडगम के अनुसार दक्षिण की निर्धनता का मुख्य कारण यहॉ औद्योगीकरण का सीमित विकास था जिसके लिए उत्तर भारतीय व्यापारियो द्वारा दक्षिण भारत पर आर्थिक नियन्त्रण जिम्मेदार बताया गया। उत्तर भारत को दक्षिण भारत का शोषण करने वाली साम्राज्यवादी शक्ति की संज्ञा दी गयी और कहा गया कि केन्द्रीय सरकार दक्षिण के लोगो की दुर्दशा और आर्थिक स्थिरता के प्रति उदासीन थी। इस प्रकार दक्षिण की आर्थिक स्वतत्रता का प्रश्न, उत्तर के राजनीतिक प्रभुत्व से मुक्ति अथवा द्रविड सस्कृति की आर्य सस्कृति के नियन्त्रण से पृथक्ता के साथ जोड़ा गया। इसके लिए हिन्दी विरोधी तथा पृथक् द्रविडनाड के लिए आन्दोलनों का आवाहन किया गया (कौशिक, 2000, पृ० 376)।

पिछले कई दशक से अशान्त उत्तर-पूर्व के राज्यों मे अब एक नई लहर पैदा हो रही है। यह नई राजनीतिक और सामाजिक लहर एक कबीले से दूसरे कबीले और एक जाति से

दूसरी जाति के अन्तर्विरोध के कारण व्यापक हिसा का रूप धारण करती जा रही है। यदि इस कबीलाई युद्ध को रोकने के लिए सरकार ने कोई कदम नही उठाया तो व्यापक नरसहार के साथ–साथ देश की एकता और अखण्डता को चुनौती देने वाली ताकते भी सिर उठाने लग जायेगी। पहले उनका सघर्ष हमेशा केन्द्रीय सरकार के साथ होता था लेकिन बदली हुई परिस्थितियो मे यह सघर्ष इसलिए क्षेत्रीयता की ओर मुड गया है कि अब हर जाति अथवा कबीला अपने लिये एक अलग होमलैण्ड की मॉग करता है। आज सम्पूर्ण पूर्वोत्तर भारत आहत और अशान्त है। इस सवेदनशील क्षेत्र की कई समस्याये हैं, यथा आर्थिक पिछडापन, व्यापक बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, प्रशासनिक अक्षमता और अलगाववादी तत्वो द्वारा लम्बे समय से उद्दीप्त किये जा रहे गहरे जातीय द्वेष व राष्ट्र विरोधी भावनाये। इनके फलस्वरूप मणिपुर, नागालैण्ड, मिजोरम, त्रिपुरा तथा असम सशस्त्र विद्रोहियो की हिंसा और पृथक्तावादी गतिविधियों से आक्रांत है (सिह, 1999, पृ० 369–370)।

7.4 शरणार्थी एवं गैर कानूनी घुसपैठ

देश के विभाजन के बाद भी करोडो की सख्या मे मुसलमान भारत मे बचे रहे और लाखो हिन्दू पाकिस्तानी भूमि मे अपना जीवन–यापन करते रहे। विभाजन के कारण साम्प्रदायिक हिसा का जितना बडे पैमाने पर विस्फोट हुआ, उसने इन अल्पसख्यको की आशाओ को धूल–धूसरित कर दिया। धर्मनिरपेक्ष भारत मे, विशेषकर नेहरू जी के जीवन काल मे अल्पसख्यको को सरकारी सरक्षण प्राप्त था और उनके अधिकारो के हनन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। परन्तु पाकिस्तान में ऐसा नहीं था, विशेषकर पूर्वी बंगाल में रहने वाले हिन्दू अल्पसंख्यको का जीवन क्रमश दूभर होता गया। सन् 1950 से 1953 ई० के बीच लहरो के रूप मे ऐसे शरणार्थियो का भारत मे प्रवेश हुआ और उनकी इस दशा से देश में साम्प्रदायिक तनाव का जन्म हुआ (पन्त एवं जैन, 1993, पृ० 430) एव देश का सीमावर्ती क्षेत्र विशेषकर बांग्लादेश के समीप का भाग प्रभावित रहा है (चित्र 7 4)।

बाग्लादेश के घुसपैठियो की समस्या वोट बैंक की राजनीति के ट्रैफिक जाम में फॅस गयी है। एक करोड बीस लाख से अधिक घुसपैठिये देश के विभिन्न भागो में आकर बस चुके हैं। बाग्लादेश के पडोसी भारतीय राज्यो मे तो कई दर्जन ऐसे जिले हैं जहॉ बाग्लादेशी
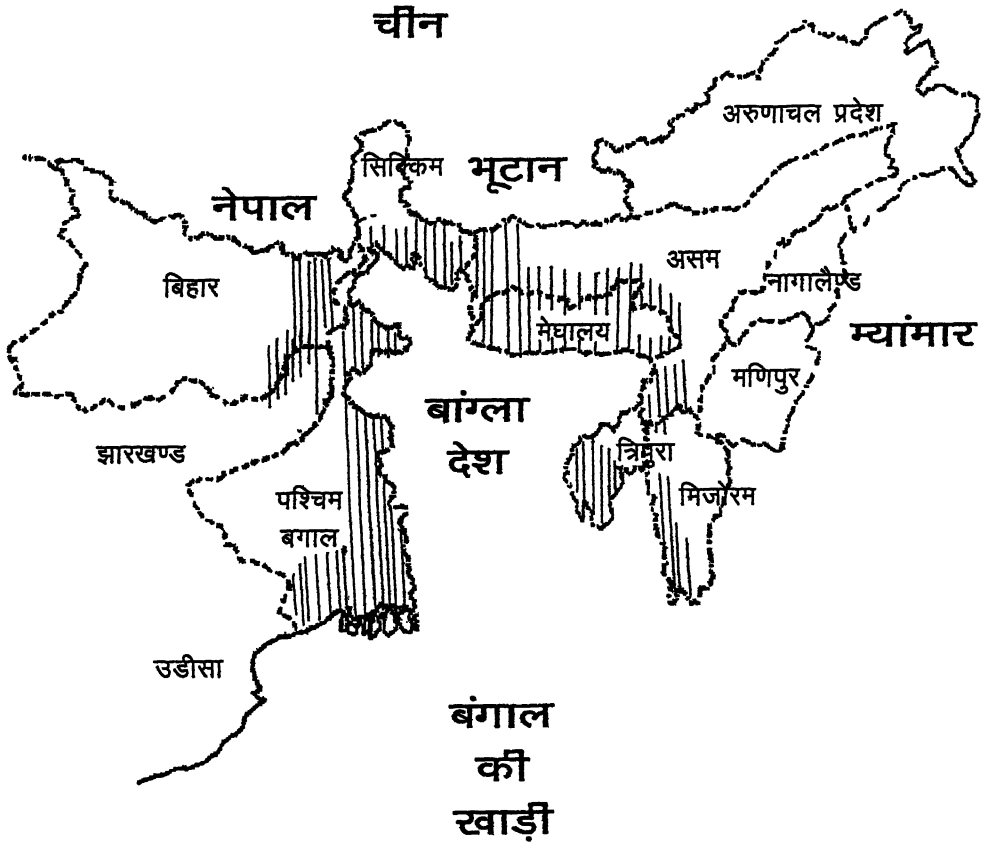
भारत
बांग्लादेशी घुसपैठियों
से प्रभावित क्षेत्र
N
चीन
अरुणाचल प्रदेश
सिक्किम
भूटान
नेपाल
बिहार
असम
नागालैण्ड
मेघालय
म्यांमार
मणिपुर
बांग्ला
देश
झारखण्ड
त्रिपुरा
पश्चिम
बंगाल
मिजोरम
उडीसा
बंगाल
की
खाड़ी
अन्तर्राष्ट्रीय सीमा
प्रान्तीय सीमा
प्रभावित क्षेत्र
100 0 100 200 300
किलोमीटर

चित्र 7.4

मुसलमानो का बहुमत हो गया है। विशेष रूप से पश्चिम बंगाल, असम, बिहार और पूर्वोत्तर भारत के कुछ राज्यो मे स्थिति ज्यादा भयानक हो गयी है। पश्चिम बंगाल के पाच जिले– दक्षिण चौबीस परगना, उत्तर चौबीस परगना, नादिया, मुर्शिदाबाद, पश्चिमी दीनाजपुर आबादी के हिसाब से बाग्लादेशी इलाके हो गये हैं। बिहार के पूर्णिया, कटिहार, किशनगज और अररिया जिलो की आधी से अधिक आबादी बाग्लादेशी शरणार्थियो की हो गयी है। असम के दस जिलो की आबादी के हिसाब से बाग्लादेश का विस्तार कहा जा सकता है। ये जिले हैं– धुबरी, बारपेटा, बोगाईगॉव, नलबारी, कोकराझार, लखीमपुर, दाराग, नौगाव और कामरूप। पाकिस्तान की गुप्तचर सस्था आई०एस०आई० पूर्वोत्तर के इस क्षेत्र मे एक तरफ आतकवादी सगठनो को मदद कर रही है दूसरी तरफ बडी सख्या मे बाग्लादेश की गरीब आबादी को भारत की खुशहाली का सपना दिखाकर घुसपैठ करा रही है जिससे असम को मुस्लिम बहुल बनाया जा सके और भारत का पुन विभाजन कराया जा सके। असम मे बडी सख्या मे मुस्लिम सगठन खडे हो गये हैं, असम का मुस्लिम मुक्ति मोर्चा, असम का सयुक्त मुस्लिम मुक्ति मोर्चा, मुस्लिम स्वयसेवी सेना, इस्लामी मुक्ति सेना। इनमें कई तो मुस्लिम कट्टरतावादी ताकतो से भी प्रेरित हैं। आई०एस०आई० के एजेट तरह-तरह के माफिया और दलाल जत्थे के जत्थे बाग्लादेशियो को भारत की सीमा मे प्रवेश करा देते हैं। प्रवेश कराने के लिए भारत की सीमा मे प्रवेश करा देते हैं। प्रवेश कराने के लिए भरत की सीमा सुरक्षा बलो को रिश्वत देते हैं। भारत-बाग्लादेश की सीमा की भौगोलिक रचना इस तरह की है कि घुसपैठ करना कठिन काम नहीं है।

योजनाबद्ध ढँग से आई०एस०आई० भारत पर जनसंख्या का हमला करा रही है, ताकि भारत मे विदेशी मुस्लिम आबादी बढे। पश्चिम बगाल मे मौजूदा रफ्तार से अगले पच्चीस वर्षों मे बाग्लादेशी मुसलमानो का बहुमत हो जायेगा। असम में यह स्थिति आने ही वाली है। इस समस्या के चार पहलू हैं। एक तो दीर्घकालिक इस्लामिक एजेंडा है। इसके अनुसार भारत में मुस्लिम आबादी बढाते हुए देश का विभाजन कराते जाना है। पहली सफलता अफगानिस्तान मे मिली थी। दूसरी सफलता पाकिस्तान के रूप में मिली। इसी योजना के तहत तीसरा मोर्चा कश्मीर में खोला गया है और अब बंगाल से लेकर असम तक

का पूर्वी भाग निशाने पर है यह इस्लामिक एजेडा है कि ज्यादा से ज्यादा देशो मे दारुल इस्लाम की स्थापना चरम मजहबी प्रेरणा है।

बाग्लादेशी मुसलमानो की घुसपैठ का एक मानवीय पहलू भी है। बाग्लादेश का क्षेत्रफल केवल 144000 वर्ग किमी० और आबादी 13 करोड से अधिक है अगले बीस वर्षों मे मौजूदा जन्मदर के हिसाब से यह 26 करोड हो जायेगी। सवाल खडा होता है कि वह कहॉ रहेगे और कैसे अपना जीवन चलायेगे? बाग्लादेश विश्व के कुछ सबसे गरीब देशो मे है और वहॉ गरीबी बढती जा रही है। इसलिए जो लोग अपनी जगह को छोडकर भारत मे आ रहे हैं, वह असल मे रोजी–रोटी की मजबूरी मे अपना वतन छोड रहे हैं। इनमे से एक प्रतिशत भी इस्लाम के राजनीति विस्तारवाद के इरादे से भारत मे घुसपैठ कर रहे हो, ऐसा नही है। हॉ, जो घुसपैठ करा रहे हैं उनकी मशा इस्लाम का राजनीतिक विस्तार है।

शरणार्थियो का तीसरा पहलू भारत की वोट बैंक की राजनीति से जुडा हुआ है। कोई तीन दशक पहले फखरूद्दीन अली अहमद ने अपने लोकसभा क्षेत्र मगलदोई को चुनावो की दृष्टि से सुरक्षित करने के लिए मुस्लिम बहुल बनाने की कोशिश की और बाग्लादेशी घुसपैठ को प्रोत्साहन दिया। इससे असम मे हिंसक आन्दोलन शुरू हो गया तथा इससे कई आतकवादी सगठनो ने जन्म लिया। चूँकि घुसपैठियो की समस्या भारत की वोट बैंक की राजनीति से जुड गयी है इसलिए बांग्लादेश घुसपैठियों के सवाल उठाना साम्प्रदायिकता समझी जाने लगी और मौन मुखर समर्थन देना धर्मनिरपेक्ष बन गया। कुछ वर्ष पहले महाराष्ट्र सरकार ने मुम्बई मे विधि द्वारा मान्य प्रक्रिया अपनाते हुए कुछ सौ बाग्लादेशियो को पहचाना और उन्हे बाग्लादेश मे वापस भेजने की कानूनी प्रक्रिया पूरी की। पश्चिम बगाल की कम्युनिस्ट सरकार ने महाराष्ट्र सरकार के इस निर्णय को साम्प्रदायिक बताया।

ससार मे भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जो अपने यहॉ अवैध घुसपैठ और घुसपैठियो को न केवल पनाह देता है, अपितु उन्हे कानूनी सहायता एव सरकारी सरक्षण भी प्रदान करता है। अवैध बाग्लादेशी घुसपैठ की समस्या केवल असम और पश्चिमी बगाल तक ही सीमित नही है। अपितु ये सम्पूर्ण देश में फैले हुए हैं। पश्चिमी बंगाल मे प्रत्येक पन्द्रहवॉ

व्यक्ति बाग्लादेशी है और दो लाख से अधिक व्यक्ति प्रत्येक वर्ष भारत मे अवैध रूप से घुसपैठ करके यहॉ स्थायी रूप से बस जाते हैं। यदि इस घुसपैठ पर रोक न लगाई गई तो बगाल के एक और विभाजन की सम्भावना से इनकार नही किया जा सकता।

7.5 छद्म राजनीति

राजनीति का उद्देश्य लोगो के जीवन को उच्च बनाना, गरीबी एव शोषण को दूर करना तथा एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना है। इन्हीं उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए गाधी जी ने राजनीति को धर्म पर आधारित करना चाहा था। महात्मा गाधी जी राजनीति मे 'राज' शब्द अर्थात् शक्ति या सत्ता की अपेक्षा 'नीति' शब्द अर्थात धर्म को प्रमुख मानते थे। आज भारतीय राजनीति अपने उद्देश्यो से न केवल हट गई है बल्कि उसने सत्ता की प्राप्ति हेतु अनुचित साधन भी अपनाना शुरू कर दिया है। आज भारतीय राजनीति मे नैतिकता के स्थान पर सत्ता को प्राथमिकता मिल रही है। राजनीति मे दल–बदल, भ्रष्टाचार अपराधीकरण आदि ऐसे कारक हावी हो गये हैं जो राजनीति को दूषित कर रहे हैं। आज भारतीय राजनीति मे धर्म, भाषा, जाति, क्षेत्रवाद आदि का राजनीतिक स्वार्थों हेतु खुलकर प्रयोग किया जा रहा है। जिससे विघटनकारी तत्वो को बढावा मिल रहा है। इस प्रकार छद्म राजनीति से देश की एकता के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। राजनीतिक पार्टियॉ कई क्षेत्रों में प्रादेशिकवाद एव विघटनकारी आन्दोलनो को समर्थन दे रही हैं। क्षेत्रीय पार्टियो के विकास ने तो इस क्षेत्रवाद को और भी प्रोत्साहन दिया है। इन पार्टियों के समक्ष क्षेत्रीय हितो के अतिरिक्त राष्ट्रीय हितो का कोई महत्व नही है। कुछेक को छोडकर अधिकाश राजनीतिक दल व्यक्ति एवं वशवाद से बुरी तरह प्रभावित हैं। इन दलो की कोई निश्चित विचारधाराये नहीं हैं एव इनके अनेक निर्णय व्यक्तिगत स्वार्थों, ईर्ष्या द्वेष आदि से प्रभावित होते हैं। राजनीतिज्ञ अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार के छल, प्रपचो, हिंसा आदि का सहारा ले रहे हैं। इन सभी कार्यों से लोगो की राजनेताओ, राजनीतिक दलो एव प्रजातंत्र पर से आस्था एवं विश्वास कम होता जा रहा है। युवा वर्ग आक्रोशित हो रहा है जो जगह–जगह प्रदर्शनो, हिसा आदि में दिखाई पड रहा है।

7.6 कृषक आन्दोलन

कृषक आन्दोलन वस्तुत खेतिहर मजदूरो अथवा किसानो से सम्बन्धित वे आन्दोलन हैं जो उनके शोषण, पिछडेपन तथा आर्थिक विपन्नता के प्रतिफल हैं। किसान एव उनसे सम्बन्धित अन्य समूहो का भी सहभाग इन आन्दोलनो का एक आवश्यक अग हो सकता है। कृषक आन्दोलन, ऐसे आन्दोलनो की ओर लक्ष्य करते हैं जिनका मूलाधार कृषि के व्यवसाय से सम्बन्धित है, जो मुख्य रूप से अपने सत्तापरक स्वामियो के दबाव एव दासता से मुक्ति हेतु किये जाते हैं। कोई भी आन्दोलन कृषक आन्दोलन बन सकता है, बशर्ते उसका मूल उद्देश्य कृषको के अधिकार की लडाई हो, चाहे वह कृषकों द्वारा गठित हो अथवा अन्य समूहो द्वारा। हिसा अथवा हिसा का भय दिखाकर, अन्यथा कृषि कार्यों से निरपेक्ष भाव दिखाकर जब खेतिहर मजदूर, भू–स्वामियो अथवा सम्बन्धित सरकार को झुकाने का प्रयास करता है तो कृषि आन्दोलन जन्म लेते हैं।

वास्तव में कृषक आन्दोलन मूलत तब घटित होते हैं जब किसानो तथा कृषि कार्यों के मध्य कोई असामंजस्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। औद्योगीकरण की बृद्धि के कारण जब खेत–खलिहानो के व्यवसाय तथा खेतिहर कुटीर उद्योगों के बल पर जीवन–यापन करने वालो की जीविका पर प्रहार होता है तो आन्दोलनों के माध्यम से सघर्ष की स्थिति का उत्पन्न होना अवश्यम्भावी हो जाता है। वे विद्रोही किसान या श्रमिक, जो दी जा रही श्रम–मूल्य की नीति का विरोध करते हैं और प्रतिफल मे बेरोजगार हो जाते हैं, उनमें भी विरोध की आग भडकती है। धार्मिक निषेधों अथवा मान्यताओ के कारण जिन्हे भूमिहीन से भूस्वामी मे परिवर्तित होने का अधिकार नहीं मिल पाता वे कभी न कभी विद्रोह पर आमादा हो जाते हैं। इसी प्रकार कम मजदूरी, अधिक लगान, महाजनों द्वारा शोषण, भू–स्वामियो द्वारा बन्धक बनाये जाने के विरोध मे भी कृषक आन्दोलन प्रतिफलित होते हैं। पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिम उत्तर प्रदेश के कृषि विकसित क्षेत्रों मे पानी, बिजली, उवर्रक, कीटनाशक, उन्नत बीज आदि कृषि आदानों को नि.शुल्क अथवा कम दाम पर उपलब्ध कराने एवं कृषि उपजो के मूल्य को बढाने हेतु किये जाने वाले आन्दोलन भी कृषि आन्दोलन के अंग हैं। ये समस्त कृषक आन्दोलन कृषि तथा उसके विभिन्न उपांगो पर केन्द्रित होते हैं।

भारतीय कृषक आन्दोलन मुख्यत दो विचारधाराओ मे विभाजित दिखायी पडते हैं। भूदान, सर्वोदय तथा अन्य अहिसक आन्दोलन मूलत गाधीवादी विचारधारा से प्रेरित रहे हैं। इसके विपरीत तेभागा, तेलगाना, नक्सलवादी तथा अन्य भूमि हथियाओ आन्दोलन कम्युनिस्ट राजनीतिक दलो ने उन्हे भरपूर समर्थन दिया है। इसी प्रकार उत्तरी भारत का प्रसिद्ध निजाई बोल आन्दोलन (1946) काग्रेसी विचारधारा से प्रभावित रहा, जबकि सन् 1970 ई० का भूमि हथियाओ आन्दोलन कम्युनिस्ट विचारधारा पर आधारित था।

ब्रिटिश उपनिवेशवादी नीतियो ने भारत के सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रो को विशेष तौर पर प्रभावित किया था। इनमे से भू–राजस्व नीति ने भारतीय कृषको के जीवन पर अत्यन्त घातक प्रभाव डाला। जमींदारी प्रथा, बेदखली, राजस्व की ऊची दरे तथा किसानों के तमाम तरीके से शोषणो ने किसानो को विद्रोह करने के लिए मजबूर किया। किसान विद्रोहो का स्वरूप व्यापक नही था बल्कि ये केवल अपने ही इलाको या कुछ मामलो मे थोडा सा विस्तृत रहे थे। इनके अपने ही हित सघर्ष के मुद्दे होते थे। कुछ विद्रोहो मे तो राष्ट्र प्रेम तथा राष्ट्रीय भावना की झलक मिलती थी जैसे, सन्यासी विद्रोह। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ये विद्रोह स्वाधीनता सग्राम के अंग नहीं थे।

अंग्रेजो के उपनिवेशवादी शोषण का कहर भारतीय किसानो पर ही सबसे ज्यादा बरपा था। औपनिवेशिक आर्थिक नीतियॉ, भू–राजस्व की नई प्रणाली और उपनिवेशवादी प्रशासनिक व न्यायिक व्यवस्था ने कृषकों की कमर तोड दी। दस्तकारी उद्योगो के तबाह हो जाने से इन उद्योगो मे लगे लोग भी कृषि की तरफ वापस लौटने पर मजबूर हो गये, जिससे कृषि योग्य भूमि पर दबाव काफी बढ गया और इस प्रकार कृषि का पूरा ढॉचा ही बदलने लगा। बडी जमीदारी वाले इलाको मे किसानो पर अत्याचार बढने लगे। जमीदार उनसे मनमाने ढॅग से अवैध लगान वसूलते और बेगार कराते। रैयतवारी इलाको में लगान की दरें अधिक बढाकर ठीक यही काम सरकार ने किया। परिणामस्वरूप किसान धीरे–धीरे महाजनो के चॅगुल मे फॅसते गये और इस तरह उनकी जमीन फसल, मकान और पशु उनके हाथ से निकलकर जमीदारों, व्यापारियो, महाजनों और धनी किसानो के हाथ में पहुॅच गये। जमीन के मालिक छोटे किसानो की हैसियत से महज काश्तकारों, बटाईदारो और खेतिहर मजदूरों की ही रह गयी (चन्द्र, 1996, पृ० 19)।

देशी और विदेशी शोषण के इस चक्र को तोडने की किसानो ने कई नाकाम कोशिशे की। स्थानीय स्तर पर जब उनके सामूहिक सघर्ष विफल होने लगे और उन्हे लगा कि वे औपनिवेशिक राज्य का मुकाबला नहीं कर पायेगे और शोषण के थमने के कोई आसार नहीं है, तो उनके विरोध ने मजबूरन अपराध का रास्ता पकडा। जमीन से वचित किये गये बहुत से कृषक भुखमरी से बचने के लिए मजबूरन डकैत और राहजन हो गये (चन्द्र, 1996, पृ० 18)।

किसान आन्दोलन के प्रारम्भिक स्तर मे जहॉ एक ओर जमींदारो के अत्याचार बढ गये थे, वही दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार द्वारा भूमिकर अत्यधिक बढा दिया गया। परिणामत किसानो मे असतोष उत्पन्न हो गया। 19 वी शताब्दी के अन्तिम वर्षों मे न केवल कई अकाल पडे बल्कि भयकर आर्थिक मन्दी भी आयी। इस अवधि मे ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सन् 1885 ई० में सन्थाल विद्रोह, साहूकारों के विरुद्ध सन् 1875 ई० मे दक्षिण के दगे, सन् 1870–85 ई० मे बगाल मे आन्दोलन, अवध विद्रोह, पंजाब में कृषक आन्दोलन, दक्षिण भारत में मोपलाह एव तेलंगाना कृषक आन्दोलन, सन् 1875–76 ई० में पूना–अहमदनगर का कृषक आन्दोलन, सन् 1913–14 ई० में राजस्थान का बिजोलिया कृषक आन्दोलन, उत्तर प्रदेश का एका कृषक आन्दोलन एवं निजाई–बोल आन्दोलन, सन् 1917 ई० मे बिहार का चम्पारण कृषक आन्दोलन, सन् 1919–21 ई० मे महाराष्ट्र का सतारा कृषक आन्दोलन, गुजरात में सन् 1918 ई० का खेडा तथा सन् 1920 ई० का बारदोली कृषक आन्दोलन प्रमुख हैं। प्रथम चरण में काग्रेस ने ग्रामीण क्षेत्रों में कृषक समितियॉ बनायीं तथा कृषको और कृषि सम्बन्धी समस्याओ की ओर ध्यान दिया। काग्रेस द्वारा चलाये गये ये आन्दोलन भूमिकर की बढी हुई दरो को कम कराने से सम्बन्धित थे और किसी भी रूप मे जमीदारो के विरुद्ध नहीं थे। अनेक स्थानो पर गाधी जी ने फसल के नष्ट हो जाने की स्थिति मे भूमिकर वसूल किये जाने के विरुद्ध आन्दोलन किये। इसी समय गाधी जी द्वारा असहयोग आन्दोलन चलाया गया जिसमे प्रथम बार कृषको ने यह सोचकर भाग लिया कि इससे भूमिकर कम हो सकेगा और हमारी आर्थिक स्थिति सुधर सकेगी।

चूँकि काग्रेस ने जमींदारों तथा भू–स्वामियों के हितो की रक्षा की नीति अपना रखी थी, इसलिए द्वितीय स्तर पर ग्रामीण भारत मे किसानों के स्वयं के संगठन निर्मित हुए।

किसानो ने यह महसूस किया कि कृषको की रक्षा के लिए उनके स्वय के सगठन होने चाहिए और उन्हे ही नेतृत्व करना चाहिए। परिणामस्वरूप देश के विभिन्न भागो मे कृषक सगठन बन गये। सन् 1923 ई० मे सर्वप्रथम किसान सगठनो तथा कृषक श्रम सघो का निर्माण हुआ। सन् 1926–27 ई० मे पजाब, बगाल तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भागो मे किसान सभाये बनायी गयी। सन् 1928 से 1931 ई० तक गुजरात मे बारदोली जिले मे कृषको के दो सघर्ष हुए। सन् 1935 ई० मे प्रथम किसान काग्रेस की लखनऊ मे स्थापना हुई जिसके प्रयत्नो से अखिल भारतवर्षीय किसान सभा का गठन किया गया। यह किसान सभा कृषित भारत की आकांक्षाओ तथा आवश्कताओ का केन्द्र बन गयी। इस दौरान देश के विभिन्न भागो मे किसान सभा द्वारा आन्दोलन चलाये गये। आन्ध्र प्रदेश मे जमीदारों के जुर्म के खिलाफ आन्दोलन, स्वामी सहजानन्द ने बिहार मे जमींदारी उन्मूलन से सम्बन्धित आन्दोलन चलाये, सन् 1927 ई० में दक्षिण भारत में दमनकारी जंगल कानूनो के विरुद्ध आन्दोलन तथा इसी प्रकार उत्तर प्रदेश तथा देश के अन्य भागो में जमीदारो के अत्याचारो के खिलाफ आन्दोलन चलाये गये। बिहार के किसानो ने कांग्रेस मत्रिमण्डल के विश्वासघात के विरुद्ध बडे पैमाने पर आन्दोलन चलाया, उत्तर प्रदेश मे भूमि बन्दोबस्त विरोधी आन्दोलन हुआ, कर्जों से मुक्ति दिलाने हेतु बगाल में आन्दोलन हुआ, कोया विद्रोह तथा मयूरभंज मे भील आन्दोलन कृषक आन्दोलनों के उदाहरण हैं। भारतीय कृषक आन्दोलनों में अन्य प्रमुख आन्दोलन हैं– मैसूर व ट्रावनकोर के किसान आन्दोलन, राजा–महाराजाओ एव स्थानीय ठाकुरो के विरुद्ध उडीसा, जयपुर, उदयपुर तथा ग्वालियर में हुए आन्दोलन। फिर भी किसान सभा कृषको के लिए कोई प्रभावशाली आन्दोलन नहीं चला सकी। सन् 1942 ई० में कांग्रेस के भारत छोडो आन्दोलन मे किसान सम्मिलित हो गये। उत्तर प्रदेश, बिहार, बगाल, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु मे किसानों ने समानान्तर सरकारों की स्थापना की। बगाल में मिदनापुर मे किसानो को महत्वपूर्ण सफलता मिली जहॉ अग्रेज शासक अपना नियंत्रण पुन- प्राप्त करने में असफल रहे।

स्वतन्त्रता के पश्चात् से किसानों के विविध प्रकार के आन्दोलन सम्पूर्ण देश में हुए हैं। इनमे तेलगाना का प्रसिद्ध किसान आन्दोलन, पेप्सू काश्तकार आन्दोलन जो आजादी के पहले से चला आ रहा था, साठ के दशक के अन्त का नक्सलपंथी अर्थात् माओवादी

आन्दोलन, अस्सी के दशक मे महाराष्ट्र का 'नये' किसान आन्दोलन, मध्य प्रदेश और बिहार मे सन् 1957–58 ई० मे खारवाड आदिवासी आन्दोलन, महाराष्ट्र के धुलिया मे सन् 1967–75 ई० का भीलो का आन्दोलन, सन् 1978 ई० मे मार्क्सवादी जेसुइट प्रदीप प्रभु के नेतृत्व मे काश्टकाड सगठन द्वारा चलाया गया वर्ली सघर्ष आदि। पजाब और आन्ध्र प्रदेश मे किसानो ने बेहतरी लेवी के खिलाफ आन्दोलन चलाया। यह लेवी सिचाई स्कीमो, फसलो की बेहतर कीमतो जैसे कार्यों पर अधिक खर्चे को पूरा करने के लिए लगायी गयी थी। सी०पी०आई० ने सन् 1968 ई० मे मेगा में प्रथम राष्ट्रीय स्तर का खेत मजदूर सगठन, भारतीय खेत मजदूर यूनियन स्थापित किया। तजौर, केरल एव देश के अन्य भागो मे भी कृषक आन्दोलन हुए। ये आन्दोलन स्वतन्त्रता के बाद कृषि एव सामाजिक परिवर्तनो को प्रतिबिबित करते हैं। आजादी की आशा और कृषि सम्बन्धो मे परिवर्तनो की अपेक्षा रखते हुए सन् 1945–47 ई० मे सम्पूर्ण देश मे कृषि संघर्षों में तेजी आ गई। इनमे से कई आन्दोलन जैसे बगाल मे तेभागा और पजाब मे नहर बस्तियो के काश्तकारो के आन्दोलन, साम्प्रदायिकता के उभार के कारण बिखर गये। हैदराबाद राज्य का तेलगाना क्षेत्र तथा पेप्सू का पटियाला क्षेत्र के कृषक आन्दोलन आजादी के बाद भी चलते रहे। इन दोनो आन्दोलनों का नेतृत्व कम्युनिस्ट किया करते थे (चन्द्र, 2002, पृ० 554–555)। उपर्युक्त कृषक आन्दोलनो के अतिरिक्त महाराष्ट्र में शेतकारी आन्दोलन तथा अल्मोडा जिले के एक गॉव खीराकोट में भी कृषक आन्दोलन चले जिनका उद्देश्य किसानों के हितो की रक्षा करना था। सक्षेप में कहा जा सकता है कि भारत मे कृषक आन्दोलन का प्रारम्भ सामन्ती व्यवस्था एव किसानो के शोषण और दमन के विरोध स्वरूप उत्पन्न हुआ जिनका उद्देश्य सामाजिक व आर्थिक न्याय प्राप्त करना था।

स्वतत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने कृषको की दशा सुधारने के काफी प्रयास किये। फिर भी उन प्रयासो से उनकी स्थिति मे कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुए। आज भी देश मे सबसे दयनीय दशा कृषि क्षेत्र में विशेषकर भूमिहीन कृषि मजदूरों एवं छोटे किसानों मे देखी जाती है। अकाल एवं सूखे से सबसे अधिक ये ही प्रभावित होते हैं। कुपोषण से सबसे अधिक मौते भी इसी वर्ग मे देखी जाती हैं। आन्ध्र प्रदेश आदि देश के कई भागों में मौसम की अस्थिरता एवं फसलों के नष्ट होने के कारण कृषि ऋण के चुकाने में असमर्थता के

कारण प्रतिवर्ष किसान आत्महत्या तक के लिए विवश हो रहे हैं। कृषक आन्दोलनो की सफलता के कम होने का प्रमुख कारण उनका मिल मजदूरो आदि की तरह सगठित न होना एव राजनीतिक प्रोत्साहन का कम पाया जाना है। हाल मे पश्चिम उत्तर प्रदेश के कुछ अचलो मे श्री महेन्द्र सिह टिकैत ने कृषि पचायत के माध्यम से किसानों को सगठित करने एव विभिन्न कृषि समस्याओ हेतु सुसगठित होकर सरकार एव सबधित सस्थाओ, अधिकारियो का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया है। पजाब एव हरियाणा के किसान भी सुसगठित होने का प्रयास कर रहे हैं। फिर भी अखिल भारतीय स्तर पर किसानो के सगठन के बनने मे अभी काफी समय लगने की सभावना है। वर्तमान सन्दर्भ मे आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति अपने स्वय के स्वार्थों से ऊपर उठकर कृषको के लिए सही दृष्टिकोण अपनाते हुए काम करे। भारत सरकार द्वारा बीस सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत किसानो के लिए न्यूनतम कृषि मजदूरी निश्चित करने अथवा फसल में जमींदार के अधिकतम हिस्से की सीमा निर्धारित करके विधान सभाओं तथा ससद ने कृषको के प्रति अपनी उदारता का परिचय दिया है किन्तु ये सभी कदम अधूरे एव अपर्याप्त हैं। हाल मे कृषि को उद्योगों का दर्जा देने की मॉग उठ रही है। कृषि क्षेत्र में भूमि सुधारो की कमी एव उनके लागू करने हेतु पर्याप्त इच्छा शक्ति का अभाव ही कृषि दुरवस्था का प्रमुख कारण है। जीवन की गुणवत्ता में सुधार हेतु कृषि क्षेत्र से अतिरिक्त श्रम को द्वितीयक एवं तृतीयक व्यवसायो की ओर स्थानान्तरित करना समीचीन होगा। कृषि में अनुषगी व्यवसायों को बढावा देकर भी कुछ सफलता अर्जित की जा सकती है।

7.7 मजदूर आन्दोलन

भारत मे औपनिवेशिक शासन की स्थापना से सर्वप्रथम यहॉ के परम्परागत हस्तशिल्प उद्योगो को नुकसान हुआ और कृषि का स्वरूप भी परिवर्तित हो गया जिसके कारण यहॉ स्वतत्र मजदूर वर्ग का उदय हुआ। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के प्रारम्भ में भारत में आधुनिक उद्योग–धन्धो की शुरुआत हुई। सन् 1853 ई० के पश्चात् भारतीय सचार साधनों मे मशीनो का प्रयोग होने लगा। रेल लाइनो के बिछाने तथा इजन के लिये कोयला निकालने मे हजारो श्रमिको को रोजगार मिला। यह भारतीय श्रमिक वर्ग का प्रारम्भिक काल था। इग्लैण्ड तथा शेष ससार मे औद्योगीकरण के प्रारम्भिक चरण में मजदूर वर्ग को जिन कठिनाइयों का

सामना करना पडा, भारतीय मजदूर वर्ग ने भी भारत मे उसी प्रकार के शोषण एव कठिनाइयो का सामना किया। इन कठिनाइयों मे कम मजदूरी, कार्य के लम्बे घण्टे, कारखानो मे बुनियादी सुविधाओ का अभाव इत्यादि प्रमुख थी। भारत मे औपनिवेशिक शासन की उपस्थिति ने भारतीय मजदूर आन्दोलन को एक नयी दिशा प्रदान की। भारतीय मजदूर वर्ग को दो परस्पर विरोधी तत्वो उपनिवेशवादी राजनीतिक शासन तथा विदेशी एव भारतीय पूजीपतियो के शोषण का सामना करना पडा। सन् 1854 ई० मे कलकत्ता मे पहली जूट मिल और सन् 1854 मे ही पहली कपडा मिल बम्बई मे बनी, जिसमे ज्यादातर मजदूर जमातो मे एकजुट होते थे, जो जाति पर आधारित होती थी। पर शीघ्र ही श्रमिको ने महसूस किया कि जाति आधारित सगठन उनकी एकता के लिए घातक है, क्योकि मिल मालिक एक जातीय सगठन को दूसरे जातीय सगठन के खिलाफ इस्तेमाल करते हैं। इसी विकसित समझ के चलते 24 अप्रैल, 1890 ई० को बम्बई के मिल मजदूरो के एक सगठन "बाम्बे मिलहैण्ड्स एसोसिएशन" की स्थापना हुई जिसके अध्यक्ष एन०एच० लोखाडे और सचिव डी०सी० अथाइदे थे। इस संगठन ने नाथ दीनबन्धु नाम से अपना पर्चा भी निकाला। इसी तरह कलकत्ता और अन्य औद्योगिक नगरों में भी वर्ग आधारित श्रमिक संगठन अस्तित्व में आने लगे। धीरे-धीरे इस श्रमिक वर्ग में भी अपने हितो के प्रति जागरूकता आयी और हडतालो तथा ट्रेड यूनियनो के माध्यम से इन्होने समय-समय पर अपना आक्रोश व्यक्त किया। यद्यपि प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व तक स्वाधीनता संग्राम में श्रमिकों मे पूर्ण चेतना का अभाव था, लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के बाद से उनमे राजनीतिक जागरुकता का उदय हो चुका था। सन् 1917 ई० में हुई रूसी क्रान्ति जो मजदूरो के नाम पर सत्ता मे आयी थी, ने भारत में ट्रेड यूनियन आन्दोलन पर अपना प्रभाव डाला। भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग का एक तबका इस विचारधारा की ओर आकर्षित हुआ और उसने मजदूर सगठनों के निर्माण मे हाथ बँटाना आरम्भ किया। सन् 1918 ई० के अन्त में मुम्बई में कपडा मिल मजदूरों की हडताल पहली बडी हडतालो में गिनी जाती है, जिसका नेतृत्व बुद्धिजीवी वर्ग कर रहा था। यह हडताल सन् 1919 ई० के आरम्भ तक एक व्यापक श्रमिक सघर्ष में बदल गयी और शहर के 1,25,000 श्रमिको ने इसमें हिस्सेदारी की। सन् 1920 ई० तक यह हडताल अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। सन् 1920 ई० में 200 हडताले हुई जिनमें 15 लाख श्रमिको ने भाग लिया। इन हडताल सघर्षों के साथ-साथ स्थानीय या राज्य स्तर पर मजदूर सगठन की स्थापना की प्रक्रिया चलती रही।

बी०पी० वाडिया ने भारत में आधुनिक श्रमिक सघ, 'मद्रास श्रमिक सघ' की स्थापना की, इन्ही के प्रयत्नो से सन् 1926 ई० मे श्रमिक सघ अधिनियम पारित किया गया। सन् 1920 ई० मे स्थापित अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस मे तत्कालीन 64 श्रमिक सघ शामिल हो गये। एन०एम० जोशी, लाला लाजपत राय एव जोसेफ बैपटिस्ट के प्रयत्नो से ही सन् 1920 ई० मे अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस की स्थापना की गयी। लाला लालपत राय इसके पहले अध्यक्ष बने। सन् 1920 ई० के बाद ट्रेड यूनियन काग्रेस पर वामपथियो का प्रभाव बढने लगा, सन् 1926–27 मे यह सगठन दो गुटो मे बॅट गया था जिनमे पहला सुधारवादी तथा दूसरा क्रातिकारी गुट था। इसे क्रमश· 'जेनेवा एमस्टर्डम गुट' एव 'मास्को गुट' भी कहते थे। सन् 1929 ई० में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन का विभाजन दो भागो मे हो गया। एम०एन० जोशी के नेतृत्व मे नरमपथी लोगो ने ट्रेड यूनियन से अलग होकर 'भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन' की स्थापना की। भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस मे विभाजन का मुख्य कारण साम्यवादियो का इस पर बढता हुआ प्रभाव था। सन् 1929 ई० मे ही साम्यवादियो ने ट्रेड यूनियन काग्रेस से अलग होकर 'लाल ट्रेड यूनियन काग्रेस' की स्थापना की। सन् 1938 ई० मे अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस, लाल ट्रेड यूनियन काग्रेस तथा राष्ट्रीय फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन में पुन· एकता स्थापित हो गयी। एक होने के बाद अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस ने भारत में समाजवादी राज्य की स्थापना, उद्योगो के राष्ट्रीयकरण एव प्रेस तथा विचारो को व्यक्त करने की स्वतत्रता का समर्थन किया। सन् 1938 ई० मे सुभाष चन्द्र बोस के सहयोग से हिन्द मजदूर सेवक सघ की स्थापना हुई। तदनुसार बगाल मे पहली मजदूर किसान पार्टी की स्थापना सन् 1925 ई० मे हुई। सन् 1928 ई० में कलकत्ता मे अखिल भारतीय मजदूर किसान पार्टी की स्थापना हुई। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् श्रमिक आन्दोलन मे काफी तेजी आयी क्योकि रूस के विजयी होने के बाद साम्यवादियो का प्रभुत्व बढा, जिसका प्रभाव भारतीय श्रमिक आन्दोलन पर पडा। सन् 1940 ई० मे साम्यवादी अतिवादी नेता एम०एन० राय ने अपने को अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस से अलग कर 'इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर' की स्थापना की, इस दल को सरकार का समर्थक दल माना जाता था। राष्ट्रवादी नेता बल्लभभाई पटेल ने मई, 1947 ई० मे भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना की। समाजवादियो के प्रयास से सन् 1948 ई० में 'हिन्द मजदूर सभा' की स्थापना हुई। इस संघ की स्थापना का उद्देश्य भारत

मे लोकतान्त्रिक समाजवादी समाज को स्थापित करना, मजदूरो के हित, अधिकार एव सुविधा की लडाई लडना, शैक्षिक स्तर को सुधारने के लिए संस्थायें गठित करना आदि। जनसघ ने भारतीय मजदूर सघ बनाया।

आजादी के बाद मजदूर सगठनो मे पहली वाली एकता नही रही। विभिन्न मामलों पर एक ही राय होने के बावजूद अपनी राजनीतिक सम्बद्धताओ के चलते वे एक न हो सके। परन्तु अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस देश की सबसे बडी ट्रेड यूनियन बनी रही और देश की सयुक्त साम्यवादी पार्टी उसे नियन्त्रित करती रही। बाद मे जब सन् 1964 ई० में साम्यवादी दल मे विभाजन हुआ और मार्क्सवादी पार्टी का गठन हुआ तो उसने अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस (एटक) को तोडकर अपना अलग सगठन सेन्टर ऑफ इण्डियन ट्रेड यूनियन (सीटू) बनाया। इस तरह जिस गौरवशाली विरासत की वाहक अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस थी, वह अलग–अलग सगठनो मे बॅट गयी। भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना और प्रसार के साथ–साथ मजदूर सगठनो मे इस बात की होड लग गयी थी कि कौन कितने सदस्य इन सगठनो मे बना सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र के मजदूर मुख्यत अच्छे वेतन वाले श्वेत कालर कर्मचारी थे। उसी बैंकों में भी हर ट्रेड यूनियन घुसपैठ करने लगी। अब ट्रेड यूनियन की शक्ति का मापदण्ड यह हो गया कि सार्वजनिक क्षेत्र, रेलवे और बैंक मे कर्मचारियो पर किस मजदूर सगठन का कितना नियन्त्रण है। इसने ट्रेड यूनियनो और मजदूर आन्दोलनों को दो प्रकार से प्रभावित किया। एक तो ट्रेड यूनियन बनाना एक व्यवसाय जैसा हो गया। जो ट्रेड यूनियन जितना वेतन बढवा सके, मॅहगाई भत्ता दिलवा सके, वह यूनियन अब अधिक अच्छी मानी जाने लगी अर्थात् ट्रेड यूनियन आन्दोलन पर अर्थवाद हावी हो गया और मजदूरो की राजनीतिक शिक्षा नदारद हो गयी। दूसरे, ट्रेड यूनियनो का जुझारू चरित्र बचा न रह सका। मजदूर सगठनो का काम सौदेबाजी कराना ज्यादा हो गया। इसने स्वतत्र ट्रेड यूनियनों और स्वतंत्र ट्रेड यूनियन नेताओ को जन्म दिया, जिनकी कोई राजनीतिक सम्बद्धता नहीं थी और जो विशुद्ध मजदूर नेता थे। मुम्बई में दत्ता सामन्त का स्वतत्र ट्रेड यूनियन नेता के रूप में उभार इसी शून्य को भरने की प्रक्रिया है।

अभी भी भारतीय मजदूरो की विशाल संख्या असगठित क्षेत्र मे कार्यरत हैं, जहाँ हमारी ट्रेड यूनियनो की पहुॅच नही बन पायी है। उदाहरणार्थ, निर्माण उद्योग, छोटे कारखाने,

लघु उद्यम आदि मे ट्रेड यूनियने नहीं के बराबर हैं। इस क्षेत्र मे बराबर शोषण जारी है और बडी सख्या मे बाल मजदूर भी कार्य करते हैं। इसे विडम्बना ही कहा जायेगा कि कुछ स्वयसेवी सस्थाओ को छोडकर इस क्षेत्र की ओर किसी राजनीतिक दल ने और किसी राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन ने कभी समुचित ध्यान नही दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

आहूजा, राम, 2002 **सामाजिक समस्यायें**, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एव दिल्ली।

चन्द्र, विपिन, 2002 **आजादी के बाद का भारत**, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

कौशिक, रेखा, 2002 **भारत मे सरकार और राजनीति**, पीयूष पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

पन्त, पुष्पेश एव जैन, श्रीपाल, 1993 **अन्तर्राष्ट्रयी सम्बन्ध**, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।

सिह, लल्लन जी, 1997 **राष्ट्रीय रक्षा और सुरक्षा**, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

श्रीवास्तव, जे०एम०, 2002 **भारत की सुरक्षा**, चन्द्र प्रकाश एण्ड ब्रदर्स, हापुड

श्रीवास्तव, ओमप्रिया, 1996 : **भारतीय सविधान, शासन और राजनीति**, सेन्ट्रल पब्लिशिग हाउस, वाराणसी।

उपेन्द्र, 2001 : **समाज कार्य**, भारत प्रकाशन, लखनऊ।

अध्याय– 8

परामर्श एवं समाधान

उपनिवेश– पूर्व भारत ने समान अस्तित्व और समान चेतना के कुछ तत्व पहले ही अर्जित कर लिये थे। व्यापक सास्कृतिक भिन्नता के बावजूद, इसकी सभ्यता ने अपने विकास की लम्बी दौड मे एक सम्मिलित सास्कृतिक विरासत के कुछ चिह्व पुष्पित किये थे। उसने लोगो को एक साथ पिरोया था, उन्हे एक होने का अहसास दिया था, यहॉ तक कि विभिन्नताओ और मतभेदो को बर्दाश्त करने की प्रवृत्ति को जन्म दिया था। रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार, 'भारत की एकता भावनाओ की एकता हैं'। राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक एकता के तत्वो को विकसित करने मे मुगल शासको की खास तौर से प्रमुख भूमिका रही। शासको की राजनीति और क्षेत्र–विजय की आकाक्षा अक्सर प्रादेशिक सीमाओं से परे होती थी और उनमे भी ज्यादा महत्वाकाक्षी शासक पूरे उपमहाद्वीप मे राज्य विस्तार करने की कोशिश करते थे। इसके अलावा यातायात और सचार के पिछडे साधनों के बावजूद उत्तर मध्यकाल मे बडी मात्रा में अखिल भारतीय व्यापार, उत्पादन का विशेषीकरण और ऋण–तन्त्र विकसित हुआ। हजारों वर्षों के दौरान एक अस्पष्ट भारतीयता का अहसास पैदा हुआ। भारतीय अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीति के उपनिवेशीकरण ने भारत के एकीकरण की प्रक्रिया को और सुदृढ बना दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन ने ही वह केन्द्रीय भूमिका निभाई थी जिसने भारतीयो को राजनीतिक और भावनात्मक रूप से जोड़ कर उन्हे एक राष्ट्र का स्वरूप दे दिया था। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत पूरी तरह एक सुगठित राष्ट्र नहीं था वरन् यह बनने की प्रक्रिया की ओर अग्रसर था। भारतीय राष्ट्र की रचना एक दीर्घकालीन और सतत् प्रक्रिया थी न कि 15 अगस्त् 1947 ई० को घटने वाली कोई घटना। इसलिए इसके सामने हमेशा विखण्डन का खतरा बना हुआ था। ऐसा एक विखण्डन सन् 1947 ई० में हो चुका था। आजादी के बाद भी भारत के एकीकरण और राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया को सतर्कतापूर्वक न केवल बनाये रखना होगा बल्कि उसे और भी ज्यादा प्रोत्साहित और पोषित करना होगा (चन्द्र, 2002, पृ० 111-112]) वर्तमान अध्याय में प्रादेशिकवाद पर नियंत्रण करते हुए राष्ट्रीय

एकीकरण एव समन्वयन की भावना को बनाए रखने के लिए कुछ परामर्श एव सुझाव प्रस्तावित किये गये हैं।

भारत विश्व का एक सबसे अधिक सास्कृतिक विभिन्नताओ वाला देश है। इसके अन्दर बडी सख्या मे भिन्न–भिन्न भाषाई, सास्कृतिक, भौगोलिक एव आर्थिक विषमताओ वाले क्षेत्र मौजूद हैं। यहॉ कई धर्मों हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, सिख, पारसी, यहूदी, बौद्ध एव जैन आदि के अलावा लाखो आदिवासी अपने सैकडो धार्मिक पथो के साथ निवास करते हैं। ये आदिवासी कबीले देश की कुल जनसख्या के छह प्रतिशत हैं और सम्पूर्ण देश मे फैले हुए हैं। भारत की विविधता कभी इसकी एकता के मार्ग मे बाधक नही रही है। भारत का एकीकरण और स्तरीकरण का समापन, मात्र इसकी विशाल विविधता को स्वीकार करके ही किया जा सकता है, विविधता को राष्ट्र– रचना का विरोधी मानकर नही। क्षेत्रीय सास्कृतिक पहचान का विकास अखिल भारतीय पहचान के विरोधी के रूप मे नही बल्कि उसके अग के रूप मे होना चाहिए। भाषा, सस्कृति, धर्म और मूल की विभिन्नताओ को किसी समाप्त करने लायक बाधा के रूप मे नही, राष्ट्रीय सुदृढीकरण के विपरीत ध्रुव के रूप मे नही, बल्कि ऐसी सकारात्मक विशेषता के रूप मे देखा जाना चाहिए जो शक्ति का स्रोत है, और जिसे उदित हो रहे साझा राष्ट्रत्व के अन्दर समाहित कर लिया जाना चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय राष्ट्र का सुदृढीकरण एक व्यापक रणनीति के तहत किया गया जिसमे क्षेत्रीय एकीकरण, राजनीतिक और सस्थागत संसाधनों का सचालन, एकीकरण को प्रोत्साहित करने वाली नीतियॅा, वीभत्स असमानतओं का उन्मूलन और समान अवसर उपलब्ध कराना शामिल था (चन्द्र, 2002, पृ० 113– 114)।

भारत मे अलगाववाद की भावना को जन्म देने के पीछे जहॉ भाषा, जाति, साम्प्रदायिकता, आतकवाद आदि तत्व उत्तरदायी हैं, वहॉ प्रादेशिकवाद भी अलगाववाद को बढावा देने मे किसी अन्य तत्व से कम नहीं है। भारतीय राजनीति भी प्रादेशिकवाद की चोट से बच न सकी, फलत. आन्दोलनात्मक राजनीति मे तेजी आई। यथार्थ मे, प्रादेशिकवाद की समस्या आज राष्ट्रीय एकता के मार्ग में कटक बन गई है। अत हमें सरकार के साथ सहयोगी प्रवृत्ति अपनानी चाहिए, ताकि भारतीय एकता का रास्ता प्रशस्त बनाया जा सके। केन्द्रीय सरकार को भी अपनी नीतियाँ इस तरह निर्मित करनी चाहिए जिससे

उप–सास्कृतिक क्षेत्रो का सन्तुलित आर्थिक विकास सम्भव हो सके, जिससे कि विभिन्न क्षेत्रो के बीच आर्थिक तनाव कम हो सके। भाषाई विवाद के शीघ्र समाधान हेतु 'त्रिभाषा फार्मूला' को क्रियान्वित किया जाना उपयुक्त होगा। प्रचार माध्यमो को चाहिए कि एक राज्य या क्षेत्र विशेष की ओर अधिक ध्यान न दे, अपितु सभी क्षेत्रो को समान दृष्टि से देखना चाहिए। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे सभी क्षेत्रो के नेताओ का सन्तुलित प्रतिनिधित्व होना चाहिए, जिससे कि क्षेत्रीय पक्षपातपूर्ण नीतियो का निर्माण एव क्रियान्वयन न हो सके और लोगो के मन–मस्तिष्क पर सरकार के इरादो के प्रति सन्देह का पर्दा न पडे। इसके अलावा, केन्द्र व राज्य सरकारो के बीच पारस्परिक सम्बन्धों को अधिकाधिक सौहार्द्रपूर्ण बनाने के लिए दोनों ही पक्षो को इस प्रकार की नीति तथा आचार सहिता को ह्रदयगम करना चाहिए कि पारस्परिक विश्वास सदैव बना रहे तथा एक–दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप की परिस्थितियॉ उत्पन्न न हो सकें। साथ ही केन्द्र सरकार को सदैव सतर्क रहना चाहिए क्योंकि स्वार्थी तथा सकीर्ण मनोभाव वाले नेतागण अवसर आते ही प्रादेशिकता की भावना को भडकाने का प्रयास कर सकते हैं। यदि हमे अपने देश की एकता एव सम्प्रभुता को सुरक्षित रखना है तथा उसे अलगाववाद की काली छाया से दूर रखना है तो हमे सघर्षात्मक प्रादेशिकता की भावना को त्यागकर सहयोगी प्रादेशिकता का दामन मजबूती से थामना होगा।

पाकिस्तान भारत को विखण्डित करने के लिए आतकवाद का सहारा ले रहा है। जम्मू–कश्मीर मे प्रशिक्षित आतकवादियो को भेजा जा रहा है, ये आतकवादी सेना से सीधे टकरा रहे हैं। उल्फा और पाक खुफिया एजेसी आई० एस० आई० का गठजोड हैं। उल्फा वर्षों से असम मे सघर्ष चला रहा है और सरकार उसे दबा नहीं पायी है। पूर्वोत्तर के आन्दोलनो मे एक पृथकतावादी टोन नजर आता है। लेकिन भौगोलिक दूरी के कारण देश के ये आन्दोलन सामान्य जीवनधारा को बहुत उद्वेलित नही करते। दशको से यह स्थिति है कि वहॉ विद्रोही आवाजे उठती रहती हैं, कुछ आन्दोलन थककर समाप्त भी होते रहे हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि उन चिताओ को दिल्ली की मुख्य चिंता कभी नहीं मानी गयी। इसी उपेक्षा के चलते पूर्वोत्तर के सबसे विकसित और मुख्यधारा से जुडे राज्य असम में बाहरी नागरिकता के सवाल पर एक आन्दोलन खडा हुआ और जब राजनीति के जबडों मे फँसकर वह अभूतपूर्व आन्दोलन टूटा तो कई चीजे हमेशा के लिए विकृत हो गईं। माना जाता है कि

बोडो और उल्फा जैसे सकीर्ण आन्दोलन उसी मंथन से उपजे हलाहल हैं। आतकवाद के लिए पूर्वोत्तर एव जम्मू– कश्मीर उपयुक्त जगह हैं। वहॉ के घने और बीहड जगलो मे छापामारो को खोजना आसान नही है। सेना की भारी मौजूदगी के बावजूद वहॉ स्वतन्त्रता के बाद से अशान्ति बनी हुई है। आज वहॉ कई इलाके हैं, जहॉ सरकार का शासन नाममात्र का है।

आतकवाद को समाप्त करने के लिए पाकिस्तान को बताना होगा कि वह हर क्षण युद्ध के लिए तत्पर है। किसी औपचारिक घोषणा की जरूरत नहीं है। भारत को सीमा पर लगातार युद्धाभ्यास चलाने होगे। स्वाभाविक है कि अन्तर्राष्ट्रीय मचो पर इसकी तीखी प्रतिक्रिया होगी। भारत को बहिष्कार की धमकियॉ मिलेंगी और कई तरह के दबाव पडेंगे, लेकिन भारत को यह साफ कर देना होगा कि सीमा पार के आतकवादी शिविरो को नष्ट करने का अधिकार वह अपने पास रखता है। हमारे सामने एक उदाहरण चीन का है, जो ताइवान की ओर से सिर्फ 'आजादी' शब्द सुनते ही समुद्र मे मिसाइले दागने लगता है। अपने इन तेवरो से चीन पडोसियो को आतंकित करने मे कामयाब भी रहता है। एक और उदाहरण अमेरिका है, जो अपने 'हितों की रक्षा' के सिद्धान्त पर दुनियॅा में कहीं भी धावा बोलना अपना अधिकार समझता है। भारत की प्रतिक्रिया भी ऐसी ही हो तो यकीनन पाकिस्तान में उसका असर पडेगा।

8.1 प्रादेशिकवाद पर नियंत्रण हेतु सुझाव

किसी भी लोकतान्त्रिक राष्ट्र के लिए, विशेष रूप से ऐसा राष्ट्र जो अभी भी राष्ट्र–निर्माण और राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याओं से जूझ रहा हो, प्रादेशिकवाद की प्रवृत्ति का विकास एक चिन्ताजनक विषय है। इस प्रवृत्ति पर एक सोची–समझी और सुविचारित रणनीति के द्वारा ही नियन्त्रण लगाया जा सकता है। प्रादेशिकवाद पर अंकुश लगाने के कुछ प्रभावशाली उपाय इस प्रकार हो सकते हैं–

1- देश मे व्याप्त आर्थिक विषमता को समाप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिये। जहॉ तक सम्भव हो पिछडे क्षेत्रों के आर्थिक विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, ताकि उन्हें राष्ट्र विकास की मुख्य धारा से जोडा जा सके। संघ सरकार को राज्य सरकारों

को पिछडे हुए क्षेत्रो के विकास पर विशेष ध्यान देने के लिए निर्देश देना चाहिए। सरकार को विकास कार्यक्रमो का निर्माण और उनका क्रियान्वयन कुछ इस प्रकार से करना चाहिए कि सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को बढावा मिल सके। यह बात निर्विवाद है कि भारत मे अब तक चलाये गये अधिकाश क्षेत्रीय आन्दोलनो के मूल मे असन्तुलित आर्थिक विकास का एक एहसास ही रहा है। तेलगाना के आन्दोलन से हमे यह सीख ग्रहण करनी चाहिये कि एक राज्य के भीतर भी अगर किसी भाग या क्षेत्र की पूर्णतया उपेक्षा की गई तो वहॉ के लोगो मे भी आन्दोलन एव अलगाव की प्रवृत्ति अवश्य ही पनपेगी। गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन की दिशा मे ठोस एव चरणबद्ध प्रयास किया जाना चाहिये। सभी प्रकार के विशेषाधिकार वर्गों का अन्त हो तथा अमीर–गरीब मे बढती हुई खाई को पाटकर यथाशीघ्र आर्थिक असमानताओ को दूर किया जाये। आज आर्थिक विकास की असफलता पर जनता द्वारा सरकारो को पलटा जा रहा है। फिर प्रादेशिक स्तर पर आर्थिक असन्तुलन तो और भी चिन्ता का विषय है।

2- विशिष्ट जातीय समुदाय की अपनी विशिष्ट सस्कृति और पहचान को सुरक्षित रखने के सरकार द्वारा विशेष प्रयास किये जाने चाहिए। वैसे भी इस आशय के प्रावधान सविधान मे मौलिक अधिकारो (अनुच्छेद 29–30) में किये गये हैं। इन्हे पूर्ण ईमानदारी से लागू किया जाना चाहिए। इससे इन जातीय समूहो के सास्कृतिक एकाकीपन को रोका जा सकेगा। यह उपाय बोडोलैण्ड जैसे आन्दोलनो के सन्दर्भ मे विशेष लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

3- विलगाववादी आन्दोलनो की हिसात्मक प्रवृत्ति पर कठोरता से अकुश लगाया जाना चाहिए। सरकार को यह दृढतापूर्वक स्पष्ट कर देना चाहिए कि किसी भी प्रकार की क्षेत्रीय आकाक्षाओ की पूर्ति सविधान के दायरे में शान्तिपूर्ण ढग से ही सम्भव है।

4- सामाजिक न्याय की स्थापना की दिशा में ठोस कदम उठाये जाये। अस्पृश्यता– उन्मूलन के सम्बन्ध मे कानूनी व्यवस्था को प्रभावशाली ढॅग से लागू किया जाये। प्रो० रजनी कोठारी का मत है, "भारत जैसे विशाल देश में, जहॉ इतने विविध प्रकार के लोग रहते हैं एकता की स्थापना इसी से हो सकती है कि सब तत्वो को राजनीतिक सत्ता व अधिकार में भाग दिया जाये और सबको साथ लेकर चला जाय। राजनीति की इस रचनात्मक भूमिका से

ही एकीकरण की प्रवृत्तियो को बल मिलता है।" यदि सत्ता और राजनीति में एक ही वर्ग या कुछ वर्गों का एकाधिकार होगा तो निश्चय ही अन्य वर्गों मे निराशा और अलगाववाद की भावना उत्पन्न होगी (मुकर्जी, 2001, पृ० 436)।

5- राष्ट्रीय एकीकरण के विकास के लिये इन राज्यो मे सघर्षात्मक और प्रतिस्पर्द्धात्मक भावनाओ को समाप्त कर सहकारी व सहयोगी सघवाद के भव्य भवन का निर्माण करना चाहिये। राज्यो को नदी, पानी, सीमा, वित्तीय साधनो तथा राष्ट्रीय सम्पदा के वितरण को लेकर उग्र आन्दोलनात्मक रुख नहीं अपनाना चाहिए (मुकर्जी, 2001, पृ० 436)।

6- देश की भावनात्मक एव राष्ट्रीय एकता मे राजनीतिज्ञ और उनका व्यवहार एक बडी बाधा है। आचार्य कृपलानी ने राष्ट्रीय एकता सम्मेलन मे कहा था, "देश की एकता को खतरा पैदा करने के लिए हम राजनीतिज्ञ लोग जिम्मेदार हैं। यदि हम राजनीतिज्ञो मे एकता हो जाये तो देश मे एकता स्थापित होने में समय नहीं लगेगा।" राजनीतिज्ञो को अपने सकीर्ण व्यक्तिगत और दलीय स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्र के सामने आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। इन्हे राष्ट्रीय एकता के लिये रचनात्मक भूमिका अदा करनी चाहिए। राजनीतिज्ञों के लिए स्वस्थ राजनीति पर आधारित एक आचार संहिता का निर्माण एवं इसका विधिवत क्रियान्वयन परमावश्यक है। ऐसी व्यवस्था करने की आवश्यकता है जिससे अपराधियों, बौद्धिक दृष्टि से अपरिपक्व, कम पढे लिखे, भ्रष्ट लोगों के बजाय सुशिक्षित ईमानदार एवं कर्मठ राजनीतिज्ञ भाग ले सकें।

7- प्रो० एम० एन० श्रीनिवास का विचार है, "पूरे देश और सभी क्षेत्रो में त्वरित आर्थिक विकास, भाषा और धर्म के मामलों मे सच्चे अर्थों में सहिष्णुता तथा जातिवाद को समाप्त करने की सुदृढ चेष्टा की जाये तो भारत सशक्त एवं संगठित देश के रूप में उठ खडा होगा।" वस्तुत इस देश मे अधिकांश झगडे तथा तनाव भाषा और धर्म को लेकर हुए हैं। अत भाषागत एव धर्मगत एकता बनाये रखने का प्रयास किया जाना चाहिए (मुकर्जी, 2001, पृ० 437)। एतदर्थ सभी धर्मों के धर्माचार्यों के सहयोग से एक मिली–जुली नीति बनाने की आवश्यकता है। जिसे सभी राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो।

8- धार्मिक, जातीय और क्षेत्रीय नामो से चलने वाली सस्थाओ को प्रतिबधित किया जाना चाहिए। आज कई सगठन जनता मे विघटनकारी प्रवृत्तियो को उत्पन्न करते हैं तथा देश मे हिसात्मक आन्दोलन का सहारा लेकर देश मे अराजकता उत्पन्न करते हैं। ऐसे सगठनो पर यथाशीघ्र प्रतिबन्ध लगा देना चाहिये। एतदर्थ यदि आवश्यक हो तो सविधान मे उपयुक्त सशोधन कर अल्पसख्यको द्वारा धार्मिक स्वतत्रता के दुरुपयोग पर अकुश लगाने की आवश्यकता है।

9- विभिन्न प्रान्तो के लोगो के मध्य अधिकाधिक सास्कृतिक आदान–प्रदान किया जाना चाहिए ताकि देश के सभी राज्य एक–दूसरे के अधिक निकट आ सके और एक–दूसरे से अच्छी तरह से परिचित हो सके। इससे पारस्परिक तनाव समाप्त हो सकेगा एव राज्यो के बीच एक परस्पर सहयोग एव आदान-प्रदान मे वृद्धि होगी।

10- शैक्षणिक पाठ्यक्रम ऐसे हो जिनसे विद्यार्थियो मे राष्ट्र प्रेम की भावना विकसित हो। शिक्षा के साधन और स्तर सम्पूर्ण देश मे समान हों। देश मे एक सम्पर्क भाषा को प्रोत्साहन दिया जाये ताकि लोग एक–दूसरे के निकट आ सके। पाठ्यक्रम से ऐसे अध्यायों को हटा दिया जाये जिनसे सामाजिक विभेद पैदा होता है। भारत की प्रत्येक भाषा का विकास आवश्यक है। इसलिए पुस्तको का भारत की प्रत्येक भाषा में अनुवाद करना चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति विभिन्नता में एकता के तत्वो का अध्ययन कर सके। पुस्तकों में ऐसे पाठ्यक्रम होने चाहिये जिससे राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रोत्साहन मिले।

11- साम्प्रदायिकता, जातिवाद, भाषावाद आदि को शिक्षण सस्थाओ मे हतोत्साहित करना चाहिए। छात्रों में अन्तर्राज्यीय एव अन्तर्विश्वविद्यालयी आदान–प्रदान होना चाहिए। इसके साथ ही साथ विद्यार्थियो एव शिक्षको को दूसरे शिक्षण सस्थाओ मे जाने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिए। इसके अतिरिक्त ऐसी संस्थाओ का निर्माण करना चाहिए, जो कि जातिवाद, धर्मवाद या भाषावाद की जंजीरो को तोडे।

12- अन्तर्राज्यिक नदी–जल विवाद से भी प्रादेशिकवाद को प्रोत्साहन मिलता है। इसका प्रमुख कारण है कि वर्तमान व्यवस्था ऐसी हैं जिससे ऐसे विवादों को सुलझाने मे अत्यधिक विलम्ब होता है और अधिकरण के अधिनिर्णय को लागू करने के लिए समुचित तन्त्र

की कोई व्यवस्था नही है। सविधान मे जल–विवाद के समाधान से सम्बन्धित विशेष उपबन्ध हैं। लेकिन ऐसे किसी तन्त्र की कोई व्यवस्था नही है जिसके तहत जल विवाद का फैसला किया जा सके। सघ सरकार ने अब तक चार अधिकरणो की स्थापना की है– नर्मदा अधिकरण, कृष्णा अधिकरण, गोदावरी अधिकरण तथा कावेरी अधिकरण। अन्तर्राज्यिक नदी–जल विवाद के निपटारे के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं (सरकारिया, 1998, पृ० 461-470) ––

(क) राज्यो के नदी–जल विवाद को एक निश्चित समय सीमा मे हल किया जाना चाहिए, यह सीमा एक वर्ष से अधिक नही होनी चाहिए।

(ख) अधिकरण को सामान्यत प्रभावित राज्य तथा सघ द्वारा समुचित मात्रा में सही ऑकडे उपलब्ध नहीं कराये जाते इसके लिए यह उपाय हो सकता है कि अधिकरण अपने समक्ष मौजूद ऑकडो के आधार पर सर्वोत्तम निर्णय के आधार पर अपना निर्णय दे दे। इसके लिए वर्तमान अन्तर्राज्य नदियो और नदी घाटियों के सम्बन्ध में आवश्यक ऑकडा–आधार तैयार किया जाना चाहिए। प्रमुख नदियो के सम्बन्ध में ऐसे ऑकडे एकत्र करने और इनकी नियमित रूप से समीक्षा करने और उन्हे अद्यतन बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

(ग) अन्तर्राज्यिक नदी–जल विवाद को न केवल सम्बन्धित राज्यों के बीच नदी जल का निष्पक्ष वितरण सुनिश्चित किया जाना चाहिए बल्कि उसका व्यापक राष्ट्रीय हित में अनुकूलतम उपयोग किया जाना चाहिए।

(घ) अधिकरण के फैसले को पूर्णत कठोरता से लागू किया जाना चाहिए और उस आदेश को सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के बराबर माना जाना चाहिए।

(ङ) अन्तर्राज्यिक नदी–जल विवाद अधिनियम मे सशोधन किया जाये ताकि सघ सरकार को, आवश्यकता पडने पर स्वप्रेरणा से अधिकरण के गठन की शक्ति प्राप्त हो जाय यदि वह इस बात से आश्वस्त हो कि वास्तव में ऐसा कोई विवाद है।

(च) भारत कुछ उन देशों मे से है जहॉ सूखा और बाढ राहत के काम साथ–साथ चलते रहते हैं। यदि एक इलाके मे जल आवश्यकता से अधिक है तो उसे उस इलाके में

भेजा जाना चाहिए जहाँ इसकी जरूरत है। हिमालयी क्षेत्र मे तो नही प्रायद्वीपीय नदियो के जल के बँटवारे मे हमेशा प्रादेशिकवाद को बल मिला। इसलिए राजनीति सबसे बडी समस्या है। मिसाल के तौर पर उडीसा नही मानता कि महानदी मे जरूरत से अधिक जल है। इसी तरह आन्ध्र प्रदेश गोदावरी का पानी किसी अन्य राज्य को देने को तैयार नहीं है। इसलिए यह आवश्यक है नदी– जल को राज्य की सूची से निकालकर केन्द्रीय सूची में रख दिया जाये। नदियो को दो तरह से जोडा जा सकता है प्रथम हिमालयी नदियो को जोडना – इसके तहत गगा–ब्रह्मपुत्र और उनकी सहायक नदियाँ, द्वितीय प्रायद्वीपीय नदियो महानदी, गोदावरी, कृष्णा एव कावेरी को लिक नहरो द्वारा जोड दिया जाना चाहिए। पुन इन दोनो क्रमो को एक दूसरे से जोड देना चाहिए। इससे न केवल सूखा क्षेत्रो मे सिंचाई की जा सकेगी बल्कि बाढो पर नियन्त्रण किया जा सकेगा एव बरसात के अतिरिक्त जल को सरक्षित किया जा सकेगा तथा प्रादेशिकवाद को रोकने मे भी काफी हद तक कामयाबी मिलेगी। चीन और आस्ट्रेलिया मे प्रमुख नदियो को सफलतापूर्वक जोडा गया। हालाँकि विरोधियों का मानना है कि देश की नदियो को जोडने से धन, पर्यावरण एव जीव– जन्तुओ को काफी हानि होगी तथा सीमित मात्रा मे विस्थापन होगा। लेकिन इससे मिलने वाला लाभ कहीं अधिक होगा।

उपर्युक्त उपायो को अपनाने से प्रादेशिकवाद की प्रवृत्ति पर स्वाभाविक ढँग से अकुश लगाया जा सकता है। यदि समय रहते इन उपायो पर ध्यान नहीं दिया गया तो बहुत सम्भव है एक बार पुन राज्यों का पुनर्गठन करना पडे। समय–समय पर क्षेत्रीय समूहों द्वारा भाषाई अथवा सामाजिक–आर्थिक विकास असन्तुलन के आधार पर पुन राज्य पुनर्गठन आयोग की माँग की जा रही है।

8.2 प्रादेशिकवाद की समस्या हेतु समाधान

भारत जैसे विविधतापूर्ण देश मे लोकतन्त्र की स्थापना किये जाने पर प्रादेशिकवाद का उदय एव विस्तार कोई अस्वाभाविक या आकस्मिक बात नहीं है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत की आर्थिक दशा जर्जर थी। इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष क्षेत्रीय विषमता और असन्तुलन था। अग्रेजो के शासन ने अपनी सहूलियत के लिये क्षेत्रीय असन्तुलन पैदा किया एव उसे बनाये रखने की भरपूर चेष्टा की। उन्होंने सम्पूर्ण देश में एक समान भूमि व्यवस्था

को लागू नही किया। कुछ क्षेत्रो यथा बगाल, बिहार, उडीसा, उत्तरी कर्नाटक एव पूर्वी उत्तर प्रदेश के वाराणसी खण्ड मे जमींदारी व्यवस्था अपनायी गयी, तो मद्रास, बम्बई एव असम मे रैय्यतवाडी व्यवस्था तथा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रान्त एव पजाब मे महालवारी व्यवस्था लागू की गयी। भूमि व्यवस्था की विभिन्नताओ के कारण भारत जैसे कृषि प्रधान देश मे, उत्पादन और शोषण की प्रक्रिया भिन्न रही। आर्थिक कारणो से समुद्र तटीय नगरो के विकास को प्राथमिकता दी गयी। यही क्षेत्र औद्योगीकरण के मुख्य क्षेत्र भी बने। इसके विपरीत गृह–उद्योगो के विनाश तथा हस्तशिल्प के उत्पादन को प्रोत्साहन न दिये जाने के कारण छोटे कामगरो एव धधो का विनाश हुआ। सामान्य पर्यवेक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शहरीकरण और औद्योगीकरण की दृष्टि से कई क्षेत्रो का अतिशय विस्तार हुआ और अनेक क्षेत्र पिछडते चले गये। अग्रेजों की नीति के कारण भारत मे अन्तर्राज्यीय और अन्तर्क्षेत्रीय स्तरो पर असमानताओ मे निरन्तर वृद्धि होती रही।

लोकतन्त्र की स्थापना किये जाने पर भारत सरकार ने सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक आधार पर क्षेत्रीय असमानताये दूर करने का उद्देश्य निर्धारित किया। भारत की सघीय व्यवस्था मे विभिन्न राज्यो के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक धार्मिक, सामाजिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक भिन्नतायें होना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में क्षेत्रीय असमानताओं और विषमताओं का बना रहना राजनीतिक स्थिरता और एकता के लिये संकट उत्पन्न करने वाला हो सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह प्रयास किया गया कि क्षेत्रीय असमानताओ को कम करने मे भारत सरकार को सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

सन् 1951 ई० मे जब प्रथम पचवर्षीय योजना को लागू किया गया तो उसमे क्षेत्रीय विकास पर प्रमुख रूप से ध्यान दिया गया। किन्तु कई अपरिहार्य कारणो से विकास की प्रक्रिया निर्धारित लक्ष्यो को प्राप्त न कर सकी। उदाहरणार्थ, अब तक 11 वित्त आयोगो द्वारा सुझाव दिये जा चुके हैं और इनमे क्षेत्रीय असमानताओं की ओर संकेत दिये गये हैं। किन्तु क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने का लक्ष्य अभी भी लक्ष्य बना हुआ है। यही बात नियोजन के मामले मे लागू होती है। पहले से विकसित अनेक राज्यों और क्षेत्रो को अल्पविकसित और पिछडे राज्यों तथा क्षेत्रो की अपेक्षा विकास की अतिरिक्त सुविधा दिए जाने से उनकी विकास प्रक्रिया और तेज हुई और असन्तुलन में वृद्धि हुई।

क्षेत्रीय असमानताओ से प्रादेशिकवाद का उदय और विकास होता है। यह बात स्पष्ट है कि प्रादेशिकवाद किसी भी विविधतापूर्ण राजनीतिक समाज की स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह अपने आप मे देश की स्थिरता और एकता के लिये समस्या उत्पन्न कर सकती है, परन्तु उसके लिये खतरा नहीं बन सकती। आवश्यकता इस बात की है कि वस्तु स्थिति को उद्देश्यपूर्ण ढ़ंग से पूरी तरह स्पष्ट किया जाये। नीति सन्तुलित हो और उसे पूरी निष्ठा से लागू किया जाये तो प्रादेशिकवाद देश की अखण्डता बनाये रखने का महत्वपूर्ण तत्व सिद्ध होगा। फिर भी प्रादेशिकवाद असमानताओ से राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रिया मे अनेक समस्याये तथा तनाव उत्पन्न हो रहे हैं। इसके कारण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और राजनीति के राष्ट्रीय रूप का निर्माण नही हो पा रहा है। विभिन्न राज्यो और क्षेत्रो मे राजनीति के स्तर और प्रकृति मे व्यापक अन्तर पाये जाते हैं। असमानताओ के कारण केन्द्र और राज्यो मे मतभेद, अन्तर्राज्यीय मतभेद, विवाद और क्षेत्रीय समस्याये बढ रही हैं। ये साम्प्रदायिक, सास्कृतिक, भाषायी और अन्य सकीर्ण सगठनो के विकास को प्रोत्साहन दे रहे हैं। निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि यदि विकास के लाभो का उचित विभाजन नहीं होता, अलगाववादी प्रादेशिकवाद की भावनाओ को उनके उदय से ही राजनीतिक हल नही किया जाता, तो समस्या गम्भीर ही बनी रहेगी।

8.3 छोटे राज्यों का औचित्य

पिछले कुछ वर्षों के दौरान देश में कम से कम आठ–दस नये राज्यों की मॉग उठने लगी है। यह मॉग मुख्यत बडे राज्यो मे उठ रही है, जैसे पश्चिमी बंगाल में गोरखालैण्ड की मॉग, असम मे बोडोलैण्ड की माँग, महाराष्ट्र में विदर्भ की मॉग, आन्ध्र प्रदेश मे तेलगाना, मध्य प्रदेश एव उत्तर प्रदेश मे बुन्देलखण्ड, उत्तर प्रदेश मे हरित प्रदेश, अवध एव पूर्वांचल की मॉग आदि प्रमुख हैं। सामान्य तौर पर छोटे राज्यों की मॉग स्थानीय नेताओ द्वारा इस आधार पर की जाती है कि राज्य उनके क्षेत्र मे पर्याप्त ध्यान नहीं दे पा रहा है, इसलिए उनका क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से पिछड गया है तथा उनके क्षेत्र के ससाधनो का उपयोग उनके अपने विकास के लिए नहीं हो पाता अर्थात् पिछडापन और बेरोजगारी को वे राज्य की उपेक्षा की देन कहते हैं। यह तर्क भी दिया जाता है कि छोटे राज्य प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से अधिक उपयोगी होते हैं। छोटे राज्य होने से लोगो तक प्रशासन की पहुँच सुविधाजनक

होती है तथा सरकार द्वारा समय–समय पर जारी किये जाने वाले नियमो व कानूनो को आसानी से लागू किया जा सकता है। छोटे राज्य के लिए बनाई गई विकास नीति भी अधिक व्यावहारिक होती है। उदाहरणार्थ, उत्तर प्रदेश जैसे बडे राज्य मे जहॉ पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे विकसित क्षेत्र हैं वही पूर्वी उत्तर प्रदेश जैसे अर्द्ध विकसित एव बुन्देलखण्ड जैसे अविकसित हैं। इनके लिए अलग–अलग नीतियो की आवश्यकता होती है जो छोटे राज्यो मे ही सम्भव हो सकती है। इस दृष्टि से हरियाणा, पजाब और केरल जैसे छोटे राज्यो के उदाहरण प्रस्तुत हैं कि किस प्रकार उन्होने हर क्षेत्र मे प्रगति की है। वैसे छोटे राज्यो की मॉग का अन्तिम उद्देश्य जनता का कल्याण करना होता है, परन्तु यही अन्तिम लक्ष्य पूरा न होकर स्वार्थो से जुड जाता है।

यदि किसी क्षेत्र मे अपने विकास, उन्नति व प्रगति की अपार उत्कठा है तो उसे इसका अवसर मिलना ही चाहिए। किसी भी स्थान विशेष को स्वायत्त राज्य का दर्जा देने में कोई हानि नहीं है। साथ ही यह तर्क भी सही है कि जब भाषा के आधार पर देश मे राज्यो का गठन हो सकता है तो स्थानीय सस्कृति व क्षेत्र विशेष को लेकर नये राज्यो का गठन क्यों नही हो सकता है। अत आवश्यक है कि देश को विभाजनों की महामारी का शिकार होने से बचाया जाये तथा देश की आजादी के बाद विभिन्न रियासतो के भारतीय सघ में विलीन होने के फलस्वरूप जिस प्रशासनिक सुविधा को ध्यान में रखकर राज्यो के पुनर्गठन का विचार किया गया था, उसी नीयत से राज्यों का एक बार पुन पुनर्गठन होना चाहिए। किसी भी प्रशासनिक इकाई के गठन के तीन मुख्य आधार होने चाहिए, प्रथम– प्रशासनिक सुविधा, द्वितीय– आर्थिक सक्षमता, तृतीय– भौगोलिक परिस्थिति। इसके अतिरिक्त यदि किसी भी अन्य मुद्दे को शामिल किया गया तो वह पुनर्गठन नहीं विभाजन होगा, जो अब तक होता रहा है और जिसकी भूख बढती जा रही है। इस विभाजन को रोकने के लिए पुनर्गठन जरूरी है। इस पुनर्गठन की परिधि में केवल उत्तर प्रदेश को ही नही लाया जाना चाहिए। महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा उडीसा का पुनर्गठन छोटे राज्यो के रूप मे होना चाहिए। इतने दिनो तक उपद्रवग्रस्त रहने के बावजूद पजाब आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है व हरियाणा और हिमाचल प्रदेश की प्रगति आश्चर्यजनक बनी हुई है, तो इसके लिए इन राज्यो का उचित पुनर्गठन ही है।

भारत मे छोटे राज्यो की मॉग को राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के विरोधी स्वर के रूप में लिया जाता है जो पूरी तरह सही नही है। सयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देश मे 50 राज्य हैं, जबकि हमारे यहाँ 28 राज्य हैं। यह बात अलग है कि छोटे राज्यो की मॉग के पीछे ठोस यथार्थवादी कारण उतने नही होते जितने कि भावनात्मक होते हैं। स्थानीय नेता जन भावनाओ को उत्तेजित करके अपना राजनीतिक स्वार्थ साधने के लिए समय–समय पर अलग राज्यो की मॉग उठाते हैं, जो सही नही है, लेकिन यदि एक ही राज्य के दो भिन्न क्षेत्रो के विकास मे अत्यधिक अन्तर दिखायी देने लगे तब उसकी इस भावना को सबल आधार मिल जाता है।

छोटे राज्यो के विपक्ष मे तर्क दिया जाता है कि विकास की भूख और राजनीति की महत्वाकाक्षा के बीच बनते राज्य देश की भौगोलिक सीमाओ की भीतरी सीमाओ को तो बदल सकते हैं, परन्तु क्या वहॉ के रहने वालों और भूमिपुत्रो की मॉग मिटा पायेगे? क्या सभी छोटे राज्य विसगतियो को समाप्त कर विकास को धरा पर उतार पायेगे? महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश एव गुजरात कोई बहुत छोटे राज्य नहीं हैं। दूसरी ओर उत्तर-पूर्व मे कई छोटे–छोटे राज्य हैं। परन्तु क्या वहॉ विकास हो पाया है? विकास एक अवधारणा है जिसे सही नेतृत्व सकल्प के साथ धारण कर अपने ससाधनो और बाहरी सहयोग से साकार करता है। तुष्टिकरण से अपनी ताकत बढ़ाने वाले, जाति एवं धर्म के नाम पर राजनीति करने वाले यह सब नहीं कर सकते। बेरोजगारी के दौर में आन्दोलनकारी मिलने मे कोई मुशकिल नहीं होती। नये राज्यो के निर्माण से राजनीतिक महत्वाकाक्षाये भले ही पूरी हो जाये, आर्थिक विषमताओ को समाप्त करना बहुत कठिन लगता है।

इस दृष्टि से प्रश्न छोटे राज्यों के निर्माण का नहीं है, बल्कि उनके आर्थिक विकास का है, जो केवल राज्यों को छोटे बना देने से हल नहीं हो सकता। इसके लिए आवश्यक है कि भूमि सुधार पर जोर दिया जाये। वहाँ स्थानीय उत्पादो के लिए बाजार विकसित किया जाये। जितने भी पिछड़े हुए राज्य हैं उनके लिए एक समन्वित नीति एव योजना तैयार की जाय तथा राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक एवं वैधानिक शक्तियो का यथा सम्भव विकेन्द्रीकरण किया जाये। वास्तव में पिछडे क्षेत्रो के लोगों में जो उत्पीडन का भाव समाहित हो गया है उसे समाप्त कर के उस क्षेत्र का विकास करना तथा वहॉ के लोगों को रोजगार

एव शिक्षा उपलब्ध कराकर छोटे राज्य की मॉग को कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है।

भारत का आन्तरिक मानचित्र आज वही नही है जो सन् 1947 ई० मे था या जो सन् 1956 ई० मे राज्यो के भाषावार पुनर्गठन के समय था। एक समय असम मे सात राज्य अन्तर्निहित थे। आज वे सभी अलग–अलग राज्य हैं। पजाब और हरियाणा काफी समय तक साथ–साथ रहे, लेकिन अन्तत पजाबी सूबे की मॉग मान ली गयी। कुछ केन्द्र शासित प्रदेशो को अलग राज्य का दर्जा दे दिया गया। ये सभी घटनायें बताती हैं कि भारतीय राज्य इसीलिए टिका हुआ है क्योकि वह अपने को रूढ मानकर नहीं चलता और लोक भावनाओ की पूरी तरह उपेक्षा नहीं करता। इसके विपरीत पाकिस्तान सिर्फ इस मामूली सी बात के चलते टूट गया कि वह बहुमत होने के बावजूद बाग्लादेश के एक नेता को अपना प्रधानमन्त्री बनने देना स्वीकार नही कर सका। श्रीलंका की जातीय समस्या की गुत्थी इसीलिए उलझती गई कि वहॉ समय पर क्षेत्रीय भावनाओं का ख्याल नहीं रखा जा सका। तमिल समस्या एक समय भारत मे भी कम गम्भीर नहीं थी। लेकिन हमने लोकतान्त्रिक ढॅग से उसका सामना किया और तमिल भावनाओ के लिए जगह निकालने की कोशिश की। इसी के परिणामस्वरूप भारत का आन्तरिक मानचित्र भले ही तेजी से बदलता जा रहा हो, पर उसकी आन्तरिक सहति मे कोई कमी नही आई है। अनेकता मे एकता की यह साधना लोकतान्त्रिक उदारता और लचीलेपन से ही सम्भव है।

लोकतन्त्र मे राज्य व्यवस्था का यह प्रथम दायित्व होता है कि वह ऐसे मामलों को शीघ्र से शीघ्र निपटाने में अपनी पूरी शक्ति लगा दे, जो नागरिकों की अस्मिता, स्मृति और सवेदना के प्रश्नों से जुड़े हो। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही विभिन्न क्षेत्रो मे राज्यों के पुनर्गठन की मॉग की जाती रही है तथा आजादी के बाद राज्यों का पुनर्गठन करते समय कुछ क्षेत्रो की इस प्रकार की माँगो को अनदेखा किया गया। हो सकता है कि कुछ क्षेत्रों की इस प्रकार की मॉग अनुचित रही हो, लेकिन कुछ क्षेत्र वास्तव में ऐसे थे, जिन्हें भौगोलिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक दृष्टि से अवश्य ही एक राज्य का दर्जा दे दिया जाना चाहिए था। मानवीय सवदेनाओ से राजनेताओं के इस प्रकार के खिलवाड ने आन्दोलनों को हिंसक मोड देने मे कोई कमी नहीं रखी। आज जबकि सर्वत्र ही पृथक राज्य की मॉग को लेकर

हिसात्मक आन्दोलन उभार पर हैं, केन्द्र सरकार अभी भी यह स्पष्ट बताने को तैयार नहीं है कि पृथक राज्य बनाये जाने का स्पष्ट आधार क्या है। अत राज्य के रूप मे क्षेत्रीय महत्वाकाक्षा को राजनीतिक मुद्दा बनाकर पृथकतावाद के आन्दोलन को बढावा मिले, उससे पूर्व ही द्वितीय राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन परमावश्यक है। ससद द्वारा इसे पूर्ण विचार विमर्श द्वारा दिशा निर्देश भी तय किये जाने चाहिये। वैसे भी छोटे राज्यों के विकास के उदाहरण हमारे सामने है, इसलिए उचित यह होगा कि बडे राज्यो का उचित प्रशासकीय व सास्कृतिक इकाइयो मे विभाजन कर दिया जाये। इससे एक नई विकासात्मक चुनौती का जन्म होगा, जो कि क्षेत्र विशेष एव देश के लिए लाभकारी ही सिद्ध होगा।

8.4 क्षेत्रींय दलों का प्रादुर्भाव

सन् 1977 ई० के बाद भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलो का प्रादुर्भाव हुआ। उदाहरणार्थ– आन्ध्र प्रदेश मे तेलगुदेशम, असम मे असम गण परिषद्, तमिलनाडु एव पाण्डिचेरी मे द्रविण मुनेत्र कडगम एव आल इण्डिया अन्ना द्रमुक पार्टी, पजाब मे अकाली दल, जम्मू कश्मीर मे नेशलन कान्फ्रेस एव पी० डी० पी०, महाराष्ट्र मे शिव सेना, गोवा में महाराष्ट्रवादी गोमान्तक पार्टी एव पूर्वोत्तर भारत मे उभरते क्षेत्रीय दल आदि में आलोचकों को प्रादेशिकवाद की अभिव्यक्ति प्रतीत होने लगी।

सकुचित भाषा, जाति एवं धर्म पर आधारित दल व राजनीति निश्चय ही देश की एकता के लिए खतरनाक हैं, लेकिन पूर्णतया क्षेत्रीयता पर आधारित दल "अनिवार्य रूप से राष्ट्रीय एकता के भजक होते हैं।" काग्रेस (आई), जनता दल एव भारतीय जनता पार्टी सहित सभी राष्ट्रीय नाम के दलो ने क्षेत्रीय, साम्प्रदायिक, जातीय व अन्य सकुचित स्तर के दलो से चुनावी समझौते किये हैं और इनके साथ व सहयोग से सरकार बनायी गयी है। पजाब मे कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी एव साम्यवादियो ने आकलियो के साथ गठबन्धन किये। तमिलनाडु में द्रमुक दलो के साथ, केरल में मुस्लिम लीग व अन्य प्रादेशिक दलों के साथ, त्रिपुरा मे त्रिपुरा उपजाति युवा समिति के साथ तथा उत्तर–पूर्वी भारत के राज्यो में स्थानीय दलो के साथ कॉग्रेस (आई) सम्पर्क रखने, सरकार बनाने या समझौते करने की दोषी रही है। भारतीय जनता पार्टी ने शिवसेना के साथ गठबन्धन करके महाराष्ट्र में चुनाव

लडा, उत्तर प्रदेश मे बहुजन समाज पार्टी के साथ मिलकर सरकार बनायी। अन्य राज्यों मे भी क्षेत्र, जाति, सम्प्रदाय आधारित गुटो के साथ चुनावी तालमेल बढाने मे किसी भी राजनीतिक दल ने एतराज नही किया। आज तक ऐसा उदाहरण देखने मे नहीं मिलता कि राष्ट्रीय दलो मे से किसी ने क्षेत्रीय व सकुचित हितो के साथ–साथ मिलाने से मना करके सत्ता का परित्याग किया हो अथवा सम्भावित चुनावी पराजय की जोखिम उठायी हो (जैन, 1997, पृ० 284)।

भारत जैसे विशाल एव विभिन्नता वाले देश मे क्षेत्रीय भावनाओ का उद्भव व उभार एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। यदि हमारी राष्ट्रीय भावना के आधार सशक्त हैं तो क्षेत्रीय भावनाये खतरा नहीं बन सकतीं। कुछ राजनीतिक समीक्षकों के अनुसार यह भी माना जाना चाहिए कि क्षेत्रीय आन्दोलन एक राष्ट्रीय आवश्यकता की उपज होते हैं, फिर चाहे वे विरोधी राजनीतिक शक्ति मे प्रकट हों। यदि राष्ट्रीयता के तन्तु प्रबल हैं और राष्ट्रीय भाव प्रखर हैं तो क्षेत्रीयता का उभार इसका पूरक बनेगा। प्रादेशिक दलों की उपस्थिति प्रयोजन व प्रभावशीलता राष्ट्रीय दलों की असफलता की उपज व प्रतिक्रिया है। राष्ट्रीय राजनीति की अपूर्णता एव अक्षमता ने क्षेत्रीय शक्तियो को बढने व प्रभावी बनने का अवसर प्रदान किया। जब क्षेत्रीय दल सत्तारूढ होते हैं तो उनका आचरण सगत व विवेकयुक्त रहता है और जब वे सत्ताविहीन होते हैं तो उग्रता व उत्तेजना को अपनातें हैं। तमिलनाडु में द्रमुक दलो एवं पजाब मे अकाली दल की सत्तारूढता के पश्चात पृथकतावादी स्वर धीमे पड गये। प्रादेशिक दलो से एक सयुक्त राजनीतिक सस्कृति के विकास में योगदान भी मिल सकता है और इस विकास मे इन दलो के कारण व्यवधान भी पड सकता है। भारतीय ढॅग से एक राज्य के रूप मे देश को विशुद्ध सघीय आधार पर सगठित भी किया जा सकता है या फिर देश विघटन के कगार पर भी पहुँच सकता है यह बहुत कुछ हमारी राष्ट्रीयता के आधार की प्रबलता व प्रादेशिक दलों के दृष्टिकोण की विशुद्धता पर निर्भर करता है (जैन, 1997, पृ० 285)।

वर्तमान समय मे भारत मे एक नई राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हुई है जिसमें क्षेत्रीय दलो की अधिक मुखर व प्रभावी भूमिका सामने आयी है। प्रादेशिक दलों द्वारा मई, 1996 ई० मे एक संघीय मोर्चे का गठन किया गया, इससे यह बात साबित होती है कि किसी एक अथवा दो राज्यों मे प्रभाव रखने वाले क्षेत्रीय दल अपने सोच और नीतियों को राष्ट्रीय

परिप्रेक्ष्य प्रदान करना चाहता है और यह उम्मीद की जानी चाहिए कि इससे सकीर्ण प्रादेशिकता वाले दुराग्रह मे कमी आयेगी। आज ऐसा वातावरण बनाने की आवश्यकता पहले से अधिक है जबकि प्रादेशिक आकाक्षाओ और राष्ट्रीय भावनाओ मे अधिकाधिक सामजस्य हो। यह बात केन्द्र और राज्य सम्बन्धो को सुदृढ करके ही सुनिश्चित की जा सकती है (जैन, 1997, पृ० 285)।

सन्दर्भ ग्रन्थ

चन्द्र विपिन, 2002 **आजादी के बाद का भारत,** हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

जैन, एस० एन०, 1997 : **भारतीय सविधान शासन और राजनीति,** राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ, 2001 · **भारतीय समाज व संस्कृति,** विवेक प्रकाशन, दिल्ली।

सारांश एवं निष्कर्ष

प्रादेशिकवाद एक बहुआयामी विचारधारा है जो मनोवैज्ञानिक, भौगोलिक, सास्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक पक्षो से सम्बद्ध है। यह आवश्यक नही है कि प्रादेशिकवाद की प्रत्येक अभिव्यक्ति मे इन सभी तत्वो का समान मात्रा मे समन्वय पाये, कहीं पर एक तो कही दूसरा तत्व प्रबल हो सकता है। यदि हम प्रादेशिकवाद की सही व्याख्या करना चाहते हैं तो हमे प्रादेशिकवाद के दोनो पहलुओ– सकारात्मक एव नकारात्मक – पर समान रूप से विचार करना चाहिए। सकारात्मक दृष्टि से प्रादेशिकवाद व्यक्तित्व की खोज है और आत्मसिद्धि के प्रयास का प्रतीक है। नकारात्मक प्रादेशिकवाद A psyche of relative depreciation को प्रतिबिम्बित करता है।

देश मे स्थित विभिन्न क्षेत्रो के निवासियों मे अपने क्षेत्र अथवा प्रदेश के प्रति विशेष लगाव होता है। समूचे देश के सन्दर्भ मे अपने प्रदेश को ही महत्वपूर्ण समझना प्रादेशिकवाद का मौलिक रूप है। भारत के सन्दर्भ मे विभिन्न राज्यो अथवा प्रदेशों के निवासियो द्वारा राष्ट्रीय एकता से अपने को अलग समझते हुए अपने प्रदेश के प्रति विशेष निष्ठा अथवा लगाव रखना या व्यक्त करना प्रादेशिकवाद का परिचायक है। एकता मे विभिन्नता की स्थिति प्रादेशिकवाद का ही सूचक है। विशाल और विविधतापूर्ण देश में प्रादेशिकवाद होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। सक्षेप में, प्रादेशिकवाद का अर्थ किसी राज्य के किसी क्षेत्र/प्रदेश के लोगो की उस भावना और प्रयासो से है जिसके द्वारा वे अपने क्षेत्र विशेष के लिए अधिकाधिक आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक तथा सामाजिक विकास मे अभिवृद्धि चाहते हैं। यहॉ पर यह भी स्पष्ट रूप से स्मरण रखना चाहिए कि भौगोलिक रूप से निश्चित किसी क्षेत्र मे जब कुछ प्रक्रियाए तथा धारणाए राज्य और समाज के अन्य क्षेत्रो से भिन्न हो और ऐसा काफी लम्बे समय से चला आ रहा हो तो उस क्षेत्र को प्रदेश कहा जा सकता है। प्रदेश निर्धारक और प्रादेशिक भावना को विशिष्ट और पृथक बनाने वाले आवश्यक तत्व क्या और कौन हैं? इस विषय मे विद्वानो और विशेषकर समाजशास्त्रियो मे सहमति नहीं है। वस्तुत प्रदेश निर्माण की प्रक्रियायें और प्रादेशिकवाद की भावना की धारणायें भौगोलिक, धार्मिक, भाषागत, परम्परागत रीति-रिवाज, सास्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास, ऐतिहासिक

पृष्ठभूमि तथा रहन-सहन के ढँग इत्यादि पर आधारित होती हैं। प्रादेशिकवाद का एक अन्य आवश्यक तत्व यह भी है कि इसके अन्तर्गत क्षेत्र के निवासियो मे समानता, एकरूपता तथा अन्य क्षेत्रो से अलगाव की भावना पायी जाती है।

प्रदेश मे 'आन्तरिक रूप से अधिकतम समरसता' पायी जाती है जिसे भाषा, बोलियो, सामाजिक सगठन, जातीय सरचना, भौगोलिक सामीप्य, सास्कृतिक प्रतिमान, आर्थिक जीवन, ऐतिहासिक या राजनीतिक पृष्ठभूमि और मनोवैज्ञानिक या सामूहिक अस्तित्व की सामान्य चेतना से बल प्राप्त होता है। व्यापक अर्थों मे प्रादेशिकवाद से अभिप्राय केन्द्रवाद के विरुद्ध किये गये प्रयासो से लगाया जाता है। सकीर्ण अर्थों मे यह स्थानीय या सामाजिक महत्व के हितों के साथ लोगो के सम्बन्धो से सशक्त है। स्पष्ट है कि प्रादेशिकवाद से तात्पर्य किसी प्रदेश/क्षेत्र विशेष के लोगों की उस भावना और प्रयासो से है, जिनके द्वारा वे अपने प्रदेश के आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक तथा राजनीतिक विकास हेतु शक्तियों में वृद्धि चाहते हैं।

प्रदेश एक बहुअर्थी शब्द है। भौगोलिक दृष्टि से इसमे किसी जिले का भाग या राज्य का भाग अथवा समूचे देश के भाग को सम्मिलित किया जा सकता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रदेश की अवधारणा मे 'साहचर्य' और अन्य प्रदेशों से 'अलगाव' का भाव अनिवार्यत. निहित होता है। इसके अतिरिक्त प्रदेश का विशिष्ट तत्व अधिकतम समरूपता होता है, जिसकी भाषा, सामाजिक सगठन, जनाकिकीय सगठन, सास्कृतिक प्रतिमान, आर्थिक जीवन, ऐतिहासिक अनुभव अथवा राजनीतिक पृष्ठभूमि हो सकती है।

भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य मे हम प्रादेशिकवाद को परिभाषित करें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राष्ट्र की अपेक्षा किसी क्षेत्र विशेष अथवा राज्य या प्रान्त की अपेक्षा एक छोटे क्षेत्र (प्रदेश) से लगाव, उसके प्रति आसक्ति या विशेष अनुरक्ति ही प्रादेशिकवाद है। अन्य शब्दो में, यह एक ऐसी सकुचित धारणा है जो भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्र आदि पर आधारित है और जो विघटनकारी प्रवृत्तियों को न केवल जन्म देती है अपितु उन्हें प्रोत्साहित भी करती है। इस दृष्टि से प्रादेशिकवाद राष्ट्रीयता की वृहत् भावना का विलोम है और उसका ध्येय सकुचित क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति होता है। यह राष्ट्रीय एकता के समक्ष एक गम्भीर चुनौती भी है।

भारत भौतिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक विविधताओ का समष्टि है। ये विविधताये उसके विशाल आकार एव भौगोलिक गुणो से सम्बद्ध हैं। तीन तरफ से समुद्रो से आवृत एव उत्तर मे पर्वतीय बाधा से अलग-अलग किये जाने के कारण जहॉ एक तरफ इसे पूर्ण भौगोलिक इकाई का स्वरूप प्रदान किया है वही आन्तरिक विषमताओ ने विविधताओ के उद्भव मे कम योगदान नही किया है। अतीत मे यहॉ कई मानव समाजो के आपस मे मिलने का अवसर मिला है जिससे सामाजिक-सास्कृतिक विविधता मे और भी वृद्धि हुई है। यद्यपि भारतीय सस्कृति का प्रभाव समूचे देश पर व्याप्त है परन्तु माध्यमिक एव सूक्ष्म स्तर पर यह अनेको विविधताओ को समेटे हुए है। यही विविधता उत्प्रेरित होकर कभी-कभी प्रादेशिकता एव प्रादेशिकवाद मे परिणत हो जाती है जो राष्ट्रीयता एव राष्ट्रीय एकता को कमजोर करते हैं।

भारत के इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि केन्द्रीय प्रशासन के कमजोर होने पर विलगाववादी शक्तियो ने अपने प्रभाव को स्थापित करने मे विलम्ब नही किया है। ऐसे समय मे विदेशी आक्रमण हुए हैं एव देश को अपमानजनक स्थिति के मध्य से गुजरना पडा है। देश की एकता और अखण्डता में प्रादेशिकवाद ने निश्चय ही पूर्ण सहयोग दिया है किन्तु समय बीतने पर प्रादेशिकवाद ने अपना सिर उठाना आरम्भ कर दिया। इसमें अनेक कारको का योगदान देखा जा सकता है। इसमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, भाषायी, धार्मिक, भौगोलिक तथा मनोवैज्ञानिक कारक अधिक प्रभावी रहे हैं।

भारत एक प्राचीन देश है जिसकी लम्बी सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परम्पराये हैं। भारतीय सघ के वर्तमान राजनीतिक स्वरूप के विकसित होने मे हजारो वर्षों का समय लगा है। इस दौरान अनेक राजवशों एव राज्यों का विकास एवं अवसान हुआ है। यद्यपि वे आज अस्तित्व मे नही हैं, परन्तु इनमें से बहुतो की सास्कृतिक परम्पराये किसी न किसी रूप मे सुरक्षित हैं। इससे प्रादेशिक विशिष्टता का विकास हुआ है जिससे प्रादेशिकवाद के विकास को बल मिलता है।

आर्यों के आगमन से पूर्व बलूचिस्तान, समस्त पश्चिमोत्तर प्रदेश, गंगा-यमुना दोआब, बगाल एव दक्षिण भारत मे द्रविडों का प्रभाव था। आर्यों द्वारा सर्वप्रथम पजाब के क्षेत्र मे

अपना प्रभुत्व स्थापित कर इसका नाम 'सप्त सैन्धव' रखा गया। धीरे–धीरे आर्यों ने गगा-यमुना दोआब, हिमालय एव विन्ध्य पर्वतो के मध्य के भाग एव दक्षिण भारत मे अपना प्रभुत्व स्थापित किया। वस्तुत 'भारतवर्ष' नामकरण मुख्यत उस क्षेत्र के लिए हुआ जो आर्यों का निवास क्षेत्र (आर्यावर्त) था, परन्तु बाद मे इसका व्यवहार हिमालय के दक्षिण समुद्र पर्यन्त विस्तीर्ण सम्पूर्ण भूभाग के निमित्त होने लगा। महाकाव्य काल तक भारतवर्ष आर्य-अनार्य की विवाद रेखा को समाप्त कर एक देश और सास्कृतिक रूप मे उभर कर आ गया था। छोटे-छोटे राज्यो के स्थान पर बडे-बडे राज्यो (जनपदो) की स्थापना हुई, जिनमे अधिकाश राजतन्त्र एव कुछ गणतन्त्र थे। मौर्य युग को राजनीतिक एकता का युग कहते है। मौर्य काल मे भारतवर्ष का अधिकाश भाग एक सुदृढ राजनीतिक सूत्र मे बॅध गया और हमारा इतिहास सही अर्थों मे भारतीय हो गया। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद कई छोटे-छोटे राज्यो का अभ्युदय हुआ। छोटे-छोटे राज्यो की कमजोरी का लाभ उठाकर यूनानी, शको एव कुषाणो ने भारत के कई भागो पर अधिकार कर लिया। देश को विदेशी सत्ता से मुक्त कराने एव अपने को स्वतन्त्र बनाने की एक लहर सी आ गई। ऐसी स्थिति मे गुप्त साम्राज्य का अभ्युदय हुआ और देश पुनः एक राजसूत्र मे बॅध गया। छठी शताब्दी के अन्त मे गुप्त साम्राज्य का अवसान हुआ एवं भारत की राजनीतिक एकता पुन समाप्त हो गयी। अरबो के बाद तुर्कों ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सैन्य दृष्टि से निर्बल भारत पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। मुगल शासकों ने सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बॉधा। मुगल साम्राज्य के खण्डहरो पर ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई। 14 अगस्त, 1947 ई० को भारत का विभाजन एव 15 अगस्त, 1947 ई० को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। वर्तमान समय में भारत मे 28 राज्य एव 7 केन्द्र शासित प्रदेश हैं।

सन् 1947 ई० मे देश ने अपने आर्थिक पिछड़ापन, भयकर गरीबी, निरक्षरता, महामारी, भीषण सामाजिक विषमता और अन्याय के उपनिवेशवादी विरासत से उबरने के लिए अपनी लम्बी यात्रा की शुरुआत की। नूतन उदीयमान भारत की बुनियादी रूपरेखा राष्ट्रवाद, धर्म निरपेक्षता और लोकतन्त्र सम्बन्धी मूल्यों के साथ तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य एव उग्र सुधारवादी परिवर्तन के उद्देश्यो से अनुप्रमाणित थी। चूँकि भारत मे अत्यधिक क्षेत्रीय, भाषाई, जातीय और धार्मिक विभिन्नताये विद्यमान हैं। इसलिए देश की बहुतेरी अस्मिताओं को

स्वीकार करते एव जगह देते हुए तथा देश के विभिन्न भागों एव लोगो के अनेक समुदायो को भारतीय सघ मे पर्याप्त स्थान देकर भारतीयता को और भी विकसित किया जाना जरूरी था। पश्चिमी राजनीतिज्ञ यह भविष्यवाणी करते रहे कि न तो स्वतन्त्रता, न ही लोकतन्त्र और न समाजवाद भारत मे लम्बे समय तक जीवित रह पायेगा और कभी न कभी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था ढह जायेगी, भारत सघ जीवित नही बचेगा और यह राष्ट्र-राज्य अपने भाषाई और जातीय टुकडो मे बिखर जायेगा। उन लोगो का यह तर्क था कि भारत की असख्य जातियॉ, धर्म, भाषाई और जनजातीय विभिन्नताये और उसके ऊपर से इसकी गरीबी, सामाजिक तगहाली और असमानता, सम्पत्ति की बढती हुई विषमता, कठोर और श्रेणीगत सामाजिक ढॉचा, विशाल बेरोजगारी और असख्य सामाजिक एव आर्थिक समस्याये इस देश की एकता और इसके विकास सम्बन्धी प्रयासो को निश्चित ही समाप्त कर देगे। सन् 1977 ई० जब से क्षेत्रीय दलो का उदय हुआ, यह अटकलें लगायी जाने लगी कि भारत के विघटन की शुरुआत हेतु उपयुक्त परिस्थितियो का निर्माण हो चुका है। साम्प्रादायिक, भाषाई एव जातिगत हिसा, नक्सल विद्रोह, तमिलनाडु, कश्मीर, पजाब एव उत्तर-पूर्व मे चलने वाले पृथकतावादी आन्दोलनो के रूप मे भारत मे प्रादेशिकवाद उभर कर सामने आया।

प्रादेशिकवाद का स्वरूप उदार से उग्र हो सकता है। दूसरे शब्दो मे इसका स्वरूप इतना उदार हो सकता है कि वह कई समान राष्ट्रों को अपनी बाहों मे समेट ले और सदा राष्ट्रीय हितो को ध्यान मे रखते हुए क्रियाशील हो। इसके विपरीत इसका स्वरूप इतना उग्र हो सकता है कि वह अपने क्षेत्र को ही सर्वोपरि मानकर अपने हितों के सम्मुख राष्ट्रीय हितो की बलि चढाने मे जरा भी सकोच न करे। इन दोनो अतिरेकताओ के बीच प्रादेशिकवाद के अनेक स्वरूप हो सकते हैं। प्रादेशिकवाद की भावना विभिन्न क्षेत्रो के लोगों अथवा एक ही क्षेत्र के सभी लोगो मे समान न होकर अलग-अलग प्रकार से पायी जाती है। भारतीय राजनीति मे प्रादेशिकवाद की प्रवृत्ति के अनेक रूप हैं, जिसमे भारतीय सघ से पृथक होने की मॉग, अपने लिए पृथक् राज्य की मॉग, क्षेत्रीय भाषाई विवाद, अन्तर्राज्यीय विवाद, क्षेत्रीय आर्थिक टकराव, राजनीतिक नेतृत्व और क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का अस्तित्व प्रमुख हैं, परन्तु इनमे से आज प्रादेशिकवाद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष पृथक राज्य की मॉग है जो भारतीय राजनीति को प्रभावित कर देश की एकता एव अखण्डता को खतरा उत्पन्न कर रहा है।

प्रत्येक मानव को अपनी जन्मभूमि से लगाव होता है। यह लगाव देश के प्रति उत्तरदायित्व से नियन्त्रित रहता है। परन्तु जब किन्ही कारणोवश राष्ट्र के हितो के विपरीत क्षेत्रीय हितो को अधिक महत्व दिया जाने लगता है तो इससे टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्रादेशिकवाद जब राष्ट्रीय हितो से टकराता है तो देश की एकता और अखण्डता के लिए गम्भीर खतरा पैदा हो जाता है। भारत मे समय-समय पर प्रादेशिकवाद की भावना उठती रही है। प्रत्येक क्षेत्र के लोग दूसरो पर अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित करने का प्रयत्न करते रहे हैं जिससे विभिन्न क्षेत्रो के बीच आर्थिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक सघर्ष और तनाव प्रतिदिन बढता जा रहा है। इससे केन्द्र तथा राज्य सरकारो के बीच सम्बन्धो मे विकृति आती जा रही है तथा स्वार्थी नेतृत्व व सगठन विकसित हो रहे हैं। भाषा की समस्या और अधिक जटिल होती जा रही है। इससे आन्दोलनात्मक राजनीति को बढावा मिला है। प्रादेशिकवाद के आन्दोलनकारियो ने अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए धर्म, भाषा, जाति जैसे विघटनकारी तत्वों का सहारा लिया है, जिससे भारत मे राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग मे नवीन बाधाये पैदा हो रही हैं। इसके साथ-साथ यदि देखा जाये तो आज भारतीय राजनीति मे क्षेत्रीय दलो का बढता प्रभाव प्रादेशिकवाद के लिए उत्प्रेरक के रूप मे कार्य कर रहा है।

राष्ट्र एक अखण्ड व्यवस्था नही है। राष्ट्र का निर्माण अनेक परिवारों, समूहो, समितियो, सस्थाओ, समुदायो, यहाँ तक कि विभिन्न भूखण्डो जिनमे कि समाज के सदस्य निवास करते हैं, को लेकर होता है। उसी राष्ट्र मे अनेक लोग भी निवास करते है और यह भी हो सकता है कि उस राष्ट्र के उन सदस्यो मे प्रजाति, धर्म, भाषा, रीति–रिवाज एव आचार-विचार आदि आधारो पर अनेक भिन्नताये हों। इन विभिन्नताओ के बीच भी उस राष्ट्र के सदस्यों मे किन्ही समानताओ के आधार पर, जैसा कि इसी आधार पर कि वे सब एक ही राष्ट्र के सदस्य हैं, एक प्रकार की एकात्मकता हो सकती है और उनके पारस्परिक व सम्मिलित क्रियाकलापो में उसे वास्तव में देखा भी जा सकता है। इस प्रकार विभिन्नताओ के बीच भी राष्ट्रीय एकता रखने एव विभिन्न प्रजातीय, धार्मिक, भाषा-भाषी व भौगोलिक समूहो को एक सूत्र मे बँधे रहने की स्थिति को ही राष्ट्रीय एकता कहते हैं। इसके विपरीत स्थिति मे विलगाववादी शक्तियों को बढावा मिलता है तथा देश की एकता एव अखण्डता खतरे मे पड जाती है।

भारत एक ऐसा विशाल देश है जिसमे विभिन्न धर्मों, जातियो एव समाजो के लोग निवास करते हैं। यहॉ भाषा की विविधता के साथ–साथ भौगोलिक परिस्थितयो एव रहन-सहन मे भी स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है। विविधता के होते हुए भी स्वतन्त्रता सग्राम मे, प्रत्येक धर्म एव जाति के लोगो ने तन-मन-धन से मिलकर भाग लिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हुए युद्धो मे भी सभी भारतवासी आपसी कलह, मतभेद एव वैमनस्य को भूलकर शत्रु को मुँह तोड जवाब दिया है। इन युद्धो के समय देश के सभी नागरिको द्वारा जो सहयोग और सहायता दी गयी, वह मिशाल रही है एव भारत की सही मायने में पहचान करती है। किन्तु आज स्थिति बदली हुई लगती है। देश मे इस सीमा तक पृथकतावादी एव सकीर्णतावादी शक्तियॉ जोर पकडती जा रहीं हैं कि न केवल देश की सुरक्षा एव अखण्डता के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी एव शैक्षिक प्रगति मे भी अनेक बाधाये उत्पन्न हो रही हैं। वास्तव में भारत ही नहीं वरन् विश्व के किसी भी देश ने तब तक उन्नति नही की, जब तक वहॉ के नागरिको मे राष्ट्रीय चेतना की भावना स्वाभाविक रूप से विकसित न हुई हो।

भारत मे आतंकवादी, विलगाववादी आन्दोलन, नक्सलवादी आन्दोलन, किसान एव मजदूर आन्दोलन होना इसलिए स्वाभाविक है क्योकि जहॉ एक तरफ देश पर आधुनिकीकरण का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढता जा रहा है वही दूसरी तरफ विद्यार्थी, शिक्षक, कर्मचारी, अधिकारी एव राजनीतिक नेता आदि मे अर्न्तद्वन्द भी परिलक्षित हो रहा है। इसका मुख्य कारण स्वार्थ, मिथ्याभिमान एव स्वेच्छाचारिता आदि से जुडा है। हम न तो सयमित ही रह गये हैं और न ही अपने कर्त्तव्यो के प्रति जागरूक। हम सदैव अधिकारो की बात तो करते हैं किन्तु कर्त्तव्यो की उपेक्षा करते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि कर्त्तव्य रूपी धुरी के अभाव मे अधिकार का पहिया निष्क्रिय और सामाजिक जीवन की गाडी गतिहीन हो जाती है। अपने आपको नियन्त्रित करते हुए दूसरो को नियन्त्रित करना आज अपरिहार्य है। प्रादेशिकवाद के लिए जितना खतरा रुग्ण समाज, भ्रष्ट आर्थिक एव राजनीतिक व्यवस्था से उत्पन्न होता है, उतना ही अपराधियो, आतकवादियो, नक्सलियो, घुसपैठियों आदि से भी होता है। हमारे देश की वर्तमान परिस्थतियाँ इसी दुखद स्थिति की परिचायक हैं। राष्ट्रीय अखण्डता हेतु कर्त्तव्य परायण, आज्ञाकारिता, नवीन उत्साह, सहयोग, दृढ सकल्प, अनुशासन आदि गुणों का विकास

समाज मे होना आवश्यक है, तभी हमारी राष्ट्रीय अखण्डता की जड मजबूत हो सकेगी। वास्तव मे देश आज एक सक्रमण कालीन स्थिति से गुजर रहा है जिसने जहॉ एक तरफ पुराने नैतिक मूल्य एव आदर्श अपने महत्व को खो चुके हैं वही दूसरी तरफ नवीन मूल्यो एव आदर्शों को समाज अपनी सहमति नही प्रदान कर पा रहा है।

राजनीति का उद्देश्य लोगो के जीवन को उच्च बनाना, गरीबी एव शोषण को दूर करना तथा एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना है। आज भारतीय राजनीति अपने उद्देश्यो से न केवल भटक गयी है बल्कि उसने सत्ता की प्राप्ति हेतु अनुचित साधन भी अपनाना शुरू कर दिया है। आज भारतीय राजनीति मे नैतिकता के स्थान पर सत्ता को प्राथमिकता मिल रही है। आज भारतीय राजनीति मे धर्म, भाषा, जाति, क्षेत्रवाद आदि का राजनीतिक स्वार्थों हेतु खुलकर प्रयोग किया जा रहा है जिससे विघटनकारी तत्वो को बढावा मिल रहा है। राजनीतिक पार्टियॉ कई क्षेत्रो मे प्रादेशिकवाद एव विघटनकारी आन्दोलनो को समर्थन दे रही हैं। क्षेत्रीय पार्टियो के विकास ने तो इस प्रादेशिकवाद को और भी प्रोत्साहन दिया है। इन पार्टियो के समक्ष क्षेत्रीय हितो के अतिरिक्त राष्ट्रीय हितो का कोई महत्व नही है। कुछेक को छोड़कर अधिकाश राजनीतिक दल व्यक्ति एव वशवाद से बुरी तरह प्रभावित हे। इन दलो की कोई निश्चित विचारधाराये नही हैं एव इनके अनेक निर्णय व्यक्तिगत स्वार्थों, ईर्ष्या, द्वेष आदि मे प्रभावित होते हैं, राजनीतिज्ञ अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार के छल, प्रपचो, हिसा आदि का सहारा ले रहे हैं। इन सभी कार्यों से लोगो की राजनेताओ, राजनीतिक दलो एव प्रजातन्त्र पर से आस्था एव विश्वास कम होता जा रहा है। युवा वर्ग आक्रोशित हो रहा है जो जगह-जगह प्रदर्शनो, हिंसा आदि मे भाग लेता दिखाई पड रहा है।

प्रादेशिकवाद का विकृत रूप आतकवाद एव हिंसा के रूप मे भी प्रकट हो सकता है। आतकवादी क्रियाओ मे बहुधा विशिष्ट मार्गों के साथ हिसा अथवा हिसा की धमकी समाविष्ट होती है। हिसा की शिकार सामान्य जनता होती है जबकि हिंसको का लक्ष्य राजनीतिक होता है। आतकवाद का उद्देश्य निरीह, निरपराध लोगो की हत्या करके सामान्य जनता मे आतंक और दहशत फैलाकर, कानूनी और सामाजिक व्यवस्था को ध्वस्त कर प्रशासन तन्त्र को असफल कर अपने राजनीतिक लक्ष्यों की सिद्धि के लिए सरकार को विवश करना है। आतकवाद की गतिविधियो को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि यह एक असामाजिक,

असास्कृतिक, अनैतिक, अधार्मिक, अमानवीय, असवैधानिक एव अवाछित कार्य पद्धति है। आतकवाद के चार प्रकार है, जिनका भारत सामना कर रहा है, वे हैं पजाब मे खालिस्तान उन्मुख आतकवाद, कश्मीर का अलगाववादी आतकवाद, बगाल, बिहार, आन्ध्र प्रदेश मे नक्सलवादी आतकवाद और असम मे उल्फा एव बोडो आतकवाद।

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत ने समान अस्तित्व और समान चेतना के कुछ तत्व पहले ही अर्जित कर लिये थे। व्यापक सास्कृतिक भिन्नता के बावजूद इसकी सभ्यता ने अपने विकास की लम्बी दौड मे एक सम्मिलित सास्कृतिक विरासत के कुछ चिह्न पुष्पित किये थे। राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक एकता के तत्वो को विकसित करने मे मुगल शासको की खासतौर से प्रमुख भूमिका रही। शासको की राजनीति और क्षेत्र-विजय की आकाक्षा अक्सर प्रादेशिक सीमाओ से परे होती थी और उनमे भी ज्यादा महत्वाकाक्षी शासक पूरे उपमहाद्वीप मे राज्य विस्तार करने की कोशिश करते थे। हजारो वर्षों के दौरान एक अस्पष्ट भारतीयता का अहसास पैदा हुआ। भारतीय अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीति के उपनिवेशीकरण ने भारत के एकीकरण की प्रक्रिया को और सुदृढ बना दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन ने ही वह केन्द्रीय भूमिका निभाई थी जिसने भारतीयों को राजनीतिक और भावनात्मक रूप से जोड कर उन्हे एक राष्ट्र का स्वरूप दे दिया था। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत पूरी तरह एक सुगठित राष्ट्र नही था वरन् यह बनने की प्रक्रिया की ओर अग्रसर था। भारतीय राष्ट्र की रचना एक दीर्घकालीन और सतत् प्रक्रिया थी न कि 15 अगस्त, 1947 ई० को घटने वाली कोई घटना। इसलिए इसके सामने हमेशा विखण्डन का खतरा बना हुआ था। ऐसा एक विखण्डन सन् 1947 ई० मे हो चुका था। आजादी के बाद भी भारत के एकीकरण और राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया को सतर्कतापूर्वक न केवल बनाये रखना होगा बल्कि उसे और भी ज्यादा प्रोत्साहित और पोषित करना होगा।

भारत विश्व का एक सबसे अधिक सास्कृतिक विभिन्नताओं वाला देश है। इसके अन्दर बडी सख्या मे भिन्न-भिन्न भाषाई, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं आर्थिक विषमताओ वाले क्षेत्र मौजूद हैं। यहाँ कई धर्मों-हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, सिख, पारसी, यहूदी, बौद्ध एव जैन आदि के अलावा लाखो आदिवासी अपने सैकडो धार्मिक पथो के साथ निवास करते हैं। ये आदिवासी कबीले देश की कुल जनसंख्या के छह प्रतिशत हैं और सम्पूर्ण देश मे फैले हुए

हैं। भारत की विविधता कभी इसकी एकता के मार्ग मे बाधक नहीं रही है। भारत का एकीकरण और स्तरीकरण का समापन, मात्र इसकी विशाल विविधता को स्वीकार करके ही किया जा सकता है, विविधता को राष्ट्र-रचना का विरोधी मानकर नही। क्षेत्रीय सास्कृतिक पहचान का विकास अखिल भारतीय पहचान के विरोधी के रूप मे नही बल्कि उसके अग के रूप मे होना चाहिए। भाषा, सस्कृति, धर्म और मूल की विभिन्नताओ को किसी समाप्त करने लायक बाधा के रूप मे नही, राष्ट्रीय सुदृढीकरण के विपरीत ध्रुव के रूप मे नही, बल्कि ऐसी सकारात्मक विशेषता के रूप मे देखा जाना चाहिए जो शक्ति का स्रोत है और जिसे उदित हो रहे साझा राष्ट्रत्व के अन्दर समाहित कर लिया जाना चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय राष्ट्र का सुदृढीकरण एक व्यापक रणनीति के तहत किया गया जिसमे क्षेत्रीय एकीकरण, राजनीतिक और सस्थागत ससाधनो का सचालन, एकीकरण के अनुकूल सामाजिक ढॉचे का विकास, सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन करने वाली नीतियॉ, आर्थिक असमानताओ का उन्मूलन और समान अवसर उपलब्ध कराना शामिल था।

भारत मे अलगाववाद की भावना को जन्म देने के पीछे जहॉ भाषा, जाति, साम्प्रदायिकता, आतकवाद आदि तत्व उत्तरदायी हैं, वहॉ प्रादेशिकवाद भी अलगाववाद को बढावा देने मे किसी अन्य तत्व से कम नही है। भारतीय राजनीति भी प्रादेशिकवाद की चोट से बच नही सकी है। यही कारण है कि आन्दोलनात्मक राजनीति में तेजी आई है। वास्तव में प्रादेशिकवाद की समस्या आज राष्ट्रीय एकता के मार्ग मे कटक बन गई है। अत हमे सरकार के साथ सहयोगी प्रवृत्ति अपनानी चाहिए, ताकि भारतीय एकता का रास्ता प्रशस्त बनाया जा सके। केन्द्रीय सरकार को भी अपनी नीतियॉ इस तरह निर्मित करनी चाहिए जिससे समस्त उप-सास्कृतिक क्षेत्रों का सन्तुलित आर्थिक विकास सम्भव हो सके, जिससे कि विभिन्न क्षेत्रो के बीच आर्थिक विषमता एव आर्थिक तनाव कम हो सके। भाषाई विवाद के शीघ्र समाधान हेतु 'त्रिभाषा फार्मूला' को क्रियान्वित किया जाना उपयुक्त होगा। प्रचार माध्यमो को चाहिए कि वे आचार सहिता का दृढता से पालन करें एवं किसी एक राज्य या क्षेत्र विशेष की ओर अधिक ध्यान न दें, अपितु देश के सतुलित एव समन्वित विकास पर अपना ध्यान केन्द्रित करे। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे सभी क्षेत्रो के नेताओ का सन्तुलित प्रतिनिधित्व होना चाहिए, जिससे कि क्षेत्रीय पक्षपात एव विषमतापूर्ण नीतियों का निर्माण एव क्रियान्वयन न हो

सके और लोगो के मन-मस्तिष्क पर सरकार के इरादो के प्रति सन्देह का पर्दा न पडे। इसके अलावा केन्द्र व राज्य सरकारो के बीच पारस्परिक सम्बन्धो को अधिकाधिक सौहार्दपूर्ण और पारदर्शी बनाने के लिए दोनो ही पक्षो को इस प्रकार की नीति तथा आचार सहिता को हृदयगम करना चाहिए जिससे पारस्परिक विश्वास सदैव बना रहे, एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप की परिस्थितियॉ उत्पन्न न हो सके एव राज्यो के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके। केन्द्र सरकार को सदैव सतर्क रहना चाहिए जिससे स्वार्थी तथा सकीर्ण मनोभाव वाले नेतागण अवसर का लाभ उठाकर प्रादेशिकना की भावना को भडकाने का कुप्रयास न कर सके। यदि हमे अप्ने देश की एकता एव सम्प्रभुता को सुरक्षित रखना है तथा उसे अलगाववाद की काली छाया से दूर रखना है तो हमे सघर्षात्मक प्रादेशिकता की भावना को त्यागकर सहयोगी प्रादेशिकता का दामन मजबूती से थामना होगा तथा इस दिशा मे सुदृढ प्रयास करना होगा। देश मे राष्ट्रीय एकता के भावना को मजबूत करने की आवश्यकता है ताकि प्रादेशिकवाद आदि के खतरो का दृढतापूर्वक सामना किया जा सके।

किसी भी लोकतान्त्रिक राष्ट्र के लिए, विशेष रूप से ऐसा राष्ट्र जो अभी भी राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याओ से जूझ रहा हो, प्रादेशिकवाद की प्रवृत्ति का विकास एक चिन्ताजनक विषय है। इस प्रवृत्ति पर एक सोची-समझी और सुविचारित रणनीति के द्वारा ही नियन्त्रण लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, देश मे व्याप्त आर्थिक विषमता को समाप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए। जहॉ तक सम्भव हो पिछडे हुए क्षेत्रो के आर्थिक विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि उन्हे राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा से जोडा जा सके। सरकार को विकास कार्यक्रमो का निर्माण और उनका क्रियान्वयन इस प्रकार से करना चाहिए कि सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को बढावा मिल सके। यह बात निर्विवाद है कि भारत मे अब तक चलाये गये अधिकाश प्रादेशिक आन्दोलनों के मूल में असन्तुलित आर्थिक विकास का एहसास ही रहा है। गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन की दिशा मे ठोस एव चरणबद्ध प्रयास किया जाना चाहिए। विशिष्ट जातीय समुदाय की अपनी विशिष्ट संस्कृति और पहचान को सुरक्षित रखने के सरकार द्वारा विशेष प्रयास किये जाने चाहिए।

भारत जैसे विशाल एव विभिन्नता वाले देश मे प्रादेशिक भावनाओ का उद्भव एव उभार एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। यदि हमारी राष्ट्रीय भावना के आधार सशक्त हैं तो

प्रादेशिक भावनाये खतरा नहीं बन सकती। कुछ राजनीतिक समीक्षको के अनुसार यह भी माना जाना चाहिए कि प्रादेशिक आन्दोलन एक राष्ट्रीय आवश्यकता की उपज होते हैं, फिर चाहे वे विरोधी राजनीतिक शक्ति मे प्रकट हो। यदि राष्ट्रीयता के तन्तु प्रबल हैं और राष्ट्रीय भाव प्रखर हैं तो प्रादेशिकता का उभार इसका पूरक बनेगा। क्षेत्रीय दलो की उपस्थित प्रयोजन व प्रभावशीलता राष्ट्रीय दलों की असफलता की उपज व प्रतिक्रिया है। राष्ट्रीय राजनीति की अपूर्णता एव अक्षमता ने प्रान्तीय शक्तियो को बढाने व प्रभावी बनने का अवसर प्रदान किया। क्षेत्रीय दलो से एक सयुक्त राजनीतिक सस्कृति के विकास मे योगदान भी मिल सकता है और इस विकास मे इन दलो के कारण व्यवधान भी पड सकता है। भारतीय ढंग से एक राज्य के रूप मे देश को विशुद्ध सघीय आधार पर सगठित भी किया जा सकता है या फिर देश विघटन के कगार पर भी पहुँच सकता है, यह बहुत कुछ हमारी राष्ट्रीयता के आधार की प्रबलता व क्षेत्रीय दलो के दृष्टिकोण की विशुद्धता पर निर्भर करता है।